वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

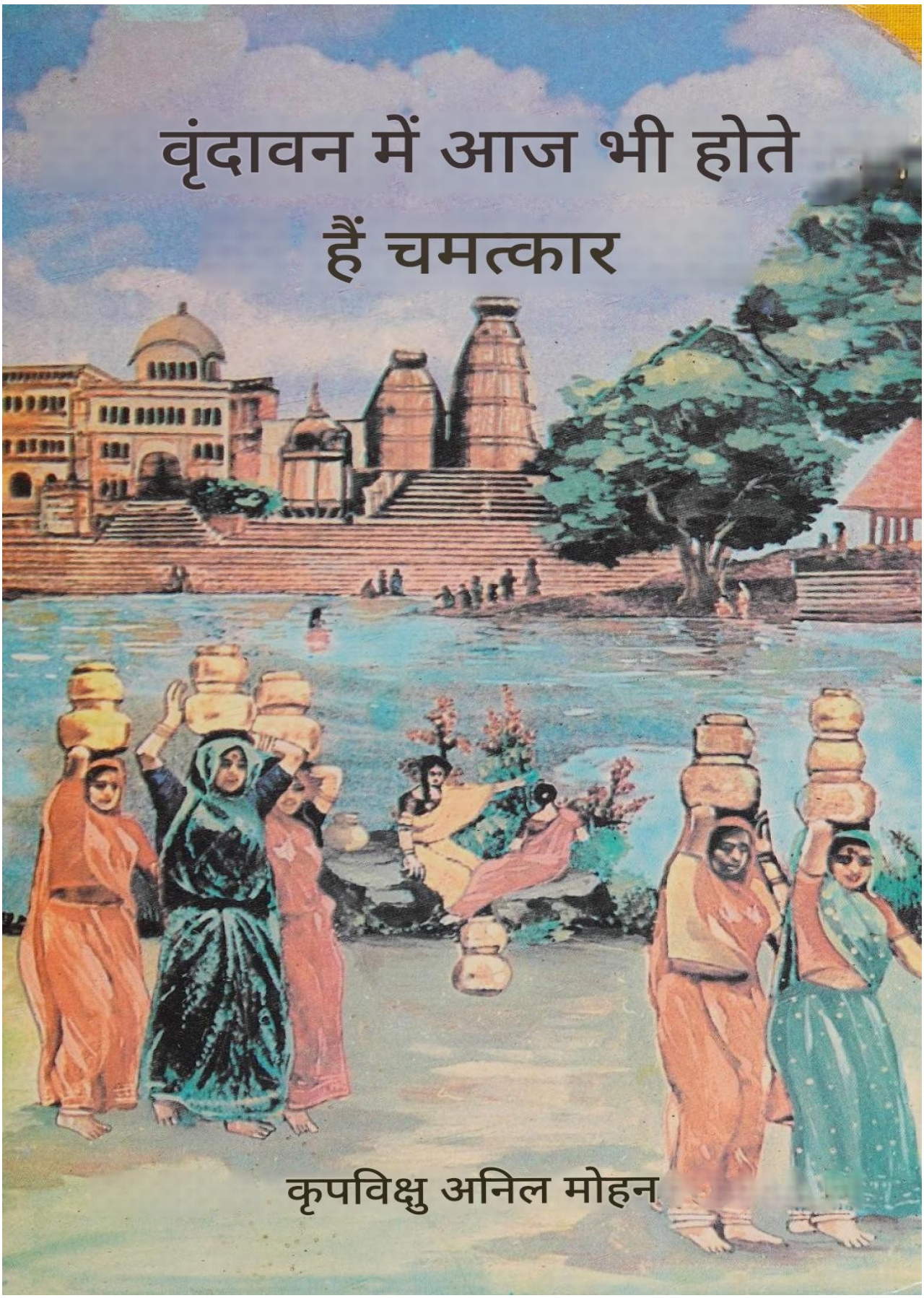

कृपविक्षु अनिल मोहन

किताब के बारे में

यह 1954 में 20 वर्षीय कृपाविक्षु के वृंदावन प्रवास का एक जीवंत और हास्यपूर्ण वृत्तांत है। इसे वास्तविक कथावाचन कौशल के साथ वर्णित किया गया है, और यह वृंदावन के जीवन का एक अत्यंत मनोरंजक और ज्ञानवर्धक चित्रण प्रस्तुत करता है - वे वहाँ कैसे रहते हैं और कैसे प्रेम करते हैं, एक अनोखे दृष्टिकोण से - एक युवा, उत्सुक, बल्कि भोले-भाले आध्यात्मिक साधक के दृष्टिकोण से।

मुझे पूरा विश्वास है कि इससे न केवल भारत में, बल्कि शेष विश्व में भी, जहां भारतीय जीवन के सभी पहलुओं में रुचि बहुत तेजी से बढ़ रही है, अनेक पाठकों को बहुत आनंद और लाभ मिलेगा।

एक चतुर निर्देशक के हाथों में यह निश्चित रूप से एक अद्भुत फिल्म या टेलीविजन श्रृंखला का आधार बन सकता है....

-ए.एम.स्टटल ('मदर इंडिया')

किताब के बारे में

यह 1954 में 20 वर्षीय कृपाविक्षु के वृंदावन प्रवास का एक जीवंत और हास्यपूर्ण वृत्तांत है। इसे वास्तविक कथावाचन कौशल के साथ वर्णित किया गया है, और यह वृंदावन के जीवन का एक अत्यंत मनोरंजक और ज्ञानवर्धक चित्रण प्रस्तुत करता है - वे वहाँ कैसे रहते हैं और कैसे प्रेम करते हैं, एक अनोखे दृष्टिकोण से - एक युवा, उत्सुक, बल्कि भोले-भाले आध्यात्मिक साधक के दृष्टिकोण से।

मुझे पूरा विश्वास है कि इससे न केवल भारत में, बल्कि शेष विश्व में भी, जहां भारतीय जीवन के सभी पहलुओं में रुचि बहुत तेजी से बढ़ रही है, अनेक पाठकों को बहुत आनंद और लाभ मिलेगा।

एक चतुर निर्देशक के हाथों में यह निश्चित रूप से एक अद्भुत फिल्म या टेलीविजन श्रृंखला का आधार बन सकता है....

- ए.एम.स्टटल ('मदर इंडिया')

□□□□□□□ □□□ □□ □□ □□□□ □□□ □□□□□□□

□□□□□□□□□ □□□□ □□□□

□□. □□. □□□□□□□□□ □□□ □□□□□□□□□□□□□□□□□

□□□□□□

□□□□,

□□□□□□□□ 81-85318-55-7

□□□□□

1991 में पहली बार प्रकाशित:
प्रधान कार्यालय:
एच.के. प्रकाशक और वितरक
ए-1/11 शक्ति नगर एक्सटेंशन, दिल्ली 110052. फ़ोन: 721 0979, 712 7025
शाखा कार्यालय:
दुकान संख्या 200 सेक्टर 28-डी चंडीगढ़ - 160002 फ़ोन: 67124
लेजर टाइपसेट द्वारा:
£
स्टर्लिंग लेजर आर्ट्स
सी-100 शक्ति नगर एक्सटेंशन, दिल्ली 110 052.
फ़ोन: 722 6129, 723 3929
यहां मुद्रित:
मेहरा ऑफसेट प्रेस, चांदी महल, दिल्ली

प्रस्तावना
श्री एम. पी. पंडित द्वारा
पृथ्वी पर पवित्र स्थानों, यानी क्षेत्रों के प्रति भारतीयों की श्रद्धा को अंधविश्वास मानकर खारिज करना आसान है। लेकिन सच्चाई यह है कि पवित्रता के स्पर्श से पवित्र किया गया प्रत्येक ऐसा स्थान मानवता के एक बड़े वर्ग पर एक गहरा आकर्षण, यहाँ तक कि एक आकर्षण भी बनाए रखता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि ये स्थल आज भी उस व्यक्तित्व के विशिष्ट स्पंदन उत्सर्जित करते हैं जो किसी समय वहाँ रहा था। यहाँ तक कि जिन स्थानों पर ऋषि-मुनियों ने निवास किया है, वहाँ भी उनकी उपस्थिति का कुछ अंश विद्यमान है। यह उन क्षेत्रों के साथ और भी अधिक सत्य है, जहाँ ईश्वरीय प्रकटीकरण हुए हैं।

वे अवतार की सुगंध बिखेरते रहते हैं। भारत में ऐसे स्थानों में, वृंदावन शायद सबसे प्रसिद्ध है। यहाँ तक कि नास्तिकों ने भी इसके वातावरण में किसी अलौकिक शक्ति के अद्भुत जादू को स्वीकार किया है। कृष्ण का नाम ही उस धरती पर एक अलग ही सुर लगाता है। राधा का स्मरण ही उस स्थान पर एक शक्तिशाली अनुभूति जगाता है। यमुना के जल का संगीत आगंतुकों को मंत्रमुग्ध कर देता है!

ऐसा क्यों है? अगर यह मान भी लिया जाए कि भगवान कृष्ण इतिहास में किसी समय पृथ्वी पर आए थे, तो क्या उनका प्रभाव तीन हज़ार साल या उससे भी ज़्यादा समय बाद भी जारी रह सकता है? श्री अरविंद एक शाश्वत वृंदावन की बात करते हैं जहाँ लीला हर समय चलती रहती है। लेकिन यह स्पष्ट रूप से हमारे ब्रह्मांड के किसी उच्चतर स्तर पर है। पृथ्वी पर वृंदावन निश्चित रूप से किसी दिव्य योजना पर मूल का भौतिक केंद्र है।

प्रस्तुत कथा हमें इस पवित्र भूमि, पवित्र परिवेश, चुम्बक की तरह उमड़ने वाली मानवजाति की विविधता, बंदरों के निवासियों की शरारतें, भव्य मोरों की शोभा, मंदिर-मीनार की भव्यता, भगवान कृष्ण के भक्तों और राधारानी के भक्तों के बीच मधुर प्रतिद्वंद्विता - जो दिव्य प्रेम के प्रति समर्पण का प्रतीक है - का एक सच्चा चित्र प्रस्तुत करती है।

चतुर्थ

प्रस्तावना

यमुना में स्फूर्तिदायक और पवित्र स्नान, तीर्थस्थल में पेशेवरों का काम, श्रद्धालुओं का उदार परोपकार - ये सभी विशेषताएँ लेखक ने ऐसे शब्दों में चित्रित की हैं जो उनके अपरिष्कृत व्यक्तित्व को दर्शाते हैं। जब वे अपने अनुभवों का वर्णन करते हैं तो वे विश्वसनीय लगते हैं। सबसे मार्मिक बात है राधारानी के दर्शन का उनका वृत्तांत - एक बार नहीं, बल्कि दो बार - उनके जीवन के एक महत्वपूर्ण क्षण में और उतना ही मार्मिक जब वे बताते हैं कि कैसे भगवान ने एक देहाती वेश में स्वयं को उनके सामने प्रकट किया। जी हाँ, वृंदावन में आज भी चमत्कार होते हैं। उनमें भाग लेने के लिए स्वयं को तैयार करें।

श्री औरोबिन्दो आश्रम

15 जुलाई, 1991

प्रस्तावना

एक सम्मानित संत ने एक बार कहा था कि इस प्राचीन भूमि के सभी तीर्थस्थानों में से कोई भी पुरी और वृंदावन की तुलना नहीं कर सकता।

जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं आपको सिर्फ़ वृंदावन के बारे में ही बता सकता हूँ। हाँ, वह पवित्र भूमि मन को शांत और आत्मा को उस तरह शांत कर सकती है जैसा कोई और स्थान नहीं कर सकता। उस धरती पर चलना, उस विशिष्ट हवा में साँस लेना, आज भी उन लोगों की उपस्थिति को याद दिलाता है जिन्होंने हमसे पहले ऐसा किया है। रूप और सनातन गोस्वामी, महान श्री चैतन्य, और न जाने कितने ही अन्य लोग यहाँ आए; उनका संपूर्ण अस्तित्व, उनकी उपलब्धि, उनकी शाश्वत भक्ति... यह सब उस वातावरण में समाया हुआ है। मंदिरों में स्थापित मूर्तियों के पत्थर में भी इसे महसूस किया जा सकता है।

सचमुच, राधा और कृष्ण आज भी क्रीड़ा कर रहे हैं! उनकी उपस्थिति, उनकी कृपा, उनके दर्शन का एहसास होता है, जैसे बीते दिनों में होता था। यही कारण है, अब मुझे पता चला, कि जब मैं वहाँ पहुँचा, तो मैंने खुद को पुकारते हुए पाया, "मुझे कुछ मिला है, मुझे कुछ दिया गया है!" मेरे मन में उमड़े भावों को व्यक्त करने वाले केवल यही शब्द थे।

वहाँ से जाने के बहुत समय बाद भी, उनकी जीवंत उपस्थिति की स्मृति, मुझे जो कुछ दिया गया था उसका एहसास, मुझे नहीं छोड़ रहा था। और मैं खुद को रोक नहीं पाया - आलस्य और भीतर उठती मानसिक आपत्तियों के बावजूद, मैं जो कुछ भी अनुभव कर रहा था, उसे, हर विवरण के साथ, लिखने के लिए प्रेरित हुआ। ऐसा लग रहा था जैसे कलम पर मेरा कोई नियंत्रण नहीं है, मानो वृंदावन का वातावरण ही मेरे हाथों को चला रहा हो। बाद में मुझे एहसास हुआ कि मैं सचमुच एक किताब लिख रहा हूँ, और पूरी कहानी लिख लेने के बाद, लिखने की इच्छा पूरी तरह से खत्म हो गई - सब कुछ शांत हो गया और मुझे पता चल गया कि मेरा काम पूरा हो गया है। मैं बस यही सोचता रहा, "इसे कौन पढ़ेगा, और इसका प्रकाशन कैसे होगा?"

हम

प्रस्तावना

जिस दिन यह पूरा हुआ, उसी दिन मुझे एक स्वप्न आया: मंत्रमुग्ध राधा दो सखियों के बीच ध्यान में बैठी थीं, जो उन्हें याक की पूँछ वाले पंखे से हवा कर रही थीं। यह राधा का ऐसा वर्णन नहीं था जो मैंने पहले कभी देखा था... मैंने कृष्ण के बिना राधा की कल्पना कभी नहीं की थी। मैंने सोचा, "कितना अद्भुत! राधा इस तरह अकेली क्यों बैठी हैं?" ऐसा लगा जैसे उन्होंने मेरा प्रश्न सुना, थोड़ा सा हिलीं मानो आराम से बैठने के लिए, फिर अपनी पूरी नज़र मुझ पर डाली और कहा: "मैं वृंदावन के इस आख्यान से प्रसन्न हूँ। मेरा आशीर्वाद तुम्हारी पुस्तक पर रहेगा।" और उन्होंने मुझे आशीर्वाद देने के लिए अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाया।

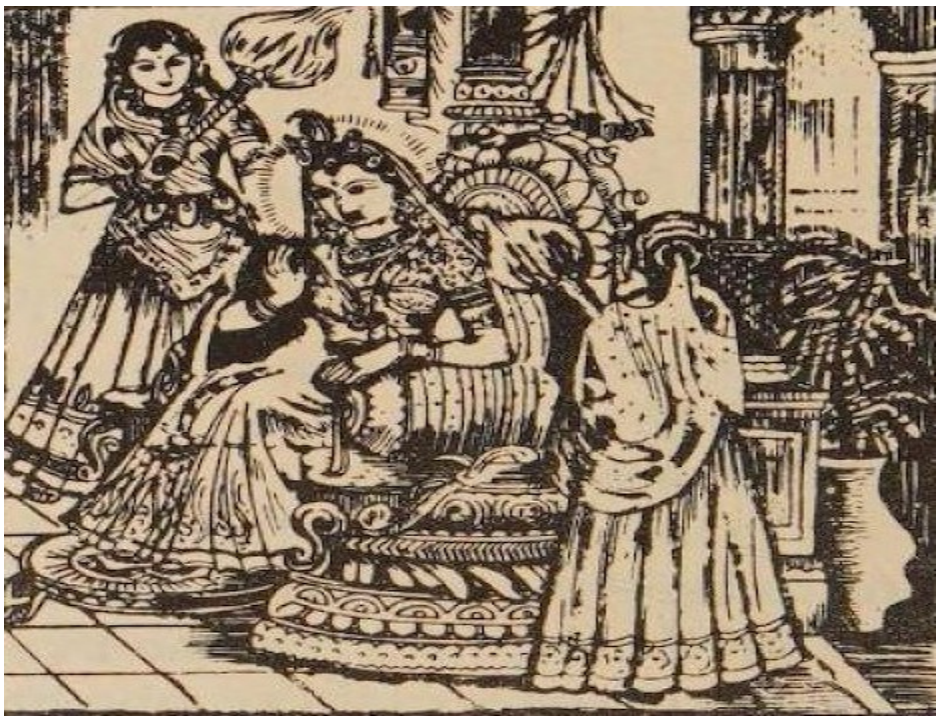

अतः प्रिय पाठक, मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि इस विवरण को ध्यान से पढ़ें और निर्णय लें कि क्या यह लेखक की कल्पना मात्र है, या आप भी राधारानी के प्रति आकर्षित हैं......

पी. एस.

लेकिन, कृपया प्रतीक्षा करें, क्योंकि मैंने अभी तक कुछ ऋणों का आभार व्यक्त नहीं किया है: पहला, मेरे संपादक श्रद्धावन का, जिन्होंने पांडुलिपि को अच्छी तरह से संपादित और टाइप करने का कष्ट उठाया। दूसरा, आदरणीय एम. पी. पंडित का, जिन्होंने 'प्रस्तावना' लिखने की कृपा करके इस पुस्तक को विशेष महत्व दिया। तीसरा, मेरे चित्रकार मित्र श्री एस. पी. दास का, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में मेरी सहायता की। और अंत में, हालाँकि कम से कम नहीं, मेरे प्रिय प्रकाशक श्री आर. एस. भल्ला का, जिन्होंने इस पुस्तक को पाठकों तक पहुँचाने का दायित्व लिया।

15 जुलाई, 1991

कृपविक्षु अनिल मोहन

श्री औरोबिन्दो आश्रम

पांडिचेरी-2

यमुना किनारे अब भी वो बांसुरी बजती
है, प्रेम की क्रीड़ा अब
भी जारी है, रात-दिन, फिर
भी राधा हृदय के अंतस में रोती रहती है!

— रवीन्द्रनाथ टैगोर

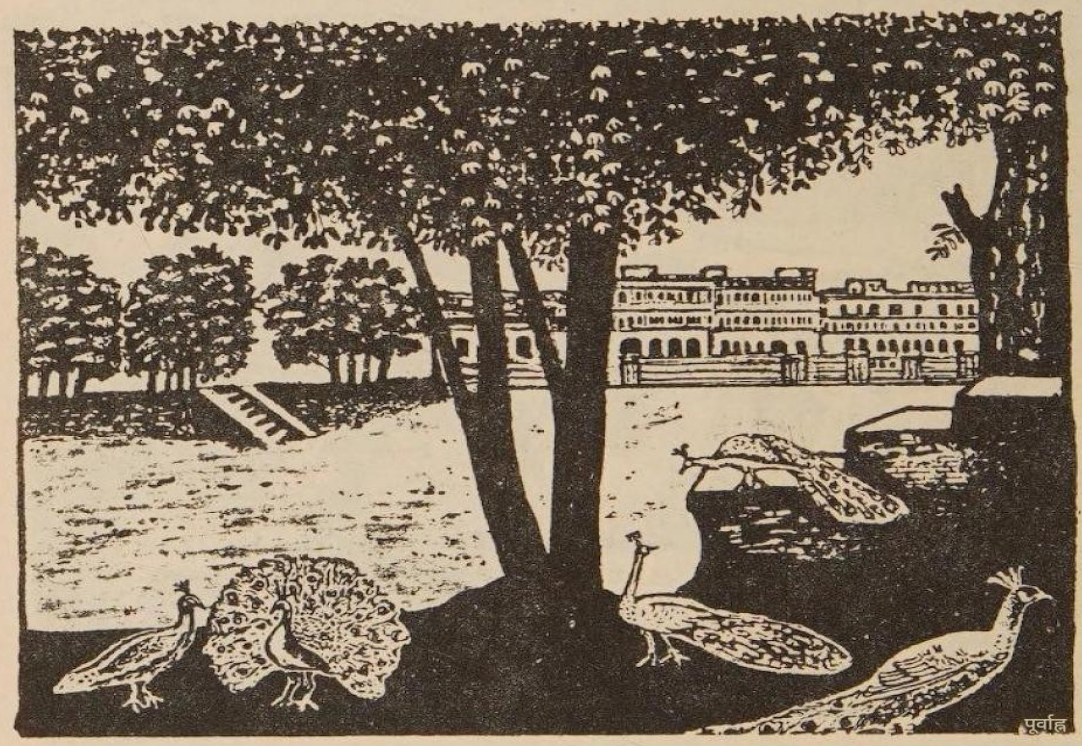

वह कदम्ब की छाया, वह यमुना का किनारा,
वह मोरों का नृत्य, अब भी
हृदय को चुराता है, अब भी
वर्षा की रात विरह की छाया डालती है!

— रवीन्द्रनाथ टैगोर

पूर्वाह्न

हे आनंदमय आत्मा, वृंदावन आओ; और तेजी से उस नृत्य का अनुसरण
करो जो मैं श्यामा के साथ तुम्हें सिखाऊँगी।

दास और स्वामी के लिए,-

जागरूक और उल्लासित आत्मा के साथ बांसुरी के स्वरों का अनुसरण
करो, उस आनंद को कुचल दो जो अपमानजनक मधुरता के आगे झुक जाता
है, तब तुम जानोगे कि नृत्य का क्या अर्थ है,

गीत और गायक को समझो, गड़गड़ाहट के
पीछे उसकी तुकबंदियाँ सुनो, बिजली से छूकर उसकी उंगली

को रोमांचित करो;

वृंदावन की सरसराहट और यमुना की हंसी समझेगी, रास में
अपना स्थान लो और उसके बाद के आनंद में अपना हिस्सा लो,

— श्री अरबिंदो

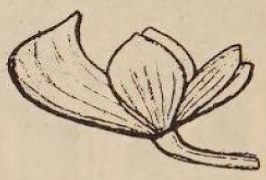

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

अध्याय एक

मुझे याद नहीं कि किसने मुझे बताया था कि वृंदावन शाश्वत भूलों का देश है। वहाँ हर कोई गलतियाँ करता हुआ प्रतीत होता है; यहाँ तक कि देवता भी इस प्रवृत्ति से अछूते नहीं हैं - श्री राधा ने स्वयं यहाँ एक भूल की थी, और सभी जानते हैं कि उन्हें इसके लिए कितना पश्चाताप करना पड़ा था:

"हे मित्र! मैं यमुना के जल में क्यों आया?

अगर मुझे पता होता तो मैं कभी कदम्ब के पेड़ के नीचे नहीं जाता!

वृंदावन - शाश्वत भूल और शाश्वत प्रेम की उस भूमि - में मैं आखिरकार पहुँच ही गया था, और मैंने भी एक भूल की थी। लेकिन शुरू में, ज़ाहिर है, मैं उसे समझ ही नहीं पाया था। जैसे ही मैंने वृंदावन के मधु में पहला कदम रखा, मैं रोज़मर्रा की दुनिया से विमुख हो गया, उसके मोहपाश में फँस गया।

वह पहला दिन, वृंदावन की पवित्र मिट्टी को छूना... मैं उस आनंद की अनुभूति को आसानी से याद कर सकता हूँ - वह अभी भी मेरे भीतर है, अभी भी जीवंत है, अभी भी जीवित है!

मैं अभी-अभी मथुरा जेल से रिहा हुआ था। उस दिन, उस छोटे से पिंजरे में एक महीने रहने के बाद, जैसे ही मैं रिहा हुआ, मुझे एक अनोखी आज़ादी का एहसास हुआ, मानो मेरी आत्मा अपने पंख फैलाए अनंत क्षितिजों में उड़ान भर रही हो। मैंने सुना था कि मथुरा और वृंदावन, इन दो शहरों के बीच छह-सात मील की दूरी है, और मुझे बताया गया है कि यह सच है। लेकिन मुझे आज भी यकीन नहीं होता, क्योंकि मैं एक बार नहीं, बल्कि दो बार उस रास्ते पर चला, और एक पल के लिए भी मुझे लगा ही नहीं कि यह इतनी लंबी दूरी है; पूरे रास्ते आश्चर्य और आनंद में खोया रहा, मैं अंदाज़ा ही नहीं लगा पाया कि मैं कितनी दूर आ गया हूँ - यह डेढ़ मील से ज़्यादा कैसे हो सकता है?

जैसे ही मैं मथुरा शहर के बाहरी इलाके में पहुंचा, मेरी

2

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

एकांत मिठाई की दुकान देखते ही मेरे कदम लगभग स्वतः ही रुक गए। भूख से मेरा पेट तड़प रहा था: दोपहर लगभग बीत चुकी थी, फिर भी मैंने उस दिन पानी की एक बूँद भी नहीं पी थी। ऐसा नहीं था कि मेरे पास पैसे नहीं थे, जेल अधिकारियों ने रिहाई के समय मुझे जो ढाई रुपये दिए थे, वे भी थे; जेलर का मीठा आश्वासन भी था - "जैसे ही

तुम्हारे सारे पैसे खर्च हो जाएँ, यहाँ वापस आ जाना!" फिर भी मैं अपनी गति से, बिना कुछ खाए-पिए, आराम किए, इस डर से चल रहा था कि पुलिस मुझे फिर से पकड़ लेगी और मेरे पैसे खत्म होने से पहले ही मुझे ज़बरदस्ती वापस ले जाएगी। उनके लिए, सब कुछ संभव है, जैसा कि मैं अनुभव से जानता था। इसीलिए मैं जितनी जल्दी हो सके मथुरा पार करने के लिए इतना उत्सुक था।

खैर, दुकान लगभग खाली थी: सिर्फ़ मेरी ही उम्र का एक युवक एक बेंच पर बैठकर टिफिन ले रहा था। दुकानदार की पत्नी ने मुझे रुका हुआ देखकर गर्मजोशी से मेरा स्वागत किया, मानो मैं कोई बुज़ुर्ग रिश्तेदार हूँ। मुझे अंदर बुलाकर, उन्होंने मुझे एक कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। मैं समझता हूँ कि हर ग्राहक के साथ शालीनता से पेश आना सभी दुकानदारों की आदत होती है, लेकिन इस महिला का व्यवहार उससे कहीं बढ़कर था। उन्होंने मुझे सिर्फ़ पच्चीस पैसे में पाँच चपाती, सब्ज़ी, एक बड़ा चम्मच रबड़ी (एक स्वादिष्ट दूध वाली मिठाई) और एक गिलास ठंडा पानी दिया। अब मैं आपसे पूछता हूँ कि बताइए, इतने प्यार से परोसा जाने वाला यह खाना इतनी क़ीमत पर कहाँ मिलता है?

मैं उसे खाने में पूरी तरह डूब गया। दूसरे ग्राहक ने मेरी एकाग्रता भंग करते हुए मेरी मातृभाषा में पूछा, "लगता है आप बंगाली हैं; कहाँ जा रहे हैं?"

मैं उसकी बातों से चौंक गया: हे भगवान! क्या मुझे फिर से गिरफ्तार किया जाएगा? क्या वो पुलिस का जासूस था? लेकिन अगले ही पल मैंने सोचा, "लेकिन वो तो मेरी ही भाषा बोल रहा है, और उसके कपड़े तो मुझसे भी ज़्यादा गंदे हैं - मानो वो भी अभी- अभी जेल से छूटकर आया हो!" तो मेरा डर दूर हो गया और मैंने खुद से कहा, "हाँ! मैं वृंदावन जा रहा हूँ। तुम्हारा क्या होगा?"

तुरन्त उसने कहा, "आओ, मैं भी वहीं जा रहा हूँ।"

अब मेरी इच्छा अकेले, बिना किसी मदद या साथी के, वृंदावन जाने की थी; फिर भी उसकी उत्सुकता देखकर मैं उसे मना नहीं कर सका। और साथ में एक साथी का होना भी राहत की बात थी। आगे क्या होगा? खैर, उसे आने दो।

इसलिए हम फिर से एक साथ सड़क पर चल पड़े।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

3

मुझे पता चला कि उसका नाम काशीराम था; वह बिहार का एक बंगाली था। तीन पीढ़ियों से उसका परिवार, प्रवासी बंगाली, बिहार राज्य के अमदोबा गाँव में रहता था। काशीराम की शादी कम उम्र में ही हो गई थी और उसके माता-पिता, भाई, बहन, सभी अभी भी जीवित थे और वहीं रहते थे।

मैं अक्सर सोचता था कि क्या पूरी दुनिया मेरी तरह नहीं है; क्या सभी वृंदावन जाकर रहने के लिए लालायित नहीं हैं? इसलिए मैं काशीराम के इरादों को जानने के लिए उत्सुक था - क्या वह भी मेरी तरह ही सोचता है। इसलिए मैंने उससे पूछा:

"काशीराम, क्या तुम हमेशा के लिए वृंदावन में ही रहोगे, या अपने गांव वापस जाओगे?"

काशीराम ने कहा, "मैं तब तक वापस नहीं जाऊंगा जब तक कि मेरा परिवार यहां आकर मुझे जाने के लिए मजबूर न करे।"

"लेकिन काशीराम, यदि आप उन्हें वापस ले जाने की अनुमति देने वाले हैं, तो फिर आप वृंदावन क्यों जा रहे हैं?" मैंने पूछा।

उसने उत्तर दिया, "यदि वे मुझे पकड़ने आएं तो मैं उनके साथ वापस कैसे न जाऊं? मैं क्रोध के कारण उनसे दूर जाने के लिए उन्हें छोड़कर चला गया था।"

"लेकिन यहां घूमने के लिए बहुत सारी जगहें हैं, फिर आपने वृंदावन को ही क्यों चुना?"

"मैं और कहाँ जा सकता हूँ? अगर मैं कलकत्ता गया, तो भूखा मर जाऊँगा। लेकिन वृंदावन में बहुत सारे छत्र हैं। अगर मैं उनमें से किसी एक में गया, तो मुझे भोजन ज़रूर मिलेगा।"

"मैंने भी इन छत्रों के बारे में सुना है - लेकिन आपको इस जगह के बारे में इतना कुछ कैसे पता चला?"

"बहुत समय पहले मैं अपने परिवार के साथ वृंदावन गया था; और वहाँ के एक ब्रजवासी से हमारा पारिवारिक संबंध है। आपके बारे में क्या ख्याल है, क्या आप वृंदावन में किसी को जानते हैं?"

जब उसने मुझसे यह पूछा, तो मैं अचानक बहुत अकेला, असहाय और असहाय महसूस करने लगा। मैं अचानक सोचने लगा, "हे भगवान! सचमुच, मेरा कोई भरोसा करने वाला नहीं है - न इस दूर जगह पर, न अपने ही गाँव में! यह सच है कि मैं इतनी बड़ी उम्मीदें और वृंदावन के लिए इतनी गहरी लालसा लेकर यहाँ आया हूँ - लेकिन मैं कहाँ रहूँगा? वहाँ मेरा जीवन कैसे चलेगा? मैं कैसे जीऊँगा? काशीराम को देखो - वह कितना सुरक्षित है! घर पर उसका परिवार और एक समर्पित पत्नी है, और यहाँ वृंदावन में उसका एक ब्रजवासी से परिचय है!"

एक क्षण में मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मैं चारों ओर से असहायता के वातावरण से घिरा हुआ हूँ-

4

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

मानो किसी साये ने मुझे घेर लिया हो। कितना अकेलापन! लेकिन फिर मैंने आश्चर्य से खुद को संभाला:

"कितना अजीब है! कल ही जेल में श्री अरविंद द्वारा मुझे दिया गया सांत्वना संदेश मैं इतनी जल्दी कैसे भूल गया! उन्हीं के दर्शन के कारण ही मैं बिना कुछ लिए, बिना किसी सुरक्षा के यहाँ आ पाया। फिर मैं वृंदावन में किसी को जानने की

उम्मीद क्यों करूँ? मैं अचानक अपने खोए हुए परिवार के न होने पर इतना उदास और हैरान क्यों हो गया हूँ? घर में रिश्तेदारों के न होने का दुःख मुझे क्यों हो रहा है? अचानक यह लालसा क्यों?"

इस बाहरी माहौल ने मुझ पर कितना असर डाला होगा! मुझे अंदाज़ा भी नहीं था कि जेल के निराशाजनक माहौल ने मेरे मन पर कितना गहरा असर डाला होगा। आत्मग्लानि से भरकर भी मैंने काशीराम को दुखी होकर जवाब दिया,

"नहीं भाई, मेरा कहीं कोई नहीं है, न वृंदावन में, न मेरे जन्मस्थान में। सुनो, तुम मुझे इतने सम्मान से क्यों संबोधित कर रहे हो? मैं तुम्हारा वरिष्ठ नहीं हूँ। मुझसे अपने मित्र की तरह, अपने बराबर की तरह बात करो।"

काशीराम काफी समझदार और संवेदनशील थे। उन्होंने मेरी मनोदशा भाँप ली और बड़ी सहजता से कहा: "ऐसा ही होगा, बिल्कुल ऐसा ही होगा। तुम्हारे साथ फुर्सत मिलते ही यह सारी विनम्रता गायब हो जाएगी। अब, उधर देखो... वहाँ सैकड़ों मंदिर-शिखर हैं! और बाईं ओर देखो: ये ब्रजांगनाएँ हैं, वे सभी कुओं से सिर पर जल-पात्र लिए लौट रही हैं। हम वृंदावन पहुँच गए हैं!"

"क्या? इतनी जल्दी हम वृंदावन पहुँच गए? कितना अद्भुत!" मैं उसकी बातों से दंग रह गया। "लेकिन यह वृंदावन कैसे हो सकता है? यह तो बिलकुल किसी और जगह जैसा ही दिखता है - समझ नहीं आता। कहाँ हैं वे काँटों भरे रास्ते जो राधा ने अपने प्रेमी से उस प्रसिद्ध मिलन स्थल तक पहुँचने के लिए झेले थे? और कहाँ है वह ताल-तोमल-कदंब वृक्षों का झुरमुट जिसके नीचे श्रीकृष्ण ने बाँसुरी बजाई थी? कहाँ हैं वे मनमोहक मृग और उनकी हिरणियाँ जो उस पवित्र भूमि पर इतने आनंद और उन्मुक्त भाव से विचरण करती थीं? और कहाँ हैं वे मोर और उनकी मुर्गियाँ, जो नाचने को तैयार हैं, अपनी पूँछ के पंख फैलाए हुए? और यमुना नदी का क्या, जिसका पानी कौओं की आँखों जैसा काला है? और हाँ, हम उसी चौड़ी, अच्छी तरह पक्की सड़क पर हैं जिस पर हम मथुरा से आए हैं - यह सड़क वृंदावन की कैसे हो सकती है...?"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

5

मैं जो कुछ भी देख रहा था उस पर संदेह कर रहा था, फिर भी भीतर से मैंने स्वयं को पुकारते हुए पाया, "जय राधे-श्याम! जय वृंदावन!" और अगला

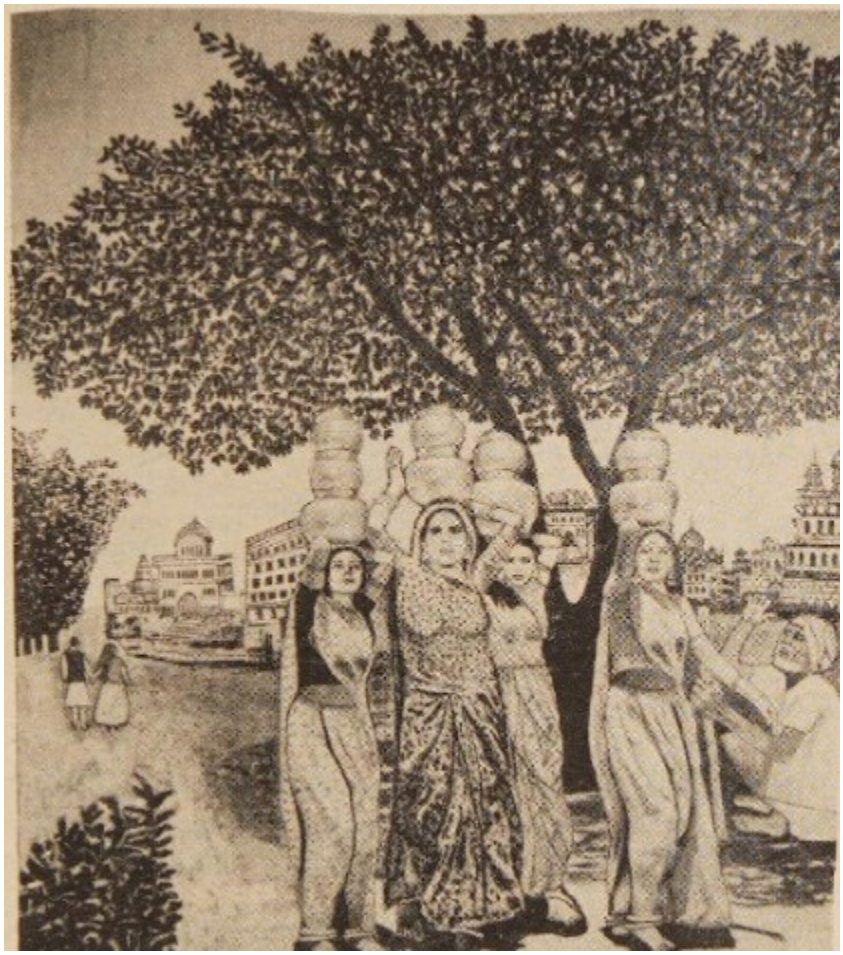

उसी क्षण मैंने भूमि पर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया, पवित्र धूल को अपने हाथों में लिया और उसे अपने चेहरे और भुजाओं पर फैलाया।

"रुको भाई, रुको! आराम से करो!" काशीराम ने आग्रह किया। "अभी हम वृंदावन में नहीं पहुँचे हैं। चलो, वहाँ पहुँचकर तुम्हें वो मिल जाएगा जिसकी तुम्हें तलाश है।"

"तो फिर तुमने उन ब्रजांगनाओं को कहाँ देखा? वे कहाँ हैं?" मैंने पूछा।

"ओह, वे बहुत आगे हैं, पेड़ों के उस झुरमुट के पीछे जो तुम देख रहे हो

6

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

"दूर से। थोड़ा इंतज़ार करो, वे जल्द ही फिर से दिखाई देने लगेंगे," काशीराम ने जवाब दिया।

अभी उसकी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि मैंने देखा कि तीन-चार औरतें बहुत आगे खड़ी थीं, हर एक अपने सिर पर दो-तीन बर्तन एक के ऊपर एक रखे हुए। मैंने उससे कहा:

"काशीराम, जानते हो, मैंने मथुरा में भी यही दृश्य देखा था, और उस समय भी मैंने मन ही मन कहा था, 'ये ज़रूर वृंदावन की गोपियाँ हैं! ये अभी भी दूध-छाछ लिए अपने शाश्वत प्रेमी से मिलने जा रही हैं!' उन्हें देखकर मुझे तुरंत श्रीकृष्ण का स्मरण हो आया। अगर गोपियाँ अब भी यहाँ हैं, तो भगवान कृष्ण भी कहीं न कहीं अवश्य ही होंगे!"

काशीराम ने तुरंत कहा, "बेशक, वह आज भी मौजूद हैं - राधा और कृष्ण आज भी यहीं, वृंदावन में हैं।" और उन्होंने यह श्लोक सुनाया:

"यह एक ऐसे बैंकर की कहानी है जो एक महान व्यक्ति है!"

आज भी चमत्कारी नाटक बांका रॉय करता है, कुछ भाग्यशाली लोग देख पाते हैं, अहोय!

मैंने उनसे कहा, "लेकिन भाई, क्या मैं भाग्यशाली लोगों में से एक होऊंगा? अच्छा, काशीराम, मुझे बताओ, ब्रजांगनाएँ अपनी मिट्टी के बर्तनों को अपने सिर पर क्यों रखती हैं, बजाय इसके कि वे उन्हें हमारी महिलाओं की तरह अपने कूल्हों पर रखें?"

काशीराम ने कहा, "वे एक को अपनी कमर पर उठाने के बजाय दो या तीन को उठा सकते हैं; इसके अलावा कृष्ण की मां यशोदा उन्हें इस तरह ले जाती थीं, और इस देश की महिलाएं अभी भी इस प्रथा को कायम रखे हुए हैं।"

"क्या उनमें इतनी श्रद्धा है? वे आज भी अपने व्यावहारिक दैनिक जीवन में बहुत पहले की रीति-रिवाजों को मानते हैं!"

"हाँ। वे श्रीकृष्ण की भूमि के हैं - इसीलिए उनके लिए यह संभव हो पाया है। लेकिन यहाँ भी अब आपको ऐसा दृश्य ज़्यादा समय तक देखने को नहीं मिलेगा।"

"क्यों नहीं?"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

काशीराम आंसर्ड लाइक ए प्रूडेंट मन,

7

"कैसे देखोगे? यहाँ भी तो आधुनिकता आ रही है। अब घर-घर नलों और ट्यूबवेल से पानी पहुँच रहा है। लोगों को अब दूर से सिर पर तकलीफ़देह पानी ढोना नहीं पड़ेगा। फिर कैसे देखोगे?"

"यह सच है, मैं आपकी बात समझता हूँ," मैंने उत्तर दिया।

दूर क्षितिज की ओर चलते हुए, हम अंतर्ध्यान हो गए और चुपचाप आगे बढ़ते रहे। जल्द ही हम सड़क के किनारे एक विशाल शिरीष वृक्ष के पास पहुँचे। उसके नीचे, एक महिला अपने मिट्टी के बर्तन में पानी भरने के लिए कुएँ से पानी ले रही थी। उसने एक साधारण किनारारहित सफेद वस्त्र पहना हुआ था - एक विधवा का वस्त्र। उसका एकमात्र श्रृंगार उसके गले और दोनों भुजाओं में तुलसी की माला थी, और उसकी नाक

पर एक रसकली थी। मैंने अपने गृह राज्य में ऐसी महिलाओं को बिना ज़्यादा ध्यान दिए देखा था; लेकिन अचानक, उसे देखते ही मुझे लगा जैसे वह माता यशोदा हों, और मुझे उसके पवित्र हाथों से जल लेने की इच्छा हुई।

और लंबी पैदल यात्रा से मेरा गला सूख गया था। जैसे ही हम कुएँ के पास पहुँचे, उन्होंने मुझसे प्रेमपूर्ण स्वर में, जैसे माता यशोदा कहतीं, कहा:

"बेटा! क्या तुम पानी पीना चाहते हो? आओ, मैं अपना बर्तन उठाकर तुम्हारे लिए पानी निकालता हूँ।"

वह बंगाली में बोल रही थी, और मानो उसके शब्दों में शहद बह रहा हो। जैसे ही उसने अपना बर्तन हमारे लिए आगे बढ़ाया, हम दोनों ने विरोध किया, "नहीं, नहीं - हमारी प्यास इतनी तेज़ नहीं है! पहले अपना बर्तन तो भर लो।"

उसका बर्तन लगभग भर चुका था, फिर भी उसने हमारे लिए पानी निकालने के लिए बर्तन आगे बढ़ाया। हमने पानी पिया - कितना बढ़िया था! बाद में उसने हमसे पूछा,

"क्या आप बंगाल से आ रहे हैं?"

"जी हाँ, महोदया," हमने उत्तर दिया।

मीठी मुस्कान के साथ, बिना कुछ कहे, उसने अपना गमला सिर पर उठाया और घनी छायादार सड़क पर चलने लगी। मैंने अपने साथी से पूछा, "क्या यहाँ बहुत बंगाली लोग हैं? यहाँ की भाषा क्या है?"

"वृंदावन में," काशीराम ने उत्तर दिया, "लगभग सभी लोग बंगाली बोलते हैं: ब्रजवासी स्वयं इसे बोलते हैं, और सेठ समुदाय भी बंगाली जानता है। जब हम वहाँ पहुँचेंगे तो ऐसा लगेगा जैसे

8

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

अगर हम बंगाल लौट आए हैं तो।"

शुक्र है भगवान का! आखिरकार मैं अपनी मातृभाषा बोल पाऊँगा। कलकत्ता छोड़ने के बाद से मैंने वो मधुर ध्वनि शायद ही सुनी थी, और मैं अपने आप को बहुत अलग-थलग महसूस कर रहा था। कितनी राहत की बात! अपनी ही भाषा से दूर होने से मुझे एक अलग-थलगपन का एहसास हुआ था - जिसे तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक अनुभव न किया जाए, जब तक कोई अपनी मातृभूमि को न छोड़े।

सड़क पर आगे बढ़ते हुए हम एक आलीशान इमारत के पास पहुँचे - दो मंज़िला, लगभग दस एकड़ ज़मीन पर फैला हुआ। गेट के सामने साधुओं, संन्यासियों और भिखारियों की भीड़ थी। यह नज़ारा इतना मनमोहक था कि मैं वहीं रुककर उस तरफ़ देखने लगा।

"क्या देख रहे हो?" काशीराम ने पूछा। "इसे मिर्ज़ापुर धर्मशाला कहते हैं? वृंदावन में तुम्हें ऐसी कोई धर्मशाला नहीं मिलेगी।"

"वास्तव में?"
"हाँ। यहाँ प्रतिदिन कई साधुओं और भिखारियों को भोजन कराया जाता है और कई तीर्थयात्रियों को आश्रय मिलता है। क्या आप यहाँ रहना चाहेंगे?"
"मैं इतना अमीर नहीं हूँ कि इस धर्मशाला जैसी जगह में रह सकूँ। लेकिन अगर आप खर्च उठा सकते हैं तो आप रह सकते हैं।" मैंने कहा।
"क्या तुम मज़ाक कर रहे हो?" उसने जवाब दिया। "मेरी जेब में बस कुछ पैसे बचे हैं। मैं गुस्से में अचानक घर से निकल पड़ा, और अपने साथ लगभग कुछ भी नहीं लाया।"
इस पर हम दोनों एक साथ बोले, "तो अब हमारा क्या होगा?"
चलते-चलते बातें करते हुए हम जल्द ही भारत सेवाश्रम के गेट पर पहुँच गए - जो एक आश्रम भी है और धर्मशाला भी। सड़क के उस पार एक पान की दुकान थी जहाँ सिगरेट और बीड़ी भी बिकती थी। दुकान के सामने एक आदमी ओवरकोट पहने, हाथ में छड़ी लिए दुकानदार से बात कर रहा था। हमें देखकर वह पास आया और पूछा,
"क्या आप भारत सेवाश्रम में रहना चाहेंगे?"
"नहीं, धन्यवाद," मैंने जवाब दिया।
"तो फिर आप कहां रहेंगे?" उन्होंने पूछा।
मैंने अंदाज़ा लगाया कि वह कोई पंडा ठाकुर होगा - मतलब, कोई तीर्थ-क्षेत्र का एजेंट। "अगर मेरी कोई योजना नहीं है," मैंने सोचा, "तो शायद वह ज़िद करे कि मैं उसके साथ चलूँ।" मैं सोच रहा था कि क्या जवाब दूँ। ऐन मौके पर अचानक मेरे मन में विचार कौंधा, "क्या काशीराम किसी ब्रजवासी से परिचित नहीं हैं?"
वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार
9
मैंने अपने साथी से पूछा, "भाई, तुम्हारे ब्रजवासी का नाम क्या है?"
काशीराम असक्ड द मन, "दो यू नो बिपिन ब्रजाबासी?"
"ओह, आप बिपिन ब्रजबासी के पास जा रहे हैं?"
"जी हां, सर," मैंने कहा.
"आह! अभी-अभी हमारी बातचीत खत्म हुई है - काश तुम एक पल पहले आ गए होते..."
यह कहते हुए उसने दूर की ओर इशारा किया, "देखो, वह अभी भी नज़र आ रहा है।" और खुद उसे पुकारने लगा। "नहीं, बिपिन भाई, इधर आओ! कुछ ग्राहक तुम्हारे लिए आए हैं।"

अपना नाम सुनते ही बिपिन ब्रजबासी ने मुड़कर अपने कोट की जेब से एक उबला हुआ शकरकंद निकाला और पास आते ही उसे चबाने लगा।

"यात्री कहाँ हैं?" उसने पूछा।

चूंकि हमारे पास न तो कोई बैग था, न ही कोई सामान और न ही कोई रिक्शा नजर आ रहा था, इसलिए उनके पास यह जानने का कोई तरीका नहीं था कि उनके नए ग्राहक कौन होंगे, जब तक कि मैंने हाथ जोड़कर उनका अभिवादन नहीं किया।

"आप कहां से आये हैं?" उसने मुझसे पूछा।

मैंने काशीराम की ओर इशारा करते हुए कहा, "ये बिहार से हैं और मैं कलकत्ता से।" और मैंने काशीराम को आगे की ओर धकेलते हुए फुसफुसाते हुए कहा, "आओ, अब तुम्हारी बारी है। ये तुम्हारे रिश्तेदार हैं!"

जब वे आपस में बातें कर रहे थे, मैं फिर से पूरी घटना पर विचार करने लगा। बेचारा काशीराम! वह घर से भाग गया था और अभी तक नहीं चाहता था कि उसे पकड़ा जाए। उसने तब तक इंतज़ार करने की योजना बनाई थी जब तक उसके परिवार को उसकी चिंता न हो जाए - फिर वह उनके सामने आएगा, उन्हें बड़ी राहत और खुशी मिलेगी, और सब कुछ माफ़ कर दिया जाएगा। जश्न मनाया जाएगा और उस पर खूब ध्यान दिया जाएगा! लेकिन अब पूरी स्थिति ने एक अलग मोड़ ले लिया था: वृंदावन में सबसे पहले उसकी मुलाक़ात एक पारिवारिक रिश्तेदार से होती है। और चूँकि वह अपनी पूरी कहानी बिपिन ब्रजवासी को बता रहा है, इसलिए उसे जल्द ही पकड़ लिया जाएगा। यह ज़रूर राधारानी का ही काम होगा... वह क्या कर रही हैं?

खैर, यह तय हुआ कि बिपिन ब्रजबासी काशीराम को शरण देंगे और उनके परिवार को एक तार भेजकर उन्हें टेलीग्राफ मनीऑर्डर भेजने का निर्देश दिया जाएगा। जब तक पैसा नहीं आ जाता, वह बिपिन ब्रजबासी के साथ रहेंगे।

10

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

यह सब ठीक-ठाक तय हो जाने के बाद, वे दोनों मुझसे विदा लेकर सड़क पर साथ-साथ चल पड़े। इस तरह काशीराम को आश्रय मिल गया था। जिस आदमी ने हमें बिपिन ब्रजबासी से मिलवाया था - उसका नाम भवानी ब्रजबासी था - वह अभी भी वहीं खड़ा था। उसने मेरी चिंता करते हुए पूछा, "बाबू, कहाँ जाओगे?"

मैं दुविधा में था। मेरे पास जाने के लिए कोई जगह नहीं थी। मैं उससे क्या कहूँ? मैंने योजना बनाई थी कि मैं रूपा और सनातन गोस्वामी की तरह यमुना के किनारे एक साधारण सी कुटिया बनाऊँगा और दिन के अंत में जो भी चावल और सब्ज़ियाँ मिल जाएँगी, उन्हीं से गुज़ारा करूँगा; मैं अपना सारा समय वृंदावन के विभिन्न मंदिरों में प्रतिष्ठित राधा-कृष्ण की मूर्तियों के दर्शन में बिताऊँगा। इसी भावना से मैं वृंदावन आया था। लेकिन वहाँ पहुँचते ही मैं यह सब एक अजनबी को क्यों बताऊँ? फिर भी, अपनी बात खुलकर कहने की मेरी आदत थी - मैं अपने मन में कोई और झूठा जवाब भी नहीं बना सकता था; और वृंदावन के एक ब्रजवासी से मैं झूठ कैसे बोल सकता था? इसलिए मैं सोच रहा था कि मैं उससे क्या कहूँ।

मुझे हिचकिचाते देख उन्होंने आगे कहा, "मेरे पास कोई गेस्ट हाउस नहीं है, और तीर्थयात्रियों का स्वागत करना मेरा पेशा नहीं है - ऐसे में मैं तुम्हें अपने घर ले जाता। मेरा काम तो बस यात्रियों को भारत सेवाश्रम तक लाना है। क्या तुम मेरे साथ वहाँ चलना चाहोगे?"

"नहीं, सर। धन्यवाद," मैंने दोहराया।

"तो फिर तुम क्या करोगे?" उसने फिर पूछा।

मैं यही सोच रहा था कि अचानक मुझे एक और ब्रजवासी का नाम याद आ गया। अरे यार! काश मुझे इस ब्रजवासी का नाम पहले याद आ जाता, तो काशीराम को अपने परिवार से संपर्क करने की नौबत ही नहीं आती!

खैर, मैंने भवानी ब्रजबासी से पूछा, "अच्छा, क्या आप मुझे मदन मोहन ब्रजबासी के घर का रास्ता बता सकते हैं?"

"क्या तुम वहाँ जाना चाहते हो? बस इस सड़क पर सीधे आगे बढ़ो।"

रास्ता बहुत लंबा है। थोड़ी देर बाद फिर से रास्ता पूछ लेना। अगर मुझे और कोई काम न हो, तो मैं तुम्हें खुद ले चलता..."

"नहीं, नहीं, तुम्हें वहाँ क्यों जाना है? मैं बंगाल से अकेला आया हूँ, मैं उसका घर ज़रूर ढूँढ़ सकता हूँ।"

मैंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और अपनी राह पर चल पड़ा। चलते-चलते मुझे याद आया कि मदन मोहन ब्रजवासी का नाम मुझे कैसे पता चला था। इलाहाबाद में, उनके गेस्ट हाउस में।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

11

बटूराम पंडा, मेरी मुलाक़ात एक ब्रजवासी से हुई थी जिसका काम लोगों को वृंदावन पहुँचाना था। बातचीत के दौरान मैंने उनसे अपनी दिली इच्छा ज़ाहिर की थी - वृंदावन में हमेशा के लिए बसने की - लेकिन यह भी कि मेरे पास पैसे खत्म हो गए हैं। मैंने उनसे पूछा कि क्या मेरी परिस्थितियों में किसी के लिए कुछ इंतज़ाम नहीं हो सकता। हालाँकि उनसे मेरी मुलाक़ात थोड़ी ही देर की थी, फिर भी उन्होंने मेरे साथ बहुत प्यार से पेश आया - ऐसा लगा जैसे मैं उन्हें हमेशा से जानता हूँ; और मैंने पाया कि वे नाम से ही नहीं, बल्कि कर्म से भी ब्रजवासी हैं।

"तुम्हारे जैसे किसी के लिए वृंदावन में जगह क्यों नहीं होनी चाहिए?" उन्होंने कहा। "तुम्हें बिल्कुल चिंता नहीं करनी चाहिए। पहले वहाँ जाकर मुझसे मिलो, फिर मैं तुम्हारे लिए सारा इंतज़ाम कर दूँगा।"

"लेकिन मुझे नहीं पता कि मैं वहाँ कब पहुँचूँगा। इस समय मेरे पास वृंदावन जाने के लिए रेल का किराया भी नहीं है।"

"तुम अपना समय लो, कोई बात नहीं," उन्होंने कहा। "आते ही सीधे मदन मोहन ब्रजबासी के घर चले जाना। वहाँ सब इंतज़ाम हो जाएगा।"

एक अजनबी के प्रति उसकी दयालुता देखकर मैं इतनी कृतज्ञता से भर गई कि किसी तरह उसे व्यक्त करना चाहती थी। मेरा दिल उसे कुछ देना चाहता था। पर मेरे पास तो कुछ था ही नहीं, मैं क्या दे सकती थी? पर रुको, मेरे बैग में कॉलेज की कुछ नई किताबें थीं। अचानक मैंने अपना बैग खोला और उन्हें दे दिया।

"क्या आप ये किताबें लेंगे?" मैंने पूछा।

उसने आश्चर्य से उत्तर दिया, "मैं इनका क्या करूँ?"

"नहीं, मेरा कहने का मतलब यह है कि अब इन पुस्तकों का मुझे कोई उपयोग नहीं है और मैं इन्हें स्वीकार करने वाले किसी व्यक्ति की तलाश में हूँ...."

यह महसूस करते हुए कि मैं उसे कुछ देना चाहता हूँ, उसने उत्तर दिया, "ओह, मैं समझ गया; क्या ऐसा है? तो मैं इन्हें ले लूँगा। और अगर मुझे इनका उपयोग करने वाला कोई मिल गया, तो मैं उसे दे दूँगा; अगर नहीं, तो मैं इन्हें तुम्हारे लिए बचाकर रखूँगा।"

अगले दिन ब्रजवासी तीर्थयात्रियों के एक समूह के साथ इलाहाबाद से वृंदावन लौटने के लिए रवाना हुए। लेकिन यह महीनों पहले की बात थी, और समय बीतने के कारण अब मैं उनसे दोबारा संपर्क करने में बहुत हिचकिचा रहा था, क्योंकि मैं खुद भी आज तक पूरी घटना भूल चुका था। फिर भी, मैं उनके घर की ओर चल पड़ा, रास्ते में रास्ता पूछता रहा - आखिरकार मैं खुद को एक बड़े, आलीशान घर के सामने पाया।

मैं गेट से अंदर गया और घर के सामने एक बड़े कमरे में पहुँचा। वो एक दफ़्तर जैसा लग रहा था। वहाँ एक बड़ा गद्दा बिछा था।

12

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

पूरे फर्श पर बिछी हुई थीं, किनारों पर दीवारों से सटे तकिये लगे हुए थे। माथे पर तिलक लगाए एक सज्जन एक तकिये पर टेक लगाकर लिख रहे थे, और एक दूसरे आदमी ने दीवार पर रखी एक अलमारी खोली और उसमें से एक बड़ी सी रिकॉर्ड बुक अपने सामने रख ली। मैं उनके पास गया और पूछा,

"इस दिस मदन मोहन ब्रजबासी'स हाउस?"

अपना सिर उठाकर और चश्मे के ऊपर से मुझे देखते हुए उसने उत्तर दिया, "जी हाँ, महोदय, यह है।"

इससे पहले कि मैं कुछ और कह पाता, उसने किसी को बुलाया और उससे कहा, "मालिक से कहो कि वह यहाँ आएँ।" और मुझसे कहा, "कृपया बैठ जाइए।"

कुछ ही देर में एक बूढ़ा ब्रजवासी प्रकट हुआ, जिसके सिर पर सफ़ेद पगड़ी और माथे पर सफ़ेद तिलक था। मैंने उसे अपना सम्मान दिखाते हुए अपने आने का कारण बताया और पूछा,

"इलाहाबाद वाला ब्रजवासी कहाँ है? - मैं उसे फिर से देखना चाहूँगा।"

"वह अभी यहाँ नहीं हैं; लेकिन चिंता मत करो - हम तुम्हारा ध्यान रखेंगे। उन्होंने तुम्हारे मामले पर मुझसे चर्चा की है और मैंने तुम्हारे लिए काम का प्रबंध कर दिया है..."

ओह, मुझे जो खुशी हुई होगी, वो तो साफ़ दिख रही होगी! मैंने ब्रजवासियों से कहा, "आपने मेरे लिए काम का इंतज़ाम भी कर दिया है? राधारानी को मुझ पर इतनी दया आती है? लेकिन मुझे और मेरी पृष्ठभूमि को जाने बिना आप मुझे नौकरी कैसे दे सकते हैं?"

अपनी घनी मूंछों के पीछे हल्की सी मुस्कान के साथ पगड़ीधारी सज्जन ने जवाब दिया, "आपने अभी जो कुछ भी मुझे बताया है, वह आपकी पुस्तकों के सामने लिखी बातों से मेल खाता है, इसलिए और अधिक प्रश्न पूछने की आवश्यकता नहीं है। आपकी बात पर विश्वास न करने का कोई कारण नहीं है।"

"अरे हाँ," मैंने कहा, "मैं तो भूल ही गया था। मेरे एक रिश्तेदार के पास प्रिंटिंग प्रेस है और मैंने खुद ही सारा जीवन-वृत्तांत उसी प्रेस में छापा है। अपना नाम छपा हुआ देखना कितना मज़ेदार होता है!"

तब ब्रजवासी ने मुझसे पूछा, "ठीक है, मैं देख रहा हूँ कि जिला तो दिया गया है, लेकिन आप किस गाँव से हैं? मेरे कई स्थायी ग्राहक उसी जिले से हैं।"

जैसे ही मैंने उसे अपने गाँव का नाम बताया, वह बहुत उत्साहित हो गया और चिल्लाया, "बहुत बढ़िया! आप उस गाँव से हैं? तो क्या आप जयकृष्ण घोष और श्री- त्युनजॉय घोष को जानते हैं? क्या आप रसमय संतरा और बनमाली रॉय को जानते हैं? अभी कुछ महीने पहले ही वे सभी मेरे यहाँ आए थे!"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

13

और वह अपने सचिव की ओर मुड़ा और बोला, "मैनेजर, कृपया एक बार रिकॉर्ड बुक देख लीजिए। मुझे सभी नाम याद नहीं हैं...."

"ज़रूर," मैंने कहा, "मैं उन्हें कैसे नहीं जानता? वे मेरे पड़ोसी हैं। हम गाँव के तालाब के एक तरफ़ रहते हैं और वे दूसरी तरफ़। वे हमारे अच्छे दोस्त भी हैं।"

वह और अधिक उत्साहित हो गया और मुझसे पूछा, "क्या तुम्हें भी ऐसे-ऐसे नाम याद हैं...?"

मैंने पड़ोसी देशवासियों के एक-दो नाम बताए जो कभी-कभार पवित्र स्थलों पर जाते हैं। ब्रजवासी और भी खुश हो गए: "हाँ, हाँ, वे भी मेरे पुराने तीर्थयात्री हैं!"

मैंने भी क्षण भर में उसके मन में विश्वास जगाने के लिए कई परिचितों का ज़िक्र किया; लेकिन अगले ही पल मेरा दिल घबराहट से धड़कने लगा: "हाय! मैंने क्या किया! अपने गाँव, पड़ोसियों और हर चीज़ का नाम उगल दिया!" मेरा दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। "कितना बड़ा मुँह है मेरा! अगर उसने मेरे पड़ोसियों को चिट्ठी भेजकर मेरी बात सच साबित कर दी तो?" ..... और मेरे मोहल्ले के लोग कितने चतुर हैं! क्या वृंदावन आकर उन्हें रहने के लिए कोई और जगह नहीं मिली? क्या उन्हें वही घर चुनना होगा जहाँ मैं आऊँ? मैं तो बस हो गया! वे कभी भी फिर आ सकते हैं - मुझे देखते ही तुरंत कह देंगे, 'हमारे साथ फिर चलो।' कितनी अजीब बात है, जब राधारानी ने मुझे रहने के लिए ऐसी जगह दी है, तब यह सब होना ही है! क्या सिर्फ़ इन रिश्तों की वजह से मुझे यह जगह छोड़ने पर मजबूर होना पड़ेगा?"

और भाग्य का कैसा क्रूर मोड़! इस बीच, एक के बाद एक, मेरे पास इतने सारे अवसर आ रहे थे:

"अब," ब्रजवासी ने आगे कहा, "हम अपने काम की बात करते हैं: तुम मेरे घर में रहोगे। तीर्थयात्रियों के घर में एक अच्छा-खासा कमरा है, तुम वहाँ रहोगे। अगर तुम अपना खाना खुद बनाना चाहो, तो बना सकते हो - तुम्हें खाना बनाने का सारा सामान दिया जाएगा। लेकिन अगर तुम हमारे साथ खाना चाहो, तो तुम्हारा स्वागत है। कपड़े भी दिए जाएँगे। तुम्हारा काम मेरे बच्चों को दिन में दो बार पढ़ाना होगा। तुम मेरे लिए ग्राहकों को लाने के लिए दिन में दो बार रेलवे स्टेशन भी जाओगे। यह सब कैसा लग रहा है?"

वृंदावन में रहने के इस अद्भुत अवसर के बारे में सुनकर, मुझे उसे सीधे तौर पर नकारात्मक उत्तर देना असंभव लगा। उसे मना करने के बजाय, मैंने बहाने बनाए,

"लेकिन मैं तो हिंदी भी नहीं बोलती - मैं आपके बच्चों को कैसे पढ़ा सकती हूँ?"

14

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

उनके पाठ? यहाँ बंगाली में शिक्षा नहीं दी जा सकती, जैसा कि हमारे देश में है!"

ब्रजवासी बोले, "नहीं, ऐसा नहीं है। लेकिन इसमें कोई दिक्कत नहीं होगी। आप उन्हें केवल अंग्रेज़ी और गणित ही पढ़ाएँगे। मैंने दूसरे शिक्षक नियुक्त कर दिए हैं जो हिंदी और अन्य विषय पढ़ाएँगे। इसलिए आपको कोई असुविधा नहीं होगी।"

मैं उसे कैसे समझाऊँ कि मुझे कोई असुविधा नहीं है, इस अद्भुत अवसर को स्वीकार करने में कोई असुविधा कैसे हो सकती है? इससे ज़्यादा आदर्श स्थिति की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। मैं किसी भी तरह की नौकरी के लिए तैयार था, यहाँ तक कि सबसे बुरी नौकरी के लिए भी। लेकिन मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि उस दिन मुझे इस तरह से निराश होना पड़ेगा।

सभी मेरे उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे। गोरे और गुलाबी रंग के सभी आकार-प्रकार के बच्चे अपने पिता के चारों ओर इकट्ठे हुए थे। ब्रजवासी के सचिव और सेवक भी वहाँ थे, और सभी मेरे उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे। और उन सभी आशान्वित चेहरों

को देखकर, मैं और भी असहाय महसूस कर रहा था। हे प्रभु! अगर वे सभी पुराने गाँव के रिश्ते न होते, तो मैं उनका शिक्षक बन सकता था। उन प्यारे बच्चों के साथ दैनिक संपर्क और इन पवित्र आत्मा वाले ब्रजवासियों के साथ दैनिक संपर्क के सौभाग्य से अधिक सुंदर क्या हो सकता था।

लेकिन, अफसोस, ऐसा नहीं हो सका!

मुझे ऐसा लगा जैसे किसी ने मेरे मुंह से खाना छीन लिया हो।

बाकी सारी असुविधाएँ मैं झेल सकता था - काश इन लोगों का मेरे गाँव से कोई संपर्क न होता। अगर मैं यहाँ काम करता, तो दो दिन में ही पूरे गाँव को मेरे बारे में पता चल जाता! अगर मेरे माँ-बाप ज़िंदा होते, तो बात अलग होती। हाँ, वे परेशान ज़रूर होते, लेकिन आख़िरकार चुप रहते, और मुझे अपना रास्ता ढूँढ़ने देते। लेकिन मेरे चाचाओं की बात अलग होती। उन्हें बस परिवार की इज़्ज़त की चिंता थी। वे मुझे पकड़कर ज़बरदस्ती मेरे गाँव वापस ले जाते।

असंभव नहीं! मैं खुद को काशीराम की तरह नहीं फँसने दे सकता था।

मुझे हिचकिचाते देख ब्रजवासी बोले, "ठीक है, ज़रा सोच लो। तुम कुछ दिन यहाँ रहोगे न? जब तय कर लो, मुझे बता देना। और मैं तुम्हें एक और बात का भरोसा दिलाना चाहता हूँ: अगर तुम यह नौकरी कर लोगे, तो तुम्हें पैसों की कोई दिक्कत नहीं होगी। मैं तो

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

15

पॉकेट-मनी प्रदान करें..."

"शुक्रिया, सर," मैंने उस दयालु ब्रजवासी से कहा। "मुझे इस पर अच्छी तरह सोच लेने दीजिए। एक बार नौकरी मिल जाए तो उसे छोड़ना पसंद नहीं करता।"

जैसे ही मैं घर से निकल रहा था, उसके आदमियों ने मुझे वापस अंदर बुलाया। "शायद तुम्हें अपनी किताबें साथ ले जानी चाहिए," उसने कहा। "ठीक है। लेकिन तभी जब तुम्हें उनकी कोई ज़रूरत न हो।" मैंने जवाब दिया। और किताबें लेकर मैं एक बार फिर वृंदावन की गलियों में निकल पड़ा। लेकिन इसी

बीच पश्चिम में सूरज ढलने ही वाला था।

□□□□□□□□□□

□□□ □□ □□□□□□□□

1. □□□□ □□□□□ □□ □□ □□□□□□□□□ □□□□□□ □□ □□□□□□ □□ □□□□□ □□□□ □□□□□□ □□□□ □□ □□□□□ □□□□ □□□ □□□□□□□□ □□□ □□□□□□□□□□□□□□□, □□□□□□□, □□□□□□□ □□□□□ □□ □□□□□□□□□□ □□ □□ □□□□ □□□□□□ □□□□ □□□□ □□□

2. □□□□□□□□□ □□ □□□□□□□□ □□□□ □□ □□□□ □□ □□ □□□□; □□ □□□□ □□□□ □□□□□ □□□ □□

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

वृंदावन। ब्रजवासी आमतौर पर तीर्थयात्रियों के लिए भुगतान के आधार पर अतिथिगृह चलाते हैं। इन्हें 'पंडा' भी कहा जाता है।

3. ब्रजांगना का तात्पर्य वृंदावन की सभी प्रकार की स्त्रियों से है... युवा या वृद्ध, विवाहित या अविवाहित। लेकिन ब्रजबासिनी का तात्पर्य केवल ब्रजवासी की पत्नी से है।

4. श्रीकृष्ण को 'वक्र देवता' कहा जाता है, क्योंकि जब वे बांसुरी बजाते हैं तो उनकी मुद्रा वक्र होती है; और जब वे अपने भक्तों के साथ प्रेम-क्रीड़ा करते हैं, तो कभी-कभी उनकी क्रीड़ा का स्वरूप भी वक्र होता है। इसी कारण, कुछ भक्त स्नेह और प्रेमवश उन्हें 'वक्र देवता' या 'बांका रॉय' कहते हैं।

5. वैष्णव भक्तों द्वारा प्रयुक्त, पृथ्वी-रंजक में अनुष्ठानिक डिजाइन।

6. सेठ एक व्यापारी जाति है।

7. धर्मशाला: ए रेस्ट हाउस फॉर पिलग्रिम्स.

8. तिलक: माथे पर पहना जाने वाला चंदन का लेप एक औपचारिक धार्मिक चिन्ह है।

अध्याय दो

जैसे ही पश्चिम में सूरज ढला, वृंदावन की स्ट्रीट लाइटें जल उठीं और मंदिरों में संध्याकालीन पूजा की घंटियाँ बजने लगीं। ऊपर, अँधेरे होते आकाश में, पक्षियों के झुंड खुशी से चहचहाते हुए घर की ओर लौट रहे थे।

बस मेरे पास लौटने के लिए कोई घर नहीं था! पहले, कम से कम मदन मोहन ब्रजबासी के यहाँ आश्रय मिलने की उम्मीद तो थी - लेकिन अब वह उम्मीद भी खत्म हो गई थी। शायद मुझे यह जाड़े की रात सड़क पर बितानी पड़ेगी। सूरज ढलने से पहले ही मुझे हड्डियों तक ठंड लगने लगी थी... देर रात कैसी होगी? मेरे पास गर्म रखने के लिए बस मेरी धोती, बनियान और एक सूती चादर या शॉल थी। रात के समय वृंदावन की उस हाड़ कंपा देने वाली ठंड में ये हल्के कपड़े बेकार हो जाते। दोपहर के समय मैंने कई लोगों को पैरों तक रजाईदार कपड़ों में देखा था - उन्होंने मोज़े, जूते और यहाँ तक कि टोपी भी पहनी हुई थी। अब मुझे समझ आया क्यों! कोई आश्चर्य नहीं कि वे ऐसे कपड़े पहने हुए थे।

लेकिन ये बातें मुझे क्यों परेशान करें? आख़िरकार, मैंने यही ज़िंदगी चुनी है - मुझे इन तंगहाली से कोई ऐतराज़ नहीं; मैं सड़क पर सो सकता हूँ। लेकिन अगर पुलिस मुझे ढूँढ़कर पूछताछ करे, तो मैं क्या कहूँगा?

यूँ ही सड़क पर भटकते हुए, कुछ अनमने मन से, अचानक मुझे काशीराम की याद आ गई। क्यों न वहाँ चला जाए जहाँ वो ठहरा है? शायद वो ब्रजवासी मुझे रात भी रुकने दे। मैं पीछे मुड़ा और अपने कदम पीछे खींच लिए। रास्ते में पूछताछ करते हुए मैं बिपिन ब्रजवासी के घर पहुँचा। वो वहाँ नहीं था। फिर, जब मैंने उस नए यात्री के बारे में पूछा जो उस दिन आया था, तो घर की एक महिला मुझे तुरंत मुख्य घर से दूर, परिसर के एक कोने में ले गई।

ओह, मैंने सोचा, ये तो उनका गेस्ट हाउस होगा। अंदर जाकर, मैं

18

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

उसने देखा कि सामने वाली दीवार से सटा एक लकड़ी का, नंगा, जर्जर पलंग खड़ा था। उस पर बैठा काशीराम उदास होकर खिड़की से बाहर देख रहा था।

मुझे देखकर आश्चर्यचकित होकर उसने पूछा, "क्या बात है? आप यहाँ क्यों हैं, श्रीमान?"

"मैं तुमसे मिलने आया था क्योंकि मुझे कहीं कमरा नहीं मिला। लेकिन काशीराम, तुम्हारा गेस्ट हाउस कहाँ है? यह तो अस्तबल जैसा लग रहा है!"

सच में, वह अस्तबल था। उस लंबे कमरे के एक तरफ दो गायें बंधी थीं; फर्श पर भूसा फैला था, गोबर का तो कहना ही क्या। सीमेंट का फर्श खराब हो गया था, उसमें जगह-जगह

छेद हो गए थे; दीवारों का भी यही हाल था: जगह-जगह खुरदरी ईंटें दिखाई दे रही थीं
- मानो दीवारों पर दाँत दिखाई दे रहे हों!

काशीराम ने चिढ़कर कहा, "हाँ, देखो तो, अस्तबल से भी बेहतर है!"

"तो?" मैंने बीच में ही टोकते हुए कहा, "अस्तबल हो या न हो - कम से कम तुम्हारे पास एक आश्रय तो है। ज़रा मेरी तरफ़ देखो - मेरे पास तो वह भी नहीं है!"

शब्द आश्रय यह कहते हुए, उसका सारा दबा हुआ गुस्सा फूट पड़ा। "मत बताओ, सड़क इससे बेहतर होती!" जब से मैं आया हूँ, मैं बिल्कुल अकेला रह गया हूँ। किसी ने मेरे बारे में पूछा तक नहीं और भूख से मेरा सिर चकरा रहा है!"

"क्या?" मैंने कहा, "अभी तक उन्होंने तुम्हें कुछ खाने को नहीं दिया? शायद अभी समय ही नहीं हुआ है।"

"अरे नहीं!" उसने जवाब दिया, "मुझे यकीन है कि वे लोग खाना खा चुके होंगे। यहाँ आते हुए हमने खाने पर भी बात की थी... शायद मैं उनकी बात समझ नहीं पाया: ब्रजवासी ने मुझे छत्र पर खाना खाने को कहा होगा - लेकिन आप ही बताइए कि आज रात इतनी देर से छत्र कहाँ मिलेगा? अब तक तो वे सब बंद हो गए होंगे!"

"हाँ," मैंने सहमति जताई, "ज़रूर होगा - तो चलो कहीं से खाना लेकर आते हैं। कल देखेंगे कि क्या किया जा सकता है।" मैंने उसे दिलासा देने की कोशिश की।

मुझे भी बहुत भूख लगी थी। रहने की जगह की चिंता में मैं पेट का ध्यान ही भूल गया था; लेकिन अब खाने की बात से मुझे ज़ोरदार भूख लग आई थी। हम तुरंत पास की दुकान पर गए और रोटी और सब्ज़ी खाई।

बाद में, जब हम उसके कमरे में लौटे, तो मैंने उससे अनुरोध किया,

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

19

"मुझे आज रात यहीं तुम्हारे साथ रहने दो

मैं और क्या कर सकता हूँ? कल मैं कहीं और रहने की जगह ढूँढूँगा। अगर ब्रजवासी आएँ, तो उनकी इजाज़त ज़रूर ले लेना।"

"हाँ, तुम यहीं रहो," उसने चिढ़कर कहा, "और अनुमति के बारे में भूल जाओ: वह मेरे पास आकर देखने की भी जहमत नहीं उठाएगा।"

काशीराम सही था। कोई भी हमारा हालचाल जानने नहीं आया। अब इजाज़त की चिंता करने की वजह से मैं इतना थक गया था कि मेरी पलकें झुक गई थीं।

खाली चारपाई पर रखा बोरा लेकर हम पीठ से पीठ सटाकर लेट गए और बोरा अपने ऊपर फैला लिया। लेकिन थकान के बावजूद, कड़ाके की ठंड के कारण हम दोनों बीच-बीच में जाग

उठते थे। ठंडी हवा के झोंके बिस्तर के पास वाली खिड़की के टूटे हुए शटरों के बीच से आ रहे थे।

लेकिन मुझे लगता है कि अगर सोना आता हो, तो बर्फ़ के बिस्तर पर भी नींद आ सकती है। तो उस ठंड में और उस नंगी लकड़ी की चारपाई पर भी, मैं कभी-कभी अनजाने में ही सो जाता था।

अचानक नींद टूट गई।

रात अभी खत्म नहीं हुई थी, अभी भी अँधेरा था। ऊपर के उजाले और नीचे के अँधेरे के बीच एक अलगाव अभी शुरू ही हुआ था। पतला पीला चाँद अभी भी आसमान के एक छोर पर अपनी मंद होती रोशनी बिखेर रहा था।

काशीराम को जगाए बिना मैं चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया - क्या होगा अगर मैं बिन बुलाए वहाँ सोता हुआ पाया गया? वहाँ से निकलकर मैं वृंदावन की गलियों में टहलने लगा। एक-दो ग्वालों और गायों-बछड़ों के अलावा, गली में शायद ही कोई दिखाई दे रहा था। भोर से ठीक पहले चाँद की वह आखिरी धुंधली रोशनी, सड़क किनारे के पेड़ों, गलियों के किनारे ऊँची-ऊँची हवेलियों और आसमान की ओर सिर उठाए मंदिरों के शिखरों पर एक रहस्यमयी आभा बिखेर रही थी, और इस तरह वृंदावन मधुर और रहस्यमय हो गया। इस विशेष क्षण का अनुभव करते हुए, मेरे भीतर आनंद उमड़ पड़ा और मैं गा उठा:

"उठो राय, उठो"

उन प्रेम-पक्षियों को गाओ

"हे राधा, तुम कितना सो सकती हो!

काले रत्न की गोद में?"2

और फिर नींद भरी आँखों से राधा और वृंदावन के स्वामी जाग उठे - और जैसे ही वे जागे, नगर भी जाग उठा। पेड़-पौधे, कमरे-गलियाँ, मंदिर-स्नानघर, सब सुबह के सूरज की सुनहरी आभा से जगमगा उठे। मैंने पानी के छींटे मारे।

20

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

सड़क पर पड़े एक नल से मेरे चेहरे पर चोट लगी और फिर मैं काशीराम के पास ब्रजवासी के घर लौट आया।

काशीराम घर के आँगन में ब्रजवासियों के साथ सुबह की धूप सेंक रहा था। पिछली रात के अँधेरे में मैंने आँगन के बगल वाले खेत में उग रही सर्दियों की सब्ज़ियों - बैंगन, भिंडी, प्याज़, मिर्च वगैरह - पर ध्यान नहीं दिया था। एक आदमी जड़ों के पास ज़मीन खोदकर उसे ढीला कर रहा था। उस तरफ़ देखते हुए, ब्रजवासी बड़ी ही धीमी आवाज़ में काशीराम से कह रहा था:

"देखो, नौजवान, मैं एक गरीब आदमी हूँ। मेरे बेटे ने बड़ी मुश्किलों से एम.ए. पास किया है और अभी-अभी उसे मथुरा कॉलेज में नौकरी मिली है। तो मैं तुम्हें कैसे खिलाऊँगा? और मुझे कैसे यकीन हो सकता है कि तुम्हारे घरवाले पैसे भेजेंगे? आजकल कोई भी पूरा सच नहीं बोलता। मुझे कैसे यकीन हो सकता है कि यहाँ भागने से पहले तुमने घर पर क्या-क्या शरारतें की होंगी? हो सकता है कि वे पैसे न भेजें, और मुझे तुम्हारा खर्चा उठाना पड़े। फिर भी मैं तुम्हें कम से कम इस साधारण कमरे का इस्तेमाल करने की इजाज़त तो दे ही सकता हूँ....."

मैं उनके पास गया। ब्रजवासी ने मेरी ओर एक नज़र डाली, पर मानो मुझे पहचाना ही न हो; उसने तुरन्त काशीराम से अपनी बातचीत फिर शुरू कर दी।

मैंने उन्हें बीच में टोकते हुए कहा, "ब्रजवासी जी, मुझे माफ़ कर दीजिए; कल रात मैं आपकी इजाज़त लिए बिना काशीराम के साथ आपके घर में सो गया था। जब मैं आपको ढूँढने आया तो आप घर पर नहीं थे..."

लेकिन यह बात मानो उसके एक कान से गई और दूसरे कान से निकल गई। उसने कोई जवाब नहीं दिया, बल्कि काशीराम से बोलता रहा:

"अगर आप कहीं और से खाना ले जाएं तो बेहतर है। हमारे पास वृंदावन में बहुत सारे छत्र हैं - मुफ़्त भोजन की व्यवस्था। आप जहां भी जाएंगे आपको खाना मिल जाएगा। तो समस्या क्या है?"

'छत्र' शब्द सुनकर मैंने उनसे पूछा, "महाशय, वे कहाँ हैं?" वृद्ध ब्रजवासी तुरन्त गुर्राए, "हे भगवान! युवक, क्या तुम्हें उम्मीद है कि वे यहाँ बैठे मिलेंगे? अगर तुम सीधे मुख्य द्वार से बाहर निकलो, तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तुरंत मिल जाएगा। दो कदम चलने पर तुम्हें कई छत्र दिखाई देंगे - कलकत्ता धर्मशाला, मिर्जापुर धर्मशाला, दिल्ली धर्मशाला, अठखंबा धर्मशाला... हमारे द्वार से तुम्हें साधुओं, संन्यासियों और भिखारियों की भीड़ दिखाई देगी। अगर तुम उनके पीछे-पीछे चलोगे, तो तुम अवश्य पहुँच जाओगे।"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

21

"यह जगह बहुत खूबसूरत है। इसके अलावा यहाँ बहुत सारे मंदिर हैं: अष्ट-सखी का मंदिर, जमाई बारिक का मंदिर, लाला बाबू का मंदिर - जहाँ भी आप जाएँगे, आपको राधारानी का प्रसाद मिलेगा।"

उसकी बात बीच में ही काटते हुए और उसे शांत करते हुए मैंने कहा, "अरे हाँ, हमने कल मिर्ज़ापुर धर्मशाला देखी थी, है ना काशीराम? और काशीराम को और भी बहुत सी धर्मशालाएँ पता हैं। अच्छा, अब हम चलते हैं।"

और ब्रजवासी तुरन्त सहमत हो गए, "हाँ, हाँ, अवश्य जाओ! जल्दी करो! नहीं तो भोजन के लिए बहुत भीड़ लग जाएगी।"

और जब हम जा रहे थे, तो उसने फिर पुकारा, "सुनो, सुनो, नौजवान..."

"कौन, मैं?" मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि वह मुझे बुला रहा है!

"हाँ, तुम," उसने कहा - "जब तक काशीराम के पैसे नहीं आ जाते, तुम उसके साथ यहीं रह सकते हो। वरना रात में अकेले में उसे डर लगेगा।"

तो मुझे पता चल गया कि ब्रजवासियों ने सचमुच सब कुछ देख लिया है और मुझे पहचान लिया है। मैंने खुशी-खुशी रुकने की हामी भर दी और हम छत्रों की तलाश में निकल पड़े।

कल काशीराम की दुर्दशा देखने के बाद से, मैं इस ब्रजवासी से खुश नहीं था। उसका व्यवहार कितना रूखा था! पहले तो उसने अपने एक पूर्व ग्राहक के बेटे काशीराम का गर्मजोशी से स्वागत किया। फिर उसे कितनी बुरी तरह से घर में रखा - एक अस्तबल में सिर्फ़ एक लकड़ी की खाट! उसने उसे कुछ देने की ज़हमत क्यों उठाई? हम जहाँ से आते हैं - यानी हमारे गाँव में - वहाँ सबसे गरीब आदमी भी खुद खाने से पहले अपने मेहमान को खाना खिलाता है। और काशीराम उसके लिए बिल्कुल अजनबी नहीं था, और उसके परिवार की तरफ़ से पैसे भेजे जाएँगे। इसके अलावा, परिवार के खोए हुए बेटे को ढूँढ़ने से उसे किसी न किसी तरह का इनाम मिलना ही था। तो फिर वह इतना कंजूस क्यों था? लेकिन अब मुझे समझ आने लगा था कि हर किसी को इतनी आसानी से नहीं आंकना चाहिए। इन ब्रजवासियों के पीछे ज़रूर कुछ न कुछ अप्रिय अनुभव रहे होंगे। पैसे खोने के पिछले अनुभवों को भी ध्यान में रखना ज़रूरी था।

शायद यही कारण था कि श्री चैतन्यदेव ने वृंदावन जाते समय अपने प्रिय शिष्य को सलाह दी थी:

"ब्रजवासियों से सदैव दूर रहो। उनके प्रति आन्तरिक और बाह्य रूप से सम्मान रखो। उनके किसी भी आचरण पर प्रश्न मत उठाओ..." और भी ऐसी ही सलाह।

22

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

लेकिन मेरा दुर्भाग्य था कि मैंने तब तक ये शब्द नहीं सुने थे। किसी ने मुझे ब्रजवासियों से दूर रहने की शिक्षा नहीं दी थी। बल्कि, मैं उनके संपर्क में और बढ़ता गया।

खैर, हमें खाने की तलाश में ज़्यादा दूर जाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। हमें जल्द ही सड़क किनारे एक बड़ा सा छत्र मिल गया। उसके बंद दरवाज़ों के बाहर

[illegible]

[illegible]

बड़े-बड़े लोहे के चिमटे और अपना प्रसिद्ध कमंडल लिए हुए थे; कृष्ण के अनेक नामों से छपे शॉल ओढ़े वैष्णव साधु अपनी एक-तार वाली एकतार लिए हुए थे, और लकड़ी की छड़ी लिए तपस्वी भी थे। उनके साथ भिखारी, अनाथ और बीमार भी थे - सभी छत्र के बरामदे में, पड़ोसी के घर के गलियारे में, और आस-पास के छायादार पेड़ों के नीचे बैठे और खड़े थे।

मुझे पता था कि अगर हम उनके साथ लाइन में खड़े होंगे, तो हमें भी राधारानी का प्रसाद मिलेगा। लेकिन जब तक मेरे कपड़े की तह में कुछ रुपये बचे हैं, तब तक उस मुफ़्त के खाने के बारे में सोचकर मुझे परेशानी हो रही थी। क्या राधारानी का प्रसाद तब तक स्वीकार करना चाहिए जब तक सब कुछ खर्च न हो जाए और कोई सचमुच ज़रूरतमंद न हो? इसलिए मैंने काशीराम से कहा, "आओ, थोड़ा टहलते हैं और दूसरे छत्रों के दर्शन करते हैं।"

लेकिन काशीराम नहीं माने। इस मामले में वे मुझसे ज़्यादा अनुभवी थे। उन्होंने अकेले में मुझसे कहा, "नहीं, चलो इसी लाइन में खड़े रहते हैं। मैं कहता हूँ कि अगर देर हो गई तो किसी भी छत्र में खाना नहीं मिलेगा। सभी छत्रों में खाना बाँटने का एक तय समय होता है। अगर समय निकल गया तो मालिक दरवाज़ा बंद कर देगा। उसके बाद, चाहे जितनी मिन्नतें करो, चावल का एक दाना भी नहीं निकलेगा। यहीं रहना बेहतर है।"

यह देखकर कि वह टस से मस नहीं हो रहा, मैं उसे अपने जाने की असली वजह बताने ही वाला था - मेरे पास जो पैसे थे। लेकिन हमारे आस-पास के लोग हमें घूर रहे थे। मुझे उनका गुस्सा समझ आ रहा था कि उन्हें अपना खाना दो और पेटों के साथ बाँटना पड़ रहा है। इसलिए मैं करशीराम को एक तरफ ले गया और उसे अपने कपड़े की तह में बचे थोड़े से पैसे दिखाए:

"देखो, मेरे पास अभी भी पैसे हैं। क्या मेरे पास सिक्के हैं, तो छत्र में खाना खाना सही है? देखते हैं ये कब तक चलता है। जब ये खत्म हो जाएँगे, तब हम छत्रों का इस्तेमाल कर सकते हैं। चलो, हम साथ चलते हैं, सभी छत्रों को जानते हैं, फिर वापस आएँगे।"

काशीराम ने मेरा तर्क मान लिया। वह मेरे साथ आया, हालाँकि उत्साह से नहीं। हालाँकि हमने किसी भी छत्र में खाना नहीं खाया, फिर भी हम घूमे और उस दिन सभी छत्र देखे। इतने सारे छत्र और मुफ़्त खाने की इतनी व्यवस्था देखकर मुझे बहुत खुशी हुई। मैंने मन ही मन कहा,

"वृंदावन आकर मुझे खाने की चिंता क्यों हुई? राधारानी ने तो चारों तरफ खाने का इतना इंतज़ाम कर रखा है

24

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

यहाँ। अब मुझे समझ आ रहा है कि मेरी सारी चिंता कितनी बेकार थी। इन सब जगहों को देखकर कंजूसों जैसे विचार मन में आते हैं: 'नहीं, मैं किसी छत्र में खाना नहीं खाना चाहता - मेरा मन इस सुरक्षा के आनंद से भर जाए कि राधारानी के छत्र मेरे लिए पर्याप्त हैं। जब भी मैं चाहूँगा, मुझे यहाँ तुरंत भोजन मिल जाएगा।'

इस प्रकार हम वृंदावन में आगे बढ़ते रहे। इधर-उधर घूमते-घूमते अचानक आसमान बादलों से घिर गया और बारिश होने लगी। लेकिन न तो यह तेज़ बारिश थी, न ही प्रेमियों के दिलों में रोमांस जगाने वाली। यह लगातार हो रही सर्दियों की बारिश थी जो दिन भर धीरे-धीरे गिरती रही। सड़कें कीचड़ से भर गईं और चूँकि हमारे पास कपड़े बदलने के लिए कुछ नहीं था, इसलिए हमने अपनी खोज यात्रा बीच में ही छोड़ दी। पास के एक राधा-कृष्ण मंदिर में बारिश से बचने के लिए शरण लेते हुए, हमें उनके दर्शन करने का अवसर मिला। फिर, एक छोटी सी दुकान चुनकर, हम दोनों ने नाश्ता और दोपहर का भोजन साथ-साथ किया - पूरी (तेल में तली हुई गेहूँ की टिकिया), दाल, और एक देसी गुड़ जैसा व्यंजन जिसे हम 'वेली' कहते हैं। फिर हम ब्रजवासी के घर लौट आए।

अगले ही दिन काशीराम का पैसा उसके गाँव से, ब्रजवासियों की देखरेख में आ गया। वे दोनों उसे लेने डाकघर गए। फिर काशीराम अपने गाँव लौट गया ताकि वहाँ फिर से अपनी ज़िंदगी शुरू कर सके।

काशीराम को अलविदा कहकर मैं भी ब्रजवासी के घर से निकल पड़ा, क्योंकि मेरे साथी के चले जाने से मेरा रहने का स्थान भी छिन गया था; अतः मुझे सबसे पहले एक आश्रय की आवश्यकता थी।

हाँ, एक आश्रय की आवश्यकता थी। आश्रय की इस आवश्यकता को मैंने अपने हृदय की गहराई में महसूस किया। मैं एक यात्री-साधु बनकर एक निर्जन जीवन शैली नहीं अपनाना चाहता था। मैं हर रात एक नए पेड़ के नीचे, पिछले पेड़ को छोड़कर, रुकना नहीं चाहता था। मैंने अपने हृदय की गहराई में आनंद का अनुभव किया था, इसलिए मुझे यात्रा से कोई आनंद नहीं मिला। मैं एक जगह चुपचाप बैठने के लिए तरस रहा था। छत्रों में भोजन की व्यवस्था हो चुकी थी। अब एक विश्वसनीय आश्रय की आवश्यकता है, मैंने मन ही मन सोचा।

इधर-उधर भटकते हुए मैं पुनः भारत सेवाश्रम आ पहुंचा।

और उसके प्रवेश द्वार के सामने सड़क के उस पार, मैंने फिर से भवानी ब्रजबासी को देखा, जो पहले की तरह उसी दुकान के सामने खड़ी थी।

मुझे पहचान कर उसने पूछा, "तुम कहाँ थे? मैं नहीं आया हूँ।"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

25

हमारी पहली मुलाकात के बाद से तुम्हें देखा है।"

"मैं अपने दोस्त के साथ बिपिन ब्रजबासी के घर पर रह रहा था; लेकिन आज वह शहर छोड़कर चला गया है, इसलिए मैं फिर से बेघर हो गया हूँ। क्या तुम्हें कोई ऐसी जगह पता है जहाँ मुझे काम के बदले रहने की जगह मिल जाए?"

सड़क के उस पार भारत सेवाश्रम की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा, "क्यों? ऐसा आश्रम तो यहीं है। वहाँ क्यों नहीं चलते?"

"क्या मैं जाऊं? क्या आप जानते हैं कि अगर मैं अंदर जाऊं तो मेरे लिए कुछ किया जाएगा?"

"मुझे यकीन नहीं है, लेकिन कोशिश क्यों न करें? स्वामीजी तो वहीं प्रवेश द्वार के अंदर बैठे हैं। आप उनसे पूछ सकते हैं।"

इस प्रोत्साहन और मन ही मन प्रार्थना के साथ, मैं मुख्य द्वार में प्रवेश कर गया।

पुरुषों, ऊँची दीवार से घिरा एक बड़ा परिसर था। एक तरफ निर्माण कार्य चल रहा था: कई मज़दूर, महिलाएँ और बच्चे भी, शोर मचाते हुए काम कर रहे थे। स्वामीजी उनके सामने बैठकर निरीक्षण कर रहे थे। मैं उनके सामने जाकर खड़ा हो गया और उन्हें प्रणाम किया।

स्वामीजी ने मेरी ओर गौर से देखा और पूछा, "तुम क्या चाहते हो?"

"मैं पिछले कुछ दिनों से वृंदावन में हूँ और अभी-अभी मेरा आखिरी रुपया भी खर्च हुआ है। क्या आप मुझे काम के बदले में आश्रय दे सकते हैं?"

उन्होंने पूछा, "आप कहां से हैं और वृंदावन क्यों आए हैं?"

"मैं पश्चिम बंगाल से हूँ, लेकिन यहाँ आने के लिए मुझे जगह-जगह भटकना पड़ा और मेरी कहानी बहुत लंबी है। क्या आपके पास लंबी कहानी सुनने का समय है?"

स्वामीजी ने अपने आप को समायोजित किया, अपनी कुर्सी पर सीधे बैठे, और कहा, "हाँ, हाँ, आओ और मुझे बताओ।"

मुझे इतनी राहत मिली कि आखिरकार कोई मेरी बात सुनने को तैयार हो गया, कि मेरे पास कहने के लिए शब्द ही नहीं बचे। उसने मुझे शुरुआत करने में मदद करते हुए पूछा,

"आपकी यात्रा में कहाँ बाधा आई?"

"हाँ, एक महीने तक मैं मथुरा जेल में था", मैंने जवाब दिया।

"क्या? तुम जेल में थे!" वह घबरा गया। "क्या किया था तुमने? क्या कुछ चुराया था, या कोई झगड़ा हुआ था?"

"नहीं, दोनों में से कोई नहीं। मैं अपनी मूर्खता के कारण वहां था।"

26

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

"केवल मूर्खता के लिए आप जेल गए?"

"जी हाँ," मैंने जवाब दिया। "यह तो बस मेरी ही नासमझी थी। मेरी माँ ही इस दुनिया में मेरा एकमात्र सहारा थीं, और उनकी मृत्यु के बाद मैं घर पर नहीं रह सकता था। मैं उनका अंतिम संस्कार करने गया गया। उनके अंतिम संस्कार के बाद, मैंने वृंदावन आने का निश्चय किया। अब अगर मैं अपनी पुश्तैनी ज़मीन बेच देता, तो यहाँ आराम से रह सकता था। लेकिन अपने रिश्तेदारों से मुझे इतना डर था कि मैं उसे बेचने की हिम्मत नहीं कर पाया। दरअसल, मैंने उन्हें बताया भी नहीं कि मैं शहर छोड़ रहा हूँ। बस संस्कार और यात्रा के लिए पर्याप्त पैसे लेकर मैं भाग गया। अब मैं आपसे पूछता हूँ, क्या यह मेरी मूर्खता नहीं थी?"

मेरे प्रश्न का उत्तर न देते हुए उन्होंने कहा, "लेकिन आपने मुझे यह नहीं बताया कि आप जेल में कैसे पहुंचे।"

"अरे हाँ! वो हिस्सा आगे आता है," मैंने जवाब दिया। "हावड़ा स्टेशन से मैं एक गाइड के बहकावे में आ गया। उसने गया में एक पंडे को मुझसे सामान्य से तीन गुना ज़्यादा किराया वसूलने के लिए उकसाया, और उसने ऐसा ही किया। अगर मेरे साथ धोखा न होता, तो पूरी यात्रा के लिए ट्रेन का किराया काफ़ी होता। और ऊपर से, गाइड ने खुद मुझसे ज़्यादा पैसे लिए। उसकी माँगें पूरी करने और काशी में उनके साथ दो दिन रुकने का खर्च उठाने के बाद, मेरे पर्स में वृंदावन के किराए के दस-पंद्रह रुपये कम पड़ गए। खैर, मेरे पर्स में सिर्फ़ प्रयाग (इलाहाबाद) के टिकट के लिए ही पैसे बचे थे। तो मैं क्या कर सकता था? प्रयाग से मैं बिना टिकट ट्रेन में सवार हो गया, और आगरा में मुझे पकड़ लिया गया; वहाँ से मुझे मथुरा जेल ले जाया गया।"

आगे क्या होगा?" यह सुनकर स्वामीजी बुदबुदाए, "हूँ! तो फिर क्या है?"

"इसके आगे कुछ नहीं है, और यही मेरी कहानी है। क्या तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है?"

"और अगर मैं तुम पर विश्वास न करूँ तो क्या होगा?" उसने कहा।

"खैर, मेरे पास कोई सबूत नहीं है... सिवाय इसके कि... प्रयाग में एक आदमी है, वृंदावन का एक ब्रजवासी - वह मेरी तरफ से बोल सकता है। मैंने ये किताबें उसके पास छोड़ दी थीं, लेकिन चूँकि वे उसके किसी काम की नहीं थीं, इसलिए मेरे जाते समय उसने मुझे लौटा दीं। वह मदन मोहन ब्रजवासी के लिए तीर्थयात्रियों को यहाँ लाता है। वह मुझे इलाहाबाद में जानता था और मेरी गवाही देगा।"

"क्या ये तुम्हारी कॉलेज की किताबें हैं?" उसने पूछा।

"जी हाँ, सर। अगर आप चाहें तो इन्हें ले लीजिए। शायद आपको इनका कोई अच्छा उपयोग मिल जाए।"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

27

उनके लिए। हालाँकि ये केवल कलकत्ता विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए हैं, लेकिन ये किसी भी विद्वान के लिए उपयोगी हो सकते हैं। देखिए, यहाँ शेक्सपियर,

टैगोर, माइकल मधुसूदन... और निगमनात्मक-आगमनात्मक तर्कशास्त्र, और कुछ इतिहास की किताबें भी हैं..."

इन सब बातों को नज़रअंदाज़ करते हुए उसने कहा, "ठीक है, ठीक है। लेकिन यह बताओ, तुमने कमीज़ क्यों नहीं पहनी है? तुम्हारे शरीर पर तो सिर्फ़ एक बनियान है।"

मुझे यह बताने में शर्म आ रही थी कि मैंने इसे इलाहाबाद में दे दिया था, इसलिए मैंने केवल इतना कहा, "मैंने इसे पीछे छोड़ दिया क्योंकि मैं वृंदावन जा रहा था, और आखिर यहां कपड़ों का क्या उपयोग है?"

स्वामीजी खिलखिलाकर हँसे और बोले, "पागल, सचमुच पागल! वह कहता है, 'यहाँ कपड़ों का क्या काम?'... तो, वृंदावन में तुम पेड़ों की छाल पहनोगे, नदी का पानी पीओगे, केवल प्रकृति से भोजन लोगे और केवल पहाड़ी गुफाओं में सोओगे - ठीक है? तो फिर तुम भारत सेवाश्रम में शरण लेने क्यों आए? पहाड़ी गुफा में क्यों नहीं?"

हमारे ठीक सामने, राजमिस्त्री काम कर रहे थे। जब स्वामीजी ज़ोर से हँसे, तो वे भी हँसने लगे, और फिर अपना काम छोड़कर सुनने के लिए पास आ गए।

मैंने कहा, "तुमने मुझे पकड़ लिया। मैं अपनी वासनाओं में इतना अंधा हो गया था कि मुझे लगा कि ज़िंदा रहने के लिए मुझे किसी और चीज़ की ज़रूरत नहीं है। मेरे पास जो थोड़ा-बहुत पैसा था, वह भी मैंने गया में लगभग खर्च कर दिया।"

"हाँ," उन्होंने कहा। "ऐसा ही होता है। युवा पीढ़ी को चीज़ों की व्यावहारिक समझ नहीं है। क्या आपको लगता है कि यह बाहरी त्याग आपको रातोंरात ईश्वर के संपर्क में ला देगा? अगर लंगोटी पहनकर घर से निकल जाने से यह लक्ष्य पूरा हो जाता, तो हर कोई ऐसा करता!"

हालाँकि वे मुझ पर हँस रहे थे, मैं अपने हृदय में उनकी करुणा को अपनी ओर प्रवाहित होते हुए महसूस कर सकता था। और उस क्षण, सब कुछ के बावजूद, मैं भीतर से पूरी तरह सुरक्षित महसूस कर रहा था। मुझे पता था कि मैं उन पर भरोसा कर सकता हूँ
- स्वामीजी मुझ पर दया कर रहे थे। मुझे उस क्षण का भी ध्यान नहीं रहा जब उन्होंने सामान्य संबोधन छोड़कर मुझे 'तू-तू' कहना शुरू कर दिया, और ऐसे मज़ाक करने लगे मानो हम बहुत समय से घनिष्ठ हों। स्वामीजी की हँसी, उनकी कोमल फटकार और उपहास की चुभन के साथ, मुझे एक प्रकार की खुशी से सिहरन हुई।

फिर उसने धीरे से मुझसे पूछा,

"अच्छा, क्या आपने कहीं दीक्षा ली है?"

यदि समय और व्यक्ति अलग होते तो मैं ऐसा नहीं कर पाता

28

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए, क्योंकि मैं उन गुप्त बातों को किसी को भी नहीं बता सकता था। लेकिन किसी तरह मुझे उनके साथ बहुत खुलकर बात करने का मन हुआ। और

अगर मैं कुछ न कहता, तो शायद वे स्वयं मुझे दीक्षा देकर अपने ढंग से ढालना चाहते। बेशक इससे मुझे रहने की जगह मिल जाती, लेकिन यह सब झूठे दिखावे के तहत होता। मुझे उनके साथ रहने में बिल्कुल भी सहजता महसूस नहीं होती, क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता था कि मैं उनका शिष्य कभी नहीं बन सकता। इसलिए, चाहे कितनी भी परेशानी और असुविधा क्यों न हो, मुझे इन मामलों पर खुलकर बोलना ही था।

मैंने उससे स्पष्ट रूप से कहा,

"जी हाँ, श्रीमान। मैं श्री अरविंद के योग में दीक्षित हूँ। यह केवल उनकी कृपा से ही है कि मुझे स्वीकार किया गया है।"

फिर मैंने उन्हें मथुरा जेल में अपने आखिरी दिन के दर्शन के बारे में बताया और कहा,

"इस कारण मैं कोई अन्य मार्ग स्वीकार नहीं कर सकता। किन्तु यदि आप मुझे आश्रय देंगे तो मैं आपका कृतज्ञ रहूँगा और जैसा आप कहेंगे वैसा ही करूँगा।"

उस समय मुझे यह पता नहीं था कि अधिकांश शिक्षक इस अनुरोध पर कैसी प्रतिक्रिया देते, लेकिन अब जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूं तो पाता हूं कि स्वामीजी मेरे प्रति कितने निस्वार्थ और दयालु थे!

"तो फिर तुम यहाँ क्यों आए?" उन्होंने विरोध के स्वर में मुझसे बस इतना ही कहा। "तुम पांडिचेरी स्थित श्री अरविंद आश्रम क्यों नहीं गए? वह आश्रम तुम्हारे लिए बहुत उपयुक्त होगा।"

"स्वामीजी, मैंने इसके लिए कोई कसर नहीं छोड़ी। बस मुझे आश्रम की माता से संपर्क बनाना नहीं आता था। मैं बहुत समय से कई लोगों से आश्रम तक आने और मेरे रहने की व्यवस्था करने के लिए कहता रहा हूँ, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। फिर, कुछ महीने पहले ही, मेरे गाँव के कुछ लोग वहाँ गए और यह कहकर लौट आए कि आश्रम अगले कुछ वर्षों तक नए लोगों को स्वीकार नहीं करेगा। लेकिन मेरी माँ के निधन के बाद, मैं घर पर दो-तीन दिन भी नहीं रह पाया। इसी कारण से मुझे श्रीकृष्ण की भूमि पर आने की इच्छा हुई।"

जब ऐसा लगा कि उन्होंने और कोई टिप्पणी नहीं की, तो मैंने अपनी बात जारी रखी, "मुझे उम्मीद है कि आप इस बात से नाराज़ नहीं होंगे कि मैं आपका शिष्य नहीं बन सकता। यहाँ आपके पास बहुत से लोग हैं जो आपकी सेवा करते हैं - रसोइया, नौकर, वहाँ के राजमिस्त्री... वे शिष्य नहीं हैं, है ना? मुझे भी वैसे ही क्यों नहीं रखते जैसे आप उन्हें रखते हैं? आप

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

29

मेरे काम में, यहां तक कि छोटी से छोटी बात में भी, पूरी ईमानदारी मिलेगी।"

मेरी बात सुनकर स्वामीजी ने गंभीरता से कहा, "हम्म।" और कुछ देर की खामोशी के बाद बोले, "ठीक है, हम तुम्हें एक मौका देते हैं। देखो, तुम यहाँ रह सकते हो या नहीं।"

फिर, खड़े होकर, वे मुझे एक दो-मंजिला इमारत की ओर ले गए। वहाँ एक कोने वाले कमरे में मेरा परिचय एक अन्य स्वामीजी से हुआ, जिनके बारे में मुझे बाद में पता चला कि वे वृंदावन स्थित इस आश्रम के प्रमुख स्वामीजी थे। मैं जिन पहले स्वामीजी से मिला था, वे गया स्थित एक सेवाश्रम के प्रभारी थे, लेकिन वे अपने एक शिष्य के साथ उस निर्माण कार्य का निरीक्षण करने आए थे जिसे मैंने चलते हुए देखा था। इसलिए, मुझे ठहराने का मामला निस्संदेह वृंदावन के स्वामीजी की सहमति पर निर्भर था। लेकिन गया के स्वामीजी की सिफारिश पर उन्होंने भी अपनी स्वीकृति दे दी।

तब स्वामीजी ने एक युवा शिष्य, ब्रह्मचारी को बुलाया और कहा,

"ब्रह्मचारी, कृपया उन्हें इस भवन की पहली मंजिल पर एक कमरे में ठहराने की व्यवस्था करें।"

अतः भारत सेवाश्रम में मेरे आवास की आधिकारिक व्यवस्था कर दी गई।

नोट और सन्दर्भ

1. राधा को भक्त 'राय' कहते हैं।

2. श्री कृष्ण को 'काला रत्न' कहा जाता है, क्योंकि उनका रंग गहरा हरा है, लगभग

30

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

काला; और देवताओं में श्रीकृष्ण से बढ़कर कौन है? अतः स्वाभाविक है कि वे वास्तव में काला रत्न हैं!

3. प्रसाद का अर्थ है देवता को अर्पित किया जाने वाला भोजन, जिसे बाद में भक्तों और आसपास खड़े लोगों में वितरित किया जाता है।

4. पवित्र जल से भरा विशिष्ट आकार का पात्र।

5. एक सरल संगीत वाद्ययंत्र.

6. तपस्वी के लिए एक कठोर नियम है कि उसे एक ही वृक्ष के नीचे दो बार रात नहीं बितानी चाहिए - क्योंकि यदि वह एक ही वृक्ष के नीचे कई दिन रहेगा तो उसे उस वृक्ष से आसक्ति हो जाएगी।

7. किसी आश्रम का मुख्य साधु।

8. ब्रह्मचारी का अर्थ है ब्रह्मचारी, धार्मिक छात्र; लेकिन इस मामले में ब्रह्मचारी स्वामीजी का शिष्य भी था - ब्रह्मचर्य अध्ययन की अवधि पूरी करने के बाद वह स्वयं स्वामीजी बन जाता था।

अध्याय तीन

स्वामीजी के शिष्य, ब्रह्मचारी, मुझे पुरानी दो मंज़िला इमारत की पहली मंज़िल पर ले गए। वहाँ उन्होंने एक दरवाज़ा खोला और कहा, "यह तुम्हारा कमरा है। अपना सामान नीचे रखो और थोड़ा आराम करो। मैं अभी वापस आता हूँ।"

यह सेवाश्रम के तीर्थयात्रियों के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक विशाल कमरा था - जिसमें दोनों तरफ बड़ी खिड़कियाँ और दरवाज़े थे और प्रवेश द्वार के रूप में एक आरामदायक बरामदा था। दीवारों में खाली अलमारियाँ थीं, लेकिन फर्नीचर का एकमात्र टुकड़ा एक बड़ी खाट थी। मैंने अपना किताबों का थैला खाट पर रखा और अपने नए परिवेश को तलाशने लगा।

32

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

जैसे ही मैंने हर खिड़की से बाहर देखा, मुझे ऐसी खूबसूरती दिखाई दी कि मैं खुद को उसे देखने से रोक नहीं पाया। इस घर के पीछे रेलवे स्टेशन था, और उसके ठीक आगे बाज़ार था; लेकिन उसके आगे जहाँ तक नज़र जाती, सिर्फ़ मंदिर और मंदिर ही नज़र आते। फिर सामने की खिड़की से एक अद्भुत दृश्य दिखाई दे रहा था: घने हरे पेड़ों के झुरमुटों के बीच से यमुना नदी धीरे-धीरे बह रही थी, घुमावदार, मानो उसकी दिशा ही मंद हवा से तय हो रही हो।

समय बीतने का एहसास न होते हुए, मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ब्रह्मचारी वापस आ गए थे। उन्होंने मुझसे कहा,

"हमारा खाना लगभग तैयार है। अब नीचे जाकर नहा लो।"

"क्या तरीका है?" मैंने पूछा। "क्या नल का पानी आता है?"

"हाँ, यहाँ नल का पानी उपलब्ध है, और यदि नल चालू नहीं है, तो कुएँ का पानी भी उपलब्ध है।"

"लेकिन क्या आप यमुना में स्नान नहीं करते?"

"अरे नहीं," उसने कहा, "यह यहाँ से काफ़ी दूर है और इसमें काफ़ी समय लगेगा। लेकिन अगर तुम चाहो तो आगे बढ़ो।"

"हाँ भाई, मैं सचमुच ऐसा करना चाहता हूँ। मैं दो दिन से वृंदावन में हूँ, और मैंने अभी तक नदी भी नहीं देखी है - और न ही इतने दिनों में नहाया हूँ!"

मुझे और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं थी। ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया,

"बहुत अच्छा, वहाँ जाकर स्नान करो।"

वह कुछ दूर तक मेरे साथ चला, फिर रुककर बोला, "मुझे तुम्हारे साथ आगे जाने की कोई ज़रूरत नहीं है। अगर तुम इसी रास्ते पर सीधे चलते रहोगे, तो तुम नदी के किनारे पहुँच जाओगे।"

और सचमुच, यह अच्छा ही हुआ कि उन्होंने मुझे अपने हाल पर छोड़ दिया। अगर वे मेरे साथ होते, तो मैं उस जल का अपनी संतुष्टि के अनुसार अनुभव न कर पाती; क्योंकि

किसी और के होते, तो मैं उस सच्ची भक्ति के साथ उसमें कैसे डूब पाती, और क्या उसके बाद मुझे इतना अनोखा आनंद मिलता?

दरअसल उस दिन मैंने वृंदावन का एक नया रूप देखा। पिछले दो दिनों में मैंने सिर्फ़ घर, आलीशान इमारतें, सड़कें, मठ, मंदिर और छत्र ही देखे थे। लेकिन उस दिन मैंने असली वृंदावन देखा: वह वृंदावन जो राधा और कृष्ण की क्रीड़ास्थली है, जो सैकड़ों-या यूँ कहें कि हज़ारों-साल पहले अस्तित्व में था!

एक ईंट का रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा होकर नदी के किनारे तक जाता था।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

33

यमुना। रास्ते के दोनों ओर बोकुल और देवदार के पेड़ लगे हुए थे। रास्ते के बिल्कुल पास, लेकिन लगभग नज़रों से ओझल, मुझे घनी झाड़ियों के पीछे एक शांत और एकांत आश्रम की झलक मिली... वहाँ दीवार से घिरी संन्यासियों की कुटियाएँ थीं। आश्रम के प्रांगण के अंदर और बाहर कदंब के पेड़ों के झुरमुटों में, मोरों के झुंड खुलेआम घूम रहे थे।

इस अद्भुत सौंदर्य को देखकर मेरे हृदय में एक गहरी अनुभूति हुई और वह आनंद से भर गया। किसी ने मानो मेरे कान में फुसफुसाया, "देखो, यही तो है वह वृंदावन जिसकी तुम मन ही मन तलाश कर रही थी!"

मुझे याद आया कि इसी रास्ते से गोपियाँ यमुना में पानी लेने गई थीं; श्रीकृष्ण अपने मित्रों के साथ इसी रास्ते से चरागाहों तक गए थे। रेत के हर कण में मुझे उनके दिव्य चरणों का स्पर्श महसूस हो रहा था!

प्राचीन वृंदावन में डूबे हुए मैं जैसे-तैसे आगे बढ़ रहा था, अचानक मेरे सिर के पास एक फड़फड़ाहट की आवाज़ सुनकर मैं चौंक गया। तोतों का एक झुंड तेज़ी से उड़

रहा था, उनके पंख लगभग मेरे कान को छू रहे थे! मैं उनकी उड़ान का पीछा करता रहा, जब तक कि वे एक अमरूद के बाग में मुफ़्त भोजन के लिए नहीं उतर गए। दरअसल, वह बाग़ से ज़्यादा एक जंगल था - रास्ते के दोनों ओर जहाँ तक नज़र जाती थी, नदी तक फैला हुआ था; कुल मिलाकर पच्चीस एकड़ का रहा होगा। फलों के पेड़ों के उस जंगल में, हर एक शाखा झुकी हुई थी

34

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

पके फलों के भार से, और हवा अमरूदों की मीठी खुशबू से भरी हुई थी। फलों की इस बेतहाशा बहुतायत को देखकर, मैं

पूर्वाह्न

सोचा कि यहाँ तो केवल पक्षी ही पके अमरूद चुरा ले जाते हैं; लेकिन अगर यह मेरे गाँव में होता, तो कुछ भी नहीं बचता - वे सभी लड़के...

फिर से! एक ऐसी ही आवाज़ ने मेरे मन में विचार भंग कर दिए, जब अचानक पक्षियों ने अपने पंख फड़फड़ाए और सड़क के उस पार कुछ ही दूरी पर उतर गए।

तभी मैंने पगड़ीधारी गार्डों को गश्त करते देखा।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

35

हाथों में गोफन लिए बाग़ में घूम रहे थे। हे भगवान! घर जैसा ही हाल था - यहाँ भी तो कोई सुरक्षा नहीं थी, फिर?

मेरा ध्यान पुनः अपने उद्देश्य पर केंद्रित हो गया और मैं तेजी से यमुना की ओर बढ़ चला।

दूर से, पानी की प्रचुरता ने अचानक मेरी आँखों को चकाचौंध कर दिया। आह, आनंद की कैसी सहज लहरें मुझे घेर रही थीं! किनारे पर पहुँचकर, मैं आश्चर्य से रुक गया। ईंटों से बने स्नानागार के आसपास प्राचीन काल की कई निशानियाँ मौजूद हैं। पवित्र जल में नीचे जाने वाली पुरानी, किनारे पर बनी सीढ़ियों को देखते हुए, मैं फिर से अतीत में चला गया, और सोचने लगा:

"शायद ये वही किनारे हैं जहाँ कभी कदंब के वे वृक्ष उगे थे जिनमें श्रीकृष्ण गोपियों के वस्त्र छिपाते थे। जिस भूमि पर मैं खड़ा हूँ, शायद श्री राधा स्वयं अपनी सखियों के साथ अनेक बार चली होंगी! इन्हीं सीढ़ियों पर उन्होंने खेला होगा और अपनी सखियों पर जल छिड़का होगा। यहाँ बैठकर उन्होंने गीत गाए होंगे, हँसे होंगे और अनेक कहानियाँ सुनाई होंगी। और जैसे ही डूबते सूर्य की सुनहरी छटा यमुना की काली धाराओं में प्रतिबिम्बित होती, राधा वहाँ जल का घड़ा भरने इस आशा में आतीं कि शायद उन्हें अपने प्रियतम की एक झलक मिल जाए! लेकिन ऐसे दिन भी थे जब राधा नहीं आती थीं...जब शायद

□□□□ □□□□□ □□□□ □□□□□□ □□ □□□□□ □□□□□□□ □□□□□ □□□ □□□□□□□ □□:

□□□□□□□ □□□ □□ □□ □□□□ □□□ □□□□□□□

"□□□□, □□□□!" □□ □□□ □□□□□□ □□□□□□ □□ □□□, □□□□□□□□ □□□□ □□□ □□□ □□□ □□□ □□□□:

"□□□ □□ □□ □□□ □□

□□□□ □□□□□ □□□□□ □□□ □□□□□,

□□□□□□ □□ □□ □□□□ □□ □□□□ □□□□□□ □□ □□□□□□□:

□□□□ □□ □□ □□□ □□□□, □□□□ □□ □□□□□□□ □□□ □□□□□-

□□, □□□□□ □□ □□, □□□□ □□□□□□ □□□□ □□□□□□□□ □□ □□□□ □□□ □□!

□□□□□□ □□□! □□ □□ □□□□□-□□□□ □□□□ □□ □□ □□□ □□ □□□□□□□□ □□ □□□□□□□ □□ □□□□ □□□□□□ □□? □□□ □□□□ □□□ □□□□□□□□ □□ □□□□□□, □□ □□□□ □□□□□ □□□ □□ □□□ □□□ □□ □□ □□□□□□ □□ □□□ □□□ □□ □□ □□ □□□□□ □□ □□□□□ □□ □□□□□ □□ □□ □□□ □□ □□ □□□□□□ □□ □□□ □□□□ □□□, □□ □□□□ □□ □□ □□ □□□□□ □□ □□□ □□□□ □□□□□□□ □□□, □□□ □□ □□ □□□□ □□, □□ □□□□ □□□□□ □□□□ □□? □□□□, □□□□□ □□□□□ □□ □□□□ □□□□□ □□□□ □□□□ □□□ □□□□ □□□□ □□□□ □□□□ □□; □□□□ □□□□, □□ □□□□□ □□□□ □□□□□ □□□□□ □□ □□□□ □□ □□□ □□□□□ □□ □□□□ □□□□□□□ □□ □□□□ □□□□□; □□ □□ □□ □□□ □□ □□□□□□ □□ □□□□ □□ □□ □□□ □□□□ □□□ □□□□ □□□□□ □□ □□□□□ □□ □□□□□ □□ □□□□□□□ □□ □□□□□□ □□□□ □□□□ □□; □□ □□□□□□□□ □□ □□□□□□□□ □□□□□□□ □□□□□ □□ □□□ □□□

यमुना को उस हालत में देखकर, अनजाने में ही मेरे मुँह से एक आह निकल गई। रेत का एक किनारा पार करते हुए, मैं उसकी ठंडी नीली धारा के किनारे घुटनों के बल बैठ गया। रेतीले किनारे पर खड़े होकर मैंने अपने दोनों हाथों में उसका पवित्र जल लिया, उसे अपने सिर और छाती पर डाला और थोड़ा सा पानी पिया। फिर मैं धीरे-धीरे पानी में उतर गया।

मैं नदी में और गहराई तक उतरने लगा, लेकिन हैरानी की बात यह थी कि पानी मेरे घुटनों जितना ही गहरा था! मैं नहाता कैसे? खैर, रेतीले तल पर लेटकर और एक तरफ से दूसरी तरफ हिलकर, मैं आखिरकार पानी में पूरी तरह से नहा पाया।

आह! यह अद्भुत था... यह पानी नहीं था, यह तो राधा-कृष्ण के प्रेम का अमृत था... हज़ारों गोपियों के अंतर्मन से तरल धारा के रूप में बहता प्रेम!

जब मैं पूरे शरीर को डुबोकर स्नान समाप्त करके यमुना के तट पर वापस आया, तो सचमुच भाव-विभोर हो गया। परम सौंदर्य का अवतरण तब हुआ था।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

37

मेरा हृदय। शाश्वत वृंदावन का सौंदर्य, जिसके लिए मैं लालायित था, मेरी आँखों के सामने प्रकट हो गया। मैंने जो कुछ भी देखा, वह अत्यंत सुंदर था।

जहाँ भी मैं देखता, मुझे यह अद्भुत सौंदर्य दिखाई देता; साधारण भौतिक वस्तुएँ भी अद्भुत रूप धारण कर लेती थीं। सब कुछ मेरी आँखों के लिए आनंदमय था। मैं कल के वृंदावन में वापस चला गया था:

"इस एक क्षण के लिए युग बीत गए;

अब अंततः संसार मुझमें परिपूर्ण होकर धड़कता है।"

(श्री अरबिंदो)

38

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

मुझे भी उस कवि जैसा महसूस हुआ जिसने कहा था:

आज भी वृन्दावन मनुष्य के हृदय को झंकृत करता है। शरद पूर्णिमा की रात्रि में, और श्रावण की वर्षा से भीगे दिनों में, वनों और झाड़ियों में आज भी विरह का गीत उठता है।

यमुना किनारे अब भी वो बांसुरी बजती है, प्रेम की क्रीड़ा अब भी जारी है, रात-दिन, फिर भी राधा हृदय के अंतस में रोती रहती है!

अचानक काशीराम के शब्द मेरे ज़ेहन में कौंध गए। जब हम वृंदावन जा रहे थे, तब काशीराम ने कहा था,

"पहले वृंदावन में प्रवेश करो, फिर जो कुछ भी देखना चाहोगे, देख पाओगे।" मैं सोचने लगा... उसने इतनी अच्छी भविष्यवाणी कैसे की होगी? क्या उसने भी यह सब सौंदर्य देखा था जो मैंने अभी देखा? शायद उसने देखा था, शायद वृंदावन की इस असाधारण दुनिया में आने वाले सभी लोगों के साथ ऐसा ही होता है!

अरे, खाने का समय हो गया! अचानक ब्रह्मचारी की याद आते ही मैं सेवाश्रम की ओर दौड़ा। परिसर में घुसते ही मैंने ब्रह्मचारी को बरामदे में इधर-उधर टहलते देखा। मुझे देखकर वे बोले, "हे भगवान! नहाने में ही इतना समय! जल्दी से रसोई में जाओ - रसोइया तुम्हारा इंतज़ार कर रहा है!"

मैंने दुःखी होकर कहा, "तुरंत, महोदय। यमुना में यह मेरा पहला स्नान था, इसीलिए..."

मैं अपनी देरी का कारण बताने ही वाला था कि ब्रह्मचारी अपने में मग्न होकर फिर से इधर-उधर घूमने लगे। मैंने जल्दी से अपना तौलिया रस्सी पर टांगते हुए उनसे रसोई का रास्ता पूछा।

"आओ, मैं तुम्हें वहाँ ले चलता हूँ।" ब्रह्मचारी मुझे रसोईघर में ले गए।

मेरे लिए एक चटाई बिछाई गई थी और रसोइया खाना परोसने के लिए इंतज़ार कर रहा था। मुझे देखते ही वह चावल की एक परात लेकर आया। बिल्कुल बंगाली खाने जैसा। दाल, एक तली हुई सब्ज़ी, करी और पोस्तु (सब्ज़ी के साथ इस्तेमाल होने वाला एक पिसा हुआ अनाज) था।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

39

मैंने हाथ धोए और चटाई पर बैठ गया। तभी कोई बच्चे की तरह रेंगता हुआ मेरी थाली की तरफ आया, मुट्ठी भर चावल उठाकर गायब हो गया - और बस एक पल में!

रसोइया हाथ में परोसने का चम्मच लिए दौड़ा आया। शोर सुनकर ब्रह्मचारी हाथ में बाँस की छड़ी लिए आँगन से दौड़कर अंदर आया। कुछ देर तक शोरगुल होता रहा, लेकिन चोर बहुत पहले ही गायब हो चुका था।

यह सब इतनी जल्दी हुआ कि मुझे इसका आधा ही एहसास हुआ। अगर चोर सामने वाले दरवाज़े से भाग जाता, तो मैं उसे आश्रम का कोई शरारती लड़का समझ लेता। लेकिन यह अपराधी रसोई की छत को सहारा देने वाले बाँस के एक डंडे पर चढ़कर ऊपर की छत पर पलट गया था - अभी भी मुट्ठी भर चावल पकड़े हुए!

मुझे असहाय भाव से अपनी थाली की ओर देखते देख रसोइए ने कहा, "ओह, तुम सचमुच हैरान हो, है ना? वृंदावन में तो बंदर सबको चौंका देते हैं। लेकिन यहाँ तो कोई परवाह ही नहीं करता - ऐसा अक्सर होता है। हम तो बस खाना खत्म कर देते हैं!"

बोलते-बोलते वह एक थाली लेकर आया और बंदर के छूए चावल मेरी थाली से चम्मच से उतार दिए। फिर वह रसोई से ताज़ा चावल ले आया।

फिर भी मैं स्तब्ध था। मेरे भीतर एक बेचैनी सी छा रही थी। मैं सोच रहा था कि ये दो दिन मैंने मथुरा जेल में मिले सिक्कों से खरीदी रोटी से आधे पेट भरकर बिताए थे। यूँ कहें कि पहली बार वृंदावन में राधारानी का प्रसाद ग्रहण किया था; और आज ही के दिन, एक बंदर मेरे और कृपा के उस प्रसाद के बीच आ गया? मेरे लिए क्या भविष्य था?

मुझे अभी भी वहीं बैठा, बिना कुछ खाए देखकर रसोइए ने पूछा, "क्या हुआ? क्या तुम उस थाली से खाना नहीं खाना चाहते जिसे बंदर ने छुआ है? क्या मैं तुम्हारे लिए नया खाना बना दूँ?" यह सुनकर कि वह खाना दोबारा बनाएगा, मुझे तुरंत होश आया - मैं इस खाने को बर्बाद कैसे कर सकता था? यह कहकर मैं काम में लग गया और खाना खाने लगा।

भोजन के बाद, जब मैं आँगन में धूप सेंक रहा था, तो इस सेवाश्रम के स्वामीजी, जो भूतल पर कोने वाले कमरे में रहते थे, ने मुझे अपने कमरे में बुलाया:

उन्होंने कहा, "यहाँ आओ, बातचीत करें।"

40

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

मैं उनके कमरे में गया। वे भगवा कपड़े से ढकी एक कुर्सी पर बैठे थे। जैसे ही मैं उनके पैरों के पास बैठने लगा, उन्होंने कड़ी आपत्ति जताई:

"फर्श पर मत बैठो; बहुत ठंड है। जाओ, उस लकड़ी के स्टूल पर बैठो - मैं इसे तुम्हारे लिए लाया हूँ।"

मैंने स्टूल पर ध्यान दिया था, लेकिन आदर के कारण मैं उनके बराबर बैठने से हिचकिचा रहा था। हालाँकि, उनके ज़ोर देने पर मैं स्टूल के पास चला गया।

उन्होंने मेरे अतीत के बारे में पूछा, और मैंने उन्हें सब कुछ बता दिया। बाद में उन्होंने पूछा,

"क्या आप निश्चित हैं कि ये पुस्तकें आपके लिए कोई सहायक नहीं होंगी?"

मैंने कहा, "हाँ, स्वामीजी, आप इन्हें जिसे चाहें दे सकते हैं।"

फिर उन्होंने कहा, "यहाँ हमारे साथ एक छात्र रहता है, जो मथुरा कॉलेज में पढ़ता है। उसे इनसे लाभ होगा। तुम्हें ऐसा महसूस होना चाहिए कि ये किताबें तुम्हारे घर पर हैं, और जब भी तुम्हें इनकी ज़रूरत होगी, ये तुम्हारे लिए यहाँ मौजूद होंगी।"

"नहीं, नहीं, साहब," मैंने विरोध किया। "मैं उन्हें कभी वापस नहीं माँगूँगा!"

जब स्वामीजी मुझसे बंगाली में बात कर रहे थे, तो मैंने उनकी विशिष्ट बोली पर ध्यान दिया। मैंने पहचाना कि यह बंगाल के खुलना ज़िले की है। उस बोली में, कोई भी बात प्रथम पुरुष में नहीं कही जाती। 'मैं करूँगा' कहने के बजाय, वे कहते हैं 'यह शरीर करेगा' - ताकि सब कुछ अवैयक्तिक हो जाए। अहंकार की भावना से मुक्ति पाने का यह कितना अच्छा तरीका है! मैं ऐसी ही भाषा, ऐसी शैली खोज रहा था जिससे छोटी-छोटी घटनाओं को भी 'मैं' के प्रयोग के बिना व्यक्त किया जा सके। इस खोज के कारण, मुझे तुरंत समझ आ गया कि इन बोलचाल की भाषा का क्या अर्थ है।

जैसे ही मैं स्वामीजी के कक्ष से बाहर निकला, ब्रह्मचारियों ने मुझे अपने कक्ष में बुलाया। इस सेवाश्रम में इसी श्रेणी के दो युवक थे। एक वहाँ निवास करने वाले स्वामीजी का शिष्य था। दूसरा गया से स्वामीजी का एक शिष्य था जो अब अस्थायी रूप से वहाँ निवास कर रहा था। दोनों अभी भी प्रशिक्षण ले रहे थे। उनमें से किसी को भी अभी तक संन्यास - पूर्ण त्याग की अवस्था - की दीक्षा नहीं मिली थी;

उनके सिर मुंडे हुए थे और वे श्वेत वस्त्र पहने हुए थे। स्वामीजी के संरक्षण में सेवाश्रम में मथुरा महाविद्यालय का एक छात्र भी रहता था।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

41

और मार्गदर्शन। और अंत में एक वेतनभोगी रसोइया था। उसका काम निवासियों और आने- जाने वाले तीर्थयात्रियों के लिए खाना बनाना और परोसना था। वह वहाँ नहीं रहता था। कुल मिलाकर, परिसर में केवल पाँच ही वास्तविक निवासी थे।

वहाँ अपने पहले दिन मैंने बिना किसी खास मेहनत के सेवाश्रम के बारे में बहुत कुछ सीखा, और साथ ही सभी निवासियों से भी परिचय प्राप्त किया। इतने सारे चिंताजनक और बेचैन दिनों के बाद, आश्रम में यह पहला दिन बहुत ही सहज, शीघ्र और सुखद ढंग से बीता।

अगले दिन, सूर्योदय के कुछ ही समय बाद, गया के स्वामीजी आँगन में राजमिस्त्रियों के काम का निरीक्षण कर रहे थे, और मैं बरामदे में एक बेंच पर बैठा ठिठुर रहा था।

मुझे देखकर स्वामीजी ने पुकारा, "अरे, युवक, मैं तुम्हारा नाम भूल गया - तुम वहाँ छाया में क्यों बैठे हो? यहाँ धूप में आओ।"

जैसे ही मैं उनके पास गया, उन्होंने पूछा, "क्या तुम्हें कल रात अच्छी नींद आई?"

मैं तुरंत जवाब नहीं दे सका; आखिर कह भी क्या सकता था? आश्रम आराम के लिए नहीं था। वहाँ कोई बिस्तर नहीं था, सिर्फ़ एक मोटा सूती चटाई (कंबल नहीं) थी, और मेरे अपने कपड़े और सूती शॉल भी पतले थे। कड़ाके की ठंड के कारण, मैं रात में कई बार काँपते हुए जाग गया था। जैसे ही मैं गहरी नींद में डूबने लगता, ब्रह्मचारी मुझे पूजा के लिए ले जाने के लिए आ जाते, जो हर तीन घंटे में होती थी। रात में ऐसा चार बार हुआ था, और सभी की उपस्थिति ज़रूरी थी। उस कड़ाके की ठंड में मुझे आधे घंटे ध्यान और जप के लिए नीचे खुले आँगन में जाना पड़ता था। फिर हम अपने कमरों में वापस आ जाते थे। और ऐसा लगता था कि जैसे ही मैं फिर से सो जाऊँगा, मुझे वही प्रक्रिया दोहराने के लिए जगा दिया जाएगा। तो मैं अच्छी नींद कैसे ले सकता था? और फिर भी मैं उन्हें नाराज़ नहीं करना चाहता था। अगर मुझे यहाँ रहना है, तो मुझे उनके कार्यक्रम के अनुसार ढलना होगा। लेकिन मैं ठंड का जिक्र कर सकता था: इसलिए मैंने कहा कि कड़ाके की ठंड के कारण मुझे अच्छी नींद नहीं आई - गहरी नींद के बीच

नींद में मैं काँपते हुए जाग गया था। "क्या?" उसने कहा, "तुम काँप रहे थे? हाँ, ठंड तो लग ही रही होगी। पर क्या करें, यहाँ बिस्तर नहीं रखते। मुझे जाने दो।"

42

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

देखो क्या मुझे कुछ अतिरिक्त कपड़े मिल सकते हैं - मेरे साथ आओ।"

वह मुझे ऊपर अपने कमरे में ले गए और अपने दो भगवा वस्त्र मुझे इस्तेमाल करने के लिए देते हुए कहा, "इन्हें ले लो। एक को तुम नीचे की चादर की तरह और दूसरे को अपने ऊपर इस्तेमाल कर सकते हो। अब इन्हें अपने कमरे में रख दो और फिर नीचे मेरे साथ आ जाओ। मेरे पास तुम्हारे लिए कुछ काम है।"

जैसा उसने कहा वैसा करने के बाद मैं उसके साथ हो लिया।

"क्या आप जानते हैं कि डाकघर कहाँ है?" उसने पूछा।

"मुख्य डाकघर?" मैंने पूछा। क्योंकि मैं उस मुख्य डाकघर को जानता था जहाँ से काशीराम ने अपना तार भेजा था।

"नहीं, तुम्हें इतनी दूर जाने की ज़रूरत नहीं है। पास ही एक शाखा है।" उसने रास्ता बताते हुए कहा, "सीधे आगे बढ़ो, दाईं ओर एक साइनबोर्ड देखो। चार पोस्टकार्ड और एक डाक टिकट वाला लिफ़ाफ़ा खरीद लो।"

उसने मुझे पैसे दे दिए, लेकिन जब मैं जाने लगा तो उसने मुझे वापस बुलाया और कहा, "मुझे दो अंतर्देशीय भी लाओ।"

अब मैं उलझन में था। क्या मैंने उनकी बात सही सुनी थी? 'इनलैंड्स'? आखिर 'इनलैंड्स' क्या होते हैं? अगर मैं सोच रहा होता, तो पोस्ट ऑफिस में ही पूछ लेता; लेकिन मैं वापस स्वामीजी के पास गया और पूछा, "इनलैंड्स क्या होते हैं?"

स्वामीजी हक्के-बक्के रह गए। "तुम्हें तो यह भी नहीं पता कि अंतर्देशीय क्षेत्र क्या होते हैं? तुमने मुझे यह क्यों बताया कि तुम कॉलेज गए थे? अब तुम मुझसे कैसे उम्मीद करते हो कि मैं तुम पर विश्वास करूँ?"

मैं समझ सकता था कि मेरे सामने एक बड़ी समस्या थी। कॉलेज में हमें 'इनलैंड' के बारे में नहीं पढ़ाया गया था। इसे सीखने के लिए, चिट्ठियाँ लिखनी पड़ती थीं और डाकघर जाना पड़ता था - लेकिन मुझे पहले कभी वहाँ जाने की ज़रूरत नहीं पड़ी थी। मैंने कभी किसी से पत्र-व्यवहार नहीं किया था। मेरे स्कूल के दोस्त अक्सर डाकिये से पूछते थे कि क्या उनके लिए चिट्ठी है, और वह उन्हें तुरंत चिट्ठियाँ थमा देता था; लेकिन जब मैं चिट्ठियाँ माँगता था, तो डाकिये मुझसे कहता था, "पहले बड़ा हो जाओ, फिर मैं तुम्हारे लिए लिफ़ाफ़े में चिट्ठियाँ भेज दूँगा!"

लेकिन शायद अब भी मैं बड़ा नहीं हुआ था, क्योंकि किसी तरह अभी तक मुझे डाक से लिफाफे में एक भी पत्र प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं मिला था!

खैर, मैं स्वामीजी को अपनी बेगुनाही का यकीन नहीं दिला पाया। आखिरकार, कई बहसों और जवाबों के बाद, उन्होंने मुझे शक की निगाहों से देखते हुए समझाया कि 'अंतर्देशीय' क्या होते हैं। फिर उन्होंने कहा, "पहले डाकघर जाओ। लौटते ही मैं तुम्हें ले चलूँगा।"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

43

"मैं किसी काम से मंदिर जा रहा हूँ। और शाम को आरती के बाद, मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे कमरे में आओ ताकि मैं तुम्हारी थोड़ी जाँच कर सकूँ।"

लौटते समय मैं मंदिर गया और गया के ब्रह्मचारी, जिनका कार्य मुझे करना था, ने मुझे मेरे कर्तव्य समझाए। सेवाश्रम के संस्थापक श्री प्रणवानंदजी का एक फ़्रेमयुक्त चित्र एक छोटे से मंच पर रखा था। फर्श पर पूजा के लिए विभिन्न प्रकार के बर्तन रखे थे - एक बड़ी गोल ताँबे की थाली जिस पर चंदन के लेप से 'ॐ' का प्रतीक बना था, एक अनुष्ठानिक घंटी, एक तेल का दीपक, जल रखने के लिए नाव के आकार के दो ताँबे के बर्तन, ताज़े फूल, पवित्र तुलसी के पत्ते, चंदन के लेप से भरा एक छोटा सा बर्तन, अगरबत्ती और लोबान की सुगन्ध, इत्यादि।

हर पूजा के बाद, इन बर्तनों और थालियों को साफ़ करना, पोंछना और वापस अपनी जगह पर रखना ज़रूरी था। और यह काम मुझे सौंपा गया था। मुझे हर पूजा से पहले फर्श भी धोना और पोंछना था। मैंने तुरंत काम शुरू किया, फर्श से शुरुआत की; फिर बर्तन साफ़ किए, और उसके बाद थाली पर फिर से एक नया 'ॐ' लिखा। मैंने आँगन-बगीचे के पेड़ों से एक टोकरी में फूल इकट्ठा किए, और उन्हें अपनी जगह पर रख दिया। बाकी सब काम पूरा होने के बाद, मैंने दोनों स्वामीजी और ब्रह्मचारियों की ध्यान की चटाईयाँ अपनी-अपनी जगह पर रख दीं।

जब मैंने अपना काम पूरा कर लिया, तो जिस ब्रह्मचारी ने मुझे मेरे काम के बारे में बताया था, उन्होंने मेरी प्रशंसा करते हुए कहा, "आह! मैं देख रहा हूँ कि तुमने सब कुछ सही ढंग से किया है।"

मेरे अंदर कितना सौभाग्य उमड़ रहा था! वृंदावन पहुँचकर मुझे ईश्वर की प्रत्यक्ष सेवा में काम मिल गया था - और इतने अच्छे स्वामीजी और इतना अच्छा आवास! यह मेरी सभी उम्मीदों से बढ़कर था। मैं ईश्वर के प्रति गहरी कृतज्ञता से भर गया।

हर छोटी-छोटी घटना में मुझे गया के स्वामीजी की करुणा का एहसास होता था। कल्पना कीजिए: हालाँकि मैं अभी-अभी वहाँ पहुँचा ही था, मुझे मंदिर में ही काम मिल गया था, जिसने मेरे पूरे अस्तित्व को आश्रम के माहौल की मुख्यधारा में ला दिया था।

खैर, उस पहली शाम की पूजा और भोजन के बाद, ब्रह्मचारी ने मुझे इशारा किया, "आइये, स्वामीजी चाहते हैं कि आप उनके पास आएँ।"

44

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

कमरा।"

तो, स्वामीजी अपने शब्द भूले नहीं थे! मुझे लगा कि आगे मेरी असली परीक्षा होने वाली है।

स्वामीजी अपनी चारपाई के एक छोर पर, मच्छरदानी के नीचे, दरवाजे से दूर मुँह करके बैठे थे; लेकिन जब उन्होंने मेरे कदमों की आहट सुनी, तो मेरी ओर मुड़े और

बोले, "तो, तुम आ गए। यहाँ आओ और चटाई पर बैठ जाओ। मैंने तुम्हारे लिए वे अखबार रखे हैं। मैं चाहता हूँ कि तुम उन्हें मेरे लिए पढ़ो।"

मुझे किसी तरह की परीक्षा की उम्मीद थी। लेकिन जब उन्होंने मुझे अखबार पढ़ने को कहा, तो मैं परीक्षा की बात ही भूल गया। मैंने मान लिया कि उन्हें बस समाचार सुनना है, और मेरे पढ़ने के बाद वे मेरी परीक्षा लेना शुरू कर देंगे। वहाँ अखबारों का ढेर देखकर, मुझे समझ नहीं आया कि कहाँ से शुरू करूँ। इसलिए मैंने स्वामीजी से पूछा,

"क्या आप चाहते हैं कि मैं अखबार को सीधे पढ़ूं, या मुझे पहले शीर्षक पढ़ना चाहिए, ताकि आप चयन कर सकें?"

स्वामीजी ने उत्तर दिया, "नहीं, नहीं, पहले पृष्ठ से शुरू करो। मैं तुम्हें पढ़ते हुए सुनना चाहता हूँ।"

"तो, उसे तो यह भी विश्वास नहीं है कि मैं पढ़ सकती हूँ - हे भगवान! मेरे ज्ञान की परीक्षा तो अखबार पढ़कर ही शुरू हो जाएगी!"

लेकिन मैंने अपने विचार प्रकट नहीं किये - अपने आश्चर्य को अपने तक ही सीमित रखते हुए, मैंने पढ़ना शुरू कर दिया।

जब मैंने कुछ वाक्य पढ़ लिए, तो स्वामीजी ने मुझे टोकते हुए कहा, "बस, अब बहुत हो गया। अब तुम्हें और पढ़ने की ज़रूरत नहीं है। क्या तुम कभी अखबार पढ़ते हो?"

"नहीं, सर," मैंने जवाब दिया। "अगर मेरे पास समय भी होता, तो भी मैं उसे अख़बारों पर खर्च नहीं करना चाहता।"

"तो फिर," उन्होंने हल्की मुस्कान के साथ कहा, "तुम खोटे सिक्के हो जिसका न कोई मूल्य है और न ही कोई उपयोग। खैर, तुम अखबार नहीं पढ़ते, लेकिन क्या तुमने कभी गीता पढ़ी है?"

"जी श्रीमान।"

"क्या आप 'गीता' शब्द का अर्थ समझते हैं?"

'गीता' का अर्थ? मैंने श्री रामकृष्ण की कथामृत में पढ़ा है कि यदि आप 'गीता' शब्द को लंबे समय तक दोहराते रहें, तो यह 'तागी' बन जाएगा जिसका अर्थ है समर्पण, और गीता में पाया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण अर्थ है पूरी तरह से ईश्वर की शरण में जाना, अपने पूरे अस्तित्व को ईश्वर को समर्पित कर देना।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

45

भगवान। श्री अरविंद के गीता-निबंध में, अपने संपूर्ण अस्तित्व को भगवान के प्रति समर्पित कर देना ही गीता का अंतिम समाधान है।"

गीता: फिर मैंने स्वामीजी को गीता के बारे में अपनी समझ बताई।

दिव्य गुरु ने अर्जुन को विभिन्न तरीकों से शिक्षा दी: "मुझ पर विश्वास रखो, योग में स्थिर होकर अपना नियत कार्य करो, तीनों गुणों (या जीवन के तरीकों) से ऊपर उठो, अपना पूरा जीवन और कार्य मुझे समर्पित कर दो; इन शर्तों पर, मैं तुम्हें पुनर्जन्म और मृत्यु के सागर से मुक्ति दिलाने का वचन देता हूँ।"

परन्तु जो कुछ उसे करना था उसकी विशालता सुनकर अर्जुन का साहस टूट गया और वह निराश होकर बैठ गया। तब बात को सरल बनाने के लिए गुरु ने कहा, "तुम्हें क्या हो गया है? क्या तुम नहीं कर पाओगे? अच्छा, मेरी बात सुनो, मैं तुम्हें और स्पष्ट रूप से बताता हूँ: केवल अपना मन मुझ पर एकाग्र करो। यदि तुम कहते हो कि तुम मुझ पर एकाग्र नहीं हो सकते, तो 'अभ्यास योग' से आरंभ करो। क्या क्षण भर में मुझ पर एकाग्र होना संभव है? समय के साथ अभ्यास से तुम इसे प्राप्त कर लोगे। और यदि तुम कहते हो कि तुम्हारा मन भुलक्कड़ है, अर्थात् अभ्यास करते समय तुम भूल जाते हो, तो कम से कम कर्मफल समर्पण योग का आश्रय लो। यदि तुम भूल भी गए तो कोई बात नहीं - केवल अपने कार्य के अंत में मुझे वह अर्पित कर दो; बस इतना ही काफी है - इससे मैं प्रसन्न हो जाऊँगा।"

फिर भी शिष्य की यह सलाह पूरी तरह संतुष्ट नहीं हुई। अंत में गुरु ने कहा, "बहुत अच्छा। तुम्हें और कुछ नहीं करना है, लेकिन क्या तुम मुझे प्रणाम कर सकोगे? बस इतना ही करो। मुझे प्रणाम करो। मेरे भक्त बनो। अपने मन और आत्मा से मुझे समर्पित हो जाओ। सभी धर्मों का त्याग करो और केवल मेरी शरण में आओ...।"

कुछ देर तक इसी प्रकार बोलते रहने के बाद, मुझे अचानक एक बार फिर स्वामीजी की उपस्थिति का अहसास हुआ, जो मेरी बातें ध्यानपूर्वक सुन रहे थे...और जैसे ही मुझे उनका अहसास हुआ, मेरे शब्दों का प्रवाह रुक गया।

"ठीक है," उन्होंने कहा। "अब मुझे गीता पढ़कर सुनाओ।"

उन्होंने शेल्फ से इसकी एक प्रति निकाली और मुझे देते हुए कहा, "शुरुआत से शुरू करो।"

मैंने पढ़ना शुरू किया, हालाँकि मुझे इसका अधिकांश भाग कंठस्थ था:

"धृतराष्ट्र ने कहा..." और मैं तब तक जारी रहा जब तक मैं "युयुत्सव भारत..." पर नहीं आ गया।

वहाँ उन्होंने मुझे रोका और पूछा, "इस श्लोक का अर्थ क्या है?"

46

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

मैंने उन्हें अपनी समझ के अनुसार समझाया। इसके बाद मुझे साफ़ दिख गया कि वे गीता की मेरी व्याख्या से खुश थे, हालाँकि मुझे नहीं पता कि मेरे बारे में उनके सारे संदेह दूर हो गए थे या नहीं। पहला अध्याय पढ़ने के बाद, उन्होंने प्रसन्न स्वर में मुझे रोका और किताब रख देने को कहा।

उन्होंने कहा, "मैं चाहता हूं कि आप हर शाम मुझे गीता पढ़कर सुनाएं।"

तो मुझे पता था कि मैंने स्वामीजी को खुश कर दिया है, और मुझे अपने अंदर एक गहरा संतोष महसूस हुआ - जो उस कथित कारण से कहीं ज़्यादा था। मैं मन ही मन गा उठा, "मुझे लगता है कि मुझे स्वामीजी की पूरी स्वीकृति मिल गई है, और उसके साथ उनकी करुणा भी। अब डरने की कोई बात नहीं है। अब मुझ पर कोई शक नहीं है। मुझे यहाँ से नहीं निकाला जाएगा। अब मैं आश्रम में रहने में आने वाली हर असुविधा और कठिनाई को सहन कर सकूँगा।"

और श्री राधा की तरह मैं भी कहना चाहता था:

अबे यार!

अब हजारों कोकिला एक साथ गाएं,

लाखों-करोड़ों चाँद आसमान में उगें,

दिव्य प्रेम के बाण गिनती से परे बढ़ें,

अब उन दक्षिणी सुखदायक हवाओं को धीरे-धीरे बहने दो।

इसका मतलब है, हमारी राधा हमें बता रही हैं कि बुलबुल का मधुर गीत, रसीले फूलों पर मंडराती मधुमक्खियों का गुंजन, बसंत ऋतु की हवा का लहराता स्पर्श, पूर्णिमा की रातों की शीतल चमक - ये सब चीज़ें कभी उनके हृदय को मृत्यु की पीड़ा की तरह पीड़ा देती थीं, क्योंकि ये उन्हें अपने प्रियतम से वियोग की याद दिलाती थीं। लेकिन अब श्रीकृष्ण उनके पास वापस आ गए हैं, उन्हें लगता है कि अब ये उन्हें पीड़ा नहीं देते; वे बुलबुलों से गाने को कहती हैं, चाँद से बार-बार उगने को कहती हैं, वे प्रेम के बाणों की प्रतीक्षा करती हैं और उनसे और अधिक बाण मांगती हैं, और वे बसंत ऋतु की हवाओं को चारों ओर से अपने चारों ओर घूमने के लिए बुलाती हैं!

आज की रात सौभाग्य से बीत गई, क्योंकि मैंने अपने प्रेमी के चाँद जैसे चेहरे को देखा;

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

47

जीवन और यौवन मुझे फलदायी प्रतीत होने लगे, दसों दिशाएँ अब संघर्ष से मुक्त प्रतीत होने लगीं!

नोट और सन्दर्भ

1. श्रावण: बंगाली कैलेंडर का चौथा महीना - लगभग जुलाई-अगस्त के बराबर।

चौथा अध्याय

भारत सेवाश्रम में दिन सुचारु और आनंदमय बीत रहे थे। पूजा-पाठ, स्वामीजी की सेवा और ब्रह्मचारियों की संगति में मेरा नियमित समय था। गया के स्वामीजी, जिन्होंने पहले मुझ पर संदेह किया था, अब वहाँ किसी और से ज़्यादा मुझ पर भरोसा करने लगे थे; दिन-ब-दिन वे मुझ पर अपनी कृपा बरसाते गए। और न केवल आत्मविश्वास की परीक्षा, बल्कि कई अन्य परीक्षाएँ भी मैंने शीघ्रता और सफलता से उत्तीर्ण कीं।

उदाहरण के लिए, हर रात चार बार पूजा के लिए जागना और फिर ध्यान करना, शुरू में लगभग असंभव सा लगता था। पहले तो मुझे लगा कि मैं कभी इसकी आदत नहीं डाल पाऊँगा। उन सर्दियों की रातों में वहाँ इतनी ठंड होती थी कि अँधेरे में उठकर उस खुले आँगन में जाने का ख़याल ही मेरे लिए असहनीय हो जाता था। और ऊपर से, हर रात चार बार, ठीक हर तीन घंटे में ऐसा करना! मेरे जैसे इंसान के लिए, जो कभी इसका आदी नहीं रहा, यह अकल्पनीय था!

लेकिन न जाने कैसे कुछ ही दिनों में यह भी एक स्वाभाविक प्रक्रिया बन गई; मैं दूसरों से पहले खुद ही उठने लगा और ध्यान करने लगा। गया के ब्रह्मचारी ने, जब मैं पहली बार सुबह उठा था, मुझे वहाँ देखकर कहा,

"क्या हो रहा है? कल तो हम तुम्हें नींद से भी नहीं जगा पाए थे, और आज तुम हमारे सामने हो! क्या तुम बिना सोए ही जाग गए?"

हंसते हुए मैंने जवाब दिया, "यह सही है कि मैं आपसे पहले यह काम करना चाहता था!"

इन शुरुआती कुछ दिनों में हम दोनों के बीच एक स्नेहपूर्ण रिश्ता विकसित हो गया था। मैंने इसे एक शुभ संकेत माना। दरअसल, मुझे स्वामीजी से ज़्यादा समय उन दोनों ब्रह्मचारियों के साथ बिताना पड़ता था; बातचीत, काम और भोजन का समय उनके साथ ही बीतता था। हम एक ही उम्र के थे। और फिर भी, उनके अनुग्रह के बावजूद,

61

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

49

स्वामीजी के अनुसार, इन दोनों की मित्रता के बिना सेवाश्रम में किसी भी समय रुकना असंभव होता।

बेशक, यह मेरे अपने प्रयासों से नहीं हुआ - बल्कि गया के ब्रह्मचारी की विशेष कृपा से हुआ। चूँकि उनके स्वामीजी ने ही मुझे स्वीकार किया था, मैं उनके सबसे करीब हो गया; हर काम में वे मुझे अपना साथी मानते थे।

उनकी राय में, वृंदावन रहने के लिए सबसे अच्छी और सबसे बुरी जगह दोनों थी। इस लिहाज़ से, मैं बाल-बाल बच गया था - अपनी छोटी सी उम्र में सेवाश्रम में यह आश्रय पाकर। उन्होंने मुझे सलाह दी कि कैसे खुद को ढालूँ और खतरे से बचने के लिए सतर्क रहूँ। उन्होंने तरह-तरह के उदाहरण और कहानियाँ विस्तार से बताईं।

जब मैं वृंदावन प्रवास के अपने सभी चरणों पर विचार करता हूँ, तो अब मुझे लगता है कि इस ब्रह्मचारी की मित्रता प्राप्त करना शायद एक अत्यंत कठिन परीक्षा उत्तीर्ण करने के समान था। दूसरों की नज़र में शायद ऐसा न लगे, लेकिन मैं अपने भीतर इसे ऐसा ही मानता हूँ।

और क्या यह सिर्फ़ पास होना था? मुझे तो दोहरी पदोन्नति मिल गई थी। ब्रह्मचारी ने न सिर्फ़ मेरी मदद की, बल्कि उन्होंने मुझे अपनी कुछ ज़िम्मेदारियाँ भी संभालने दीं, वो भी पूरी तत्परता से और बिना किसी नुकसान की भावना के। ऐसे इंसान बहुत कम होते हैं जिन्हें ज़िम्मेदारी के पद, यहाँ तक कि उन लोगों को भी जिनके साथ वे जीवन भर घनिष्ठ रहे हों, पूरी सहजता से छोड़ देना इतना आसान लगता हो। लेकिन मेरे साथ भी ऐसा हुआ; मैं भाग्यशाली था कि मुझे ऐसा व्यक्ति मिला।

एक दिन सुबह ब्रह्मचारी ने अचानक मुझसे पूछा, "आप वृंदावन आये हैं...तो मुझे बताइये कि यहां कौन सा आवश्यक गुण प्रमुख है?"

"प्रेम और आनंद की भावना।" मैंने बिना सोचे-समझे सहजता से उत्तर दिया।

हंसते हुए उन्होंने कहा, "शायद आप गोपियों को याद करके ऐसा कह रहे हैं? हाँ, हाँ, यह निश्चित रूप से एक तत्व है... जैसा कि कवि कहते हैं:

'दो प्रेमी एक दूसरे की गोद में लिपटे हुए -

और फिर भी वे दुखी हैं, अलग होने के बारे में सोच रहे हैं!'

इस तरह, हम सब राधा जैसे हैं। लेकिन मैं यह नहीं पूछ रहा। मैं जानना चाहता हूँ कि इन आश्रमों, मठों, धनछत्रों आदि का मूल उद्देश्य क्या है? इनका उद्देश्य क्या है?

50

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

होना?"

"उनका उद्देश्य क्या है?" मैंने कहा, "मुझे नहीं पता।"

"क्यों नहीं जानते? आप इसे अपनी आँखों से हर जगह देख सकते हैं! यह सेवा है... यही सच्चा उद्देश्य है। यह मानवता की सेवा है, और यहाँ यह प्रेम और आनंद के रूप में प्रकट होती है। सेवा ही आनंद है! वृंदावन में इतने प्रेम से की गई सेवा आपको और कहीं देखने को नहीं मिलेगी। इस तरह यह जगह बहुत खास है। और इसी वजह से, मुझे यह जगह बहुत प्रिय है!"

"सचमुच?" मैंने जवाब दिया, "मैंने इस बारे में इस तरह से नहीं सोचा था।"

"हाँ," उसने कहा। "अगर आप सड़क पर निकल जाएँ, तो आपको इसका सबूत मिल जाएगा। यहाँ तक कि सबसे बूढ़ी औरतें भी... जो सड़क के किनारे पानी के बर्तन और शायद अपनी प्लेटों में भुने हुए गेहूँ के कुछ मुट्ठी भर स्थानीय व्यंजन बनाने वाले पाउडर के साथ बैठती हैं... क्या आपको पता है कि वे वहाँ क्यों बैठती हैं? उनका एकमात्र उद्देश्य थके हुए भूखे मुसाफ़िरों को अपनी बनाई हुई चीज़ें बाँटना है - दूसरे शब्दों में, सेवा करना है।"

उन्होंने आगे कहा, "और सेवा की बात करते हुए, मैं अब आपको भी ऐसा करने का अवसर देना चाहता हूँ।"

मैंने उत्साह से कहा, "हाँ! मैं किस प्रकार सेवा कर सकता हूँ? यदि यह मेरी क्षमता के भीतर होगा तो मुझे सहायता करने में खुशी होगी!"

"ओह, मुझे अच्छी तरह पता है कि तुम ये कर सकते हो," उन्होंने कहा। "लगता है मुझे कुछ दिनों के लिए गया जाना है। मैं चाहता हूँ कि जब तक मैं जाऊँ, तुम स्वामीजी के खाने का ज़िम्मा संभाल लो। अगर तुम मान जाओ, तो वहाँ रहते हुए मैं सारी चिंताओं से मुक्त हो जाऊँगा। इसमें ये बात है: शाम ढलते ही स्वामीजी केले और गरम दूध ले आते हैं। दोनों चीज़ें बाज़ार से लानी पड़ती हैं। क्या तुम ये करोगे?"

मैं चुप थी। मैं ऐसा नहीं करना चाहती थी, लेकिन मैं उसके मुँह पर 'ना' भी नहीं कह सकती थी।

मेरी चुप्पी को सहमति मानते हुए, उन्होंने उत्साहपूर्वक अपनी बात जारी रखी, "आइए, मैं आपको अभी ले चलता हूँ और दिखाता हूँ कि केले और दूध दोनों कहाँ मिलेंगे।"

कुछ बोल न पाने के कारण, मैं उसके पीछे-पीछे बाज़ार की ओर चल पड़ा। चलते-चलते उसने मुझे सावधान किया,

"लेकिन ध्यान रखना कि सब कुछ समय पर ले आओ। अगर बहुत देर से पहुँचा, तो स्वामीजी उसे नहीं खाएँगे... और एक और बात याद रखना: स्वामीजी तुम्हें कभी अपने लिए कुछ याद नहीं दिलाएँगे, न ही माँगेंगे। अगर कुछ नहीं हुआ, तो वे बिना कुछ लिए ही चले जाते हैं; इसलिए अगर तुम भूल जाओ, तो…

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

स्वामीजी भूखे रहेंगे.

51

"मैं तुम्हारे लिए कुछ पैसे छोड़ जाऊँगा," उसने आगे कहा। "अगर पैसे कम पड़ जाएँ, तो उससे काफ़ी समय बाद और माँग लेना। याद रखना, मैं उसकी देखभाल करने के लिए यहाँ नहीं रहूँगा, इसलिए उसकी हर ज़रूरत का ध्यान रखना। रोज़ सुबह उसे मुँह धोने के लिए ताज़ा पानी लाना। नहाने के बाद उसके गीले कपड़े धूप में टाँग देना। दरअसल, ऐसे कई छोटे-मोटे काम होंगे जो तुम मुझे देखकर अच्छी तरह सीख सकती हो। इस तरह तुम भी खुद को उसके और करीब पाओगी। बेशक, अब भी उसे तुमसे बहुत लगाव है..."

ऐसा हुआ कि ब्रह्मचारी को कुछ ही दिनों में चले जाना था, और उस अवधि में उन्होंने मुझे पूरी तरह से उनका स्थान लेने के लिए प्रशिक्षित किया, ताकि स्वामीजी को किसी भी प्रकार की असुविधा न हो।

तो यही कारण था कि मैंने कहा कि मुझे दोहरी पदोन्नति मिलने वाली है!

लेकिन अपने अंदर पदोन्नति महसूस करने के बजाय, मैं परीक्षा में बुरी तरह से हार जाऊँगा। यह एक ऐसा सूक्ष्म एहसास था जिसका मुझे ज़रा भी एहसास नहीं था... या यूँ कहें कि यह एक उभरती हुई जागरूकता थी जिसे मैं पृष्ठभूमि में धकेल रहा था... क्योंकि, अगर उस पल मैंने पूरी स्थिति का सामना किया होता, तो मैं फिर से आश्रय से बाहर निकलकर वृंदावन की गलियों में भटक रहा होता!

लेकिन अंत में, मुझे एहसास हुआ कि मैं उस अपरिहार्यता से बच नहीं सकता। मैंने पाया कि मेरा बाहरी जीवन पूरी तरह से सेवाश्रम की गतिविधियों के इर्द-गिर्द घूमता था, और मेरे भीतर एक बेचैनी बढ़ती जा रही थी। रातों को मैं सो नहीं पाता था। मुझे बैठने, खड़े होने या खाने में कोई आनंद नहीं आता था। कुछ अवर्णनीय गड़बड़ थी। किसी चीज़ की कमी थी... मानो मुझे मिलने वाले हर नए अवसर के पीछे एक गहरा दर्द छिपा हो।

उदाहरण के लिए, जब कोई गुलाब की सुंदरता पर प्रसन्न होता है, तो उसके काँटों की चुभन को आसानी से नज़रअंदाज़ कर देता है। लेकिन मेरा दर्द उस किस्म का नहीं था।
अगर होता, तो मैं उसे बिना किसी शिकायत के आसानी से सह सकता था।

लेकिन नहीं! जिस समस्या को मैं लगातार महसूस कर रहा था, वह मेरे लिए जीवन-मरण का प्रश्न बनने लगी। बेशक, यह भी सच है कि जो मेरे लिए समस्या है, वह दूसरों के लिए बिल्कुल भी समस्या नहीं है।

52

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

यह सुनकर वे कहेंगे, "छी! क्या यह कोई समस्या है? क्या कोई इस पर इतना हंगामा करता है?" स्वामीजी ने भी मुझसे कहा, "तुम कितने मूर्ख हो! तुम इस बारे में इतना क्यों सोच रहे हो? इतनी छोटी सी बात पर इतनी चिंता क्यों?"

लेकिन मुझे आज भी याद है कि उस दिन यह समस्या मेरी पूरी चेतना में कैसे फैल गई थी, जब तक कि मैं अथाह पानी में साँस लेने के लिए तड़पने लगा - मानो मैं पूरी तरह से पानी में डूबा हुआ हूँ, लड़खड़ा रहा हूँ, तैरने के लिए संघर्ष कर रहा हूँ। यह बहुत भारी था। और इसीलिए मुझे लगता है कि यहाँ उस असाधारण समस्या के बारे में सब कुछ बताना ज़रूरी है:

अब जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो मुझे लगता है कि सेवाश्रम जाना मेरी ही भूल थी। अगर मैं वहाँ कभी नहीं जाता, तो स्वामीजी को बहुत सी परेशानियों से बचा जा सकता था, और मुझे जो कुछ सहना पड़ा, उसकी तो बात ही छोड़िए। अगर मुझे उस समय यह पता होता, तो मैं मंदिर में वह काम पाकर खुद को इतना भाग्यशाली नहीं समझता।

हाँ, काम में इसी पूरी तरह डूब जाने ने अंततः मेरे वहाँ रहने को मौत के घाट उतार दिया। अंततः, सेवाश्रम के संस्थापक स्वामी प्रणबानंदजी की इतनी सेवा और आराधना के साथ यह काम इतना व्यस्त हो गया था कि मुझे अपने गुरुदेव श्री अरविंद को याद करने का समय या अवसर ही नहीं मिला। वह रूप, वह देवता जिसे मैं हमेशा अपने भीतर देखता था, क्षीण होने लगा। हालाँकि मैंने बार-बार उसके दर्शन को अपने भीतर बनाए रखने की कोशिश की, लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सका। वास्तव में, जब मैंने कोशिश की, तो स्वामी प्रणबानंदजी या स्वयं गया के स्वामी के रूप मेरी आँखों के सामने तैरने लगे। और मेरे बाहर भी... सेवाश्रम में जहाँ भी मैं देखता, मेरी नज़र उनकी उपस्थिति के पहलुओं पर पड़ती। मानो प्रणबानंदजी की आत्मा ने सेवाश्रम के पूरे वातावरण को अपने में समेट लिया हो: स्वामीजी, ब्रह्मचारी, मंदिर, रसोइया, नौकर... कण-कण में, मुझे केवल प्राणबानंदजी ही दिखाई दे रहे थे।

फिर, ठीक उसी समय, मेरी बढ़ती हुई विपत्ति और उसमें शामिल होने के संयोग से, एक नया आघात लगा: मैंने अपनी वो संपत्ति खो दी जिसे मैं सबसे ज़्यादा महत्व देता था... माँ और श्री अरविंद की तस्वीरें, जिन्हें मैं हमेशा अपने बनियान के अंदर, अपनी छाती से लगाए रखता था। इस तरह मुझे उनकी शक्ति और सुरक्षा का एहसास हुआ। यह मेरे लिए बहुत बड़ी क्षति थी। मैं सोचने लगा:

"ऐसा क्यों हुआ? क्या मेरा यहाँ आना ग़लत था?"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

53

"क्या आप भारत सेवाश्रम में हैं? मैंने दो महीने तक तस्वीरें ऐसे ही रखी थीं, और कुछ नहीं हुआ... अब मैंने उन्हें क्यों खो दिया?"

एक ओर ऐसी चिंता, तो दूसरी ओर एक और प्रकार की पीड़ा भी उसमें शामिल हो गई। अब तक मैंने यही मान लिया था कि मेरे गुरुदेव और माताजी सदैव मेरे हृदय में हैं, कि योग में उनके साथ मेरा निरंतर संवाद इतना दृढ़ है कि दूरी का कोई महत्व ही नहीं है...तो यदि मैं पांडिचेरी के आश्रम में माताजी के पास न रह सकूं तो क्या हानि है?

लेकिन नहीं! उस क्षण मुझे अपनी गलती का एहसास हुआ। मुझे अचानक समझ आया कि आश्रम में माता के पास न रहने की मेरी भावना दरअसल माता के प्रति मेरी आहत भावनाओं से उपजी थी। हाँ, क्योंकि मुझे आश्रम में रहने की अनुमति नहीं थी। आश्रम की बारीकियों से अनभिज्ञ होने के कारण, मैं कभी भी माता से सीधे संपर्क करने का कोई रास्ता नहीं खोज पाया था। लेकिन सर्वज्ञ माता सब कुछ देख सकती थीं, मेरी आकांक्षा समझ सकती थीं। फिर उन्होंने मेरे वहाँ रहने की व्यवस्था क्यों नहीं की? तो, माता के प्रति आहत भावनाओं के कारण, मैंने सोचा था, "अगर मैं आश्रम में नहीं रह सकता तो मुझे क्या फ़र्क़ पड़ता है? अब मैं कहीं भी रहूँगा... चाहे वृंदावन में हो या मथुरा में, या हिमालय के पास किसी और जगह पर; और मैं जहाँ भी रहूँगा, मेरे लिए पांडिचेरी ही होगा!"

लेकिन यहाँ सेवाश्रम में ब्रह्मचारी मुझे हर पल याद दिलाते रहे कि अपने गुरु की पूर्ण निष्ठा से सेवा करने का क्या अर्थ है; और यह देखकर मुझे पांडिचेरी की पहले से कहीं ज़्यादा याद आने लगी। यह भावना मुझमें बढ़ती ही गई कि मुझे वहीं होना चाहिए, और कहीं नहीं। मुझे ऐसा लग रहा था कि ब्रह्मचारी जैसा मुझे कुछ भी नहीं मिला। जिस प्रकार एक समर्पित पत्नी केवल अपने पति के सुख की कामना करती है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी अपने गुरु - गया के स्वामीजी - की सेवा में दिन-रात समर्पित रहते थे।

मंदिर में काम करते समय, स्वामीजी की ध्यान चटाई को ज़मीन पर बहुत करीने से बिछाना मेरा काम था। अब, मेरे ऐसा करने के बाद, उदाहरण के लिए, ब्रह्मचारी आकर उसे थोड़ा सा व्यवस्थित कर देते... मानो उनका अंतिम स्पर्श बस यहीं होना था। जब वे अपने गुरु को नाश्ता परोसते, तो यह इतनी शांति से होता कि अगर मैंने इसे न देखा होता, तो मुझे पता भी न चलता कि यह हो गया है। इसके बाद स्वामीजी के स्नान के लिए पानी गर्म होने के लिए धूप में रख दिया जाता; और स्नान के बाद ब्रह्मचारी उन्हें उनके कपड़े देने और उनके गीले कपड़े टांगने के लिए वहीं मौजूद रहते।

54

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

धूप में बाहर की चीज़ें। भोजन के समय वे स्वामीजी को भोजन परोसते, चाय के समय उन्हें दूध और केले देते। शाम को वे ऊपर वाले कमरे में बिस्तर लगाते ताकि

स्वामीजी वहाँ आराम से ध्यान कर सकें; और रात में भी वे कई बार स्वामीजी का हालचाल पूछते रहते थे। हाँ, दिन भर यही उनकी साधना थी। यही उनका पूरा जीवन था।

बेशक, ब्रह्मचारी अपने गुरु के प्रति पूरी तरह स्वार्थी नहीं थे; उन्होंने मुझे भी कभी-कभार उनकी सेवा करने का मौका दिया। वे कहते, "यह करो, वह लो, स्वामीजी को यह दो..." वगैरह। लेकिन मैं ब्रह्मचारी की तरह हरगिज़ नहीं कर सकता था। मुझे सब कुछ कुछ फीका-सा लगता था... बिना नमक का और खोखला। कुछ कमी सी थी। मुझे लगता था कि मैं कभी दूसरा ब्रह्मचारी नहीं बन पाऊँगा। लेकिन उनके उदाहरण का मुझ पर असर ज़रूर हुआ। जब मैंने उन्हें अपने गुरु की सेवा करते देखा, तो मेरे अंदर अपने गुरु की सेवा करने की लालसा और भी बढ़ती गई।

काश! मैं वृंदावन क्यों आया था - इस शाश्वत भूल-भुलैया में? कितनी बड़ी भूल कर बैठा था! "काश मैं अपने गाँव में ही रहता," मैंने सोचा, "तो किसी दिन पांडिचेरी के लिए निकल पड़ता। लेकिन यहाँ से तो मेरी कोई उम्मीद ही नहीं है! मुझे नहीं लगता कि मैं वहाँ कभी पहुँच पाऊँगा!"

मेरे मन में बार-बार यही विचार आता रहा कि काश यह आश्रम मेरे गुरुओं का आश्रम होता, तो मेरे लिए स्वर्ग होता। तब मैं जहाँ भी देखता, मुझे अपने गुरुओं की याद आती। मैं अपने गुरुओं के सह-भक्तों के बीच होता; मैं उनके वातावरण में होता, उनकी ही हवा में साँस लेता। मेरा पूरा वातावरण स्वर्णिम प्रकाश से भर जाता!

मैं अक्सर श्रीअरविन्द आश्रम को याद करता था, और कालिदास के मेघदूत के योक्ष की तरह, रामगिरि पर्वत पर निर्वासित, मैं भी बहुत दूर पांडिचेरी की दिशा में देखते हुए एक लंबी आह भरता था!

लेकिन क्या बदकिस्मती थी! इसके अलावा मुझे एक ऐसी जकड़न महसूस हुई जो मुझे एक कविता की याद दिलाती है:

थैं नै, थैं नै, छोट्टो से तोरी!

'कोई जगह नहीं, कोई जगह नहीं, नाव छोटी है!'

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

55

और मेरे भीतर उथल-पुथल जारी रही। मुझे अक्सर ऐसा लगता था कि मैं सेवाश्रम छोड़कर, इस पूरी स्थिति में आई बाधा को तोड़ दूँ। तब मैं फिर से आज़ाद हो जाऊँगा और अपने गुरुओं और असली वृंदावन के साथ अपने संबंध को फिर से ताज़ा कर सकूँगा। कभी-कभी मैं सोचता, "क्यों न इन दायित्वों और अपने उस वचन को भूल जाऊँ कि मैं अपनी पूरी क्षमता से सेवा करूँगा? बस यहीं और अभी सब कुछ छोड़कर, बस निकल जाऊँ!"

दरअसल मुझे रोकने वाला कोई नहीं था। मैं तो बस दरवाज़े से बाहर निकल सकता था। लेकिन फिर क्या? क्या मुझे फिर से सड़क पर भटकना चाहिए, इतना भरोसेमंद आश्रय छोड़कर? आह, उस ज़िंदगी की सुरक्षा कितनी गहरी मोहब्बत थी! ये मोहब्बतें मेरे पैरों तले गोंद की तरह चिपकी हुई थीं, और किसी तरह मुझे इनसे बाहर निकलने का कोई रास्ता नज़र नहीं आ रहा था।

दिन में मैं लगातार काम करके इस समस्या से बचता रहा। लेकिन दिन खत्म होते ही, मुझे फिर से गले में वही गांठ महसूस होने लगती। ऐसी ही हालत में, मैंने श्री अरविंद की गंभीर आवाज़ सुनी, जो मुझसे कह रही थी,

"क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि किसी अन्य व्यक्ति के पास मत जाओ?"

उसके शब्द मेरे अंदर बिजली की तरह चुभ गए। मुझे याद आया, "आह, हाँ! उसने ऐसा कहा था... मथुरा जेल में... हाँ, ये मेरे लिए उसके आखिरी शब्द थे।" और इस पूरे समय मैंने उसकी बातों पर ध्यान देना ही छोड़ दिया था। मुझे उसकी स्वीकृति से इतनी खुशी हुई थी कि मैं उसके शब्द भूल ही गया था।

नहीं! मैं असल में भूला नहीं था। कैसे भूल सकता था? क्या ये कोई भूलने वाली बात थी? मैंने सोचा था, "श्री अरविंद ने मुझे स्वीकार किया है, और मैंने भी मथुरा जेल जाने से पहले ही, सचेतन रूप से उन्हें अपने गुरु के रूप में अभिवादन किया था। तो फिर किसी और के पास जाने का सवाल ही कैसे उठता है?"

लेकिन मैं बहुत लापरवाह था। मैंने यह नहीं समझा था कि एक सर्वज्ञ गुरु की हर बात ध्यान से सुननी चाहिए। हर बात का कोई न कोई कारण होता है। अगर मुझे परेशानी न होती, तो उन्होंने मुझे किसी और के पास न जाने के लिए क्यों कहा होता?

यह सब याद करके मैं गहरी कृतज्ञता से भर गया: "ओह, मेरे गुरु मेरा कितना ध्यान रखते हैं!" मैंने सोचा। "उन्होंने मुझे मेरे जीवन के इस महत्वपूर्ण क्षण में आगाह किया था - जब मैं मथुरा से वृंदावन आने वाला था, बिना किसी आर्थिक संसाधन के जो मेरे जीवन-यापन के लिए आवश्यक होता।"

56

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

मैं एक अजनबी जगह पर था, इसलिए मुझे भोजन और आश्रय के लिए किसी मठ, मंदिर या महात्मा संत के पास समर्पण करने की आवश्यकता अवश्य महसूस हुई होगी!

खैर, जाने दो। यह जानते हुए कि ब्रह्मचारी शीघ्र ही गया के लिए प्रस्थान करने वाले हैं, मैंने सोचा कि अब और देर नहीं करनी चाहिए। अगले ही दिन, स्वामीजी को अकेले देखकर, मैं उनके पास गया और उनसे पूरी बात कही:

"स्वामीजी, मैं यहाँ रहकर अपनी भूल स्वीकार करता हूँ। आप शुरू से ही जानते थे कि मैं यहाँ टिक नहीं पाऊँगा। अब मुझे समझ आया कि आपने क्यों कहा था, "ठीक है, यहीं रहो; देखते हैं कि रह पाते हो या नहीं।" लेकिन उस समय मैंने उस संकोचपूर्ण स्वीकृति को नज़रअंदाज़ कर दिया था। कृपया मुझे क्षमा करें, लेकिन मुझे आज ही यहाँ से चले जाने की आवश्यकता महसूस हो रही है।"

यह सुनकर स्वामीजी बहुत चिंतित हो गए:

"इतना अचानक क्यों? कहाँ जाओगे?" उसने पूछा। "पता नहीं; फ़िलहाल मेरे पास जाने के लिए कोई जगह नहीं है। मैं बिना इजाज़त के पांडिचेरी नहीं जा सकता; और इसके अलावा, बिना टिकट के इतनी दूर जाना नामुमकिन है। जब तक इंतज़ाम नहीं हो जाता।"

मुझे वृंदावन में कहीं और रहना पड़ेगा।" उन्होंने मुझे एक दयालु, लगभग अति दयालु नज़र से देखा और मुझे सांत्वना देने लगे:

"लो, लो।" उसने कहा। "तुम्हें अचानक ये जगह क्यों छोड़नी पड़ी? नहीं, नहीं, मेरे बेटे! मेरा ये मतलब नहीं था कि तुम यहाँ एडजस्ट नहीं कर सकते। अगर मुझे ऐसा लगता तो मैं तुम्हें यहाँ क्यों रहने देता? इन छोटी-छोटी बातों को खुद पर हावी मत होने दो। इनका कोई मतलब नहीं है। बस अपने काम पर वापस जाओ।"

मैंने सोचा था कि मेरी बातें स्वामीजी को बहुत नाराज़ करेंगी; मेरी चंचलता देखकर वे मुझे तुरंत बाहर निकाल देंगे। लेकिन हे प्रभु! उनका असर उल्टा ही हुआ!

सच कहूँ तो अगर मुझे बाहर निकाल दिया जाता तो ज़्यादा बेहतर होता। यह उन तमाम बहानों से कहीं ज़्यादा आसान होता जो मुझे बनाने पड़े।

मुझे वहाँ झिझकते हुए खड़ा देखकर, वह मुझे वहीं रुकने के लिए मनाने लगा:

"मेरे बेटे, क्या तुम आगे पढ़ना चाहोगे? तुम जो भी कोर्स करना चाहोगे, मैं तुम्हारा पूरा साथ दूँगा...चाहे वह मेडिकल हो, लॉ हो या इंजीनियरिंग...जो भी तुम चुनोगे! बस इतना ही काफी नहीं है

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

57

हम संन्यासी केवल ध्यान और पूजा-अर्चना में ही लगे रहते हैं। यहाँ के सभी ब्रह्मचारी उच्च शिक्षित हैं। उन्हें अक्सर सार्वजनिक सभाओं में वेदों, गीता, उपनिषदों और दर्शनशास्त्र पर प्रवचन देने के लिए बुलाया जाता है। कभी-कभी वे समाज सेवा के कार्यों, अकाल, महामारी और शरणार्थियों के लिए चंदा इकट्ठा करने के लिए जगह-जगह जाते हैं; और ज़रूरत पड़ने पर वे अपनी मेहनत का पसीना भी अर्पित करते हैं। इन सभी कार्यों के लिए ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। बताइए, क्या इनमें से किसी में आपकी रुचि है?"

मैंने बहुत धीरे से कहा, "नहीं स्वामीजी, मैं आगे पढ़ाई नहीं करना चाहता। मेरे पास पहले भी मौका था और हर तरह के साधन भी थे, पर मैंने उन्हें ठुकरा दिया। अब मैं लगातार सोचता रहता हूँ, 'कई लोग अचानक मर रहे हैं... क्या होगा अगर मैं भी तुरंत मर जाऊँ?'"

यह सुनकर स्वामीजी बहुत क्रोधित हुए और तुरंत मुझे डाँटने लगे:

"रुक! अभी के अभी अपनी बड़ी-बड़ी बातें बंद करो! अठारह-उन्नीस साल का लड़का मौत की बातें कर रहा है! सच-सच बताओ, क्या तुम सारे काम से बचने के लिए यहाँ से जा रहे हो? इसीलिए तो मैंने तुम्हें कोई भारी काम नहीं दिया। मैं तुम आजकल के

लड़कों को अच्छी तरह जानता हूँ... तुम सब मौत से ज़्यादा काम से डरते हो। भला कैसे पेट भरोगे?... बाक़ी आवारा लोगों की तरह दर-दर भीख माँगकर?"

"स्वामीजी," मैंने कहा, "आपने मुझे भारी काम क्यों नहीं दिया? अगर आपने मुझे इन राजमिस्त्रियों और मज़दूरों की तरह निर्माण कार्य दिया होता, तो शायद मैं भी यहाँ काम कर पाता। धूल में ईंटों और सीमेंट के साथ काम करना, और उनकी तरह कहीं और रहना और खाना... शायद तब मैं यहाँ रह पाता।"

"तो फिर आगे बढ़ो, उनके साथ रहो और काम करो...कौन रोक रहा है?" उसने गुस्से से जवाब दिया।

"नहीं स्वामीजी, बहुत देर हो चुकी है। अब यहाँ रुकना संभव नहीं है। मैं आपको कैसे समझाऊँ...?"

"कोशिश मत करो। बहुत हो गया। मुझे बहुत काम है - मैं तुम्हारी बातें बाद में सुनूँगा।"

स्वामीजी उठ खड़े हुए।

अब मुझे बहुत बुरा लग रहा था। मैंने उस स्नेह और ध्यान को ठुकरा दिया था जो उसने मुझ पर इतनी बार बरसाया था। मैं यहाँ क्यों आई थी? ये सब सोचते-सोचते मुझे बहुत दर्द होने लगा।

लेकिन चाहे यह सब कितना भी दर्दनाक क्यों न रहा हो, बाद में मुझे राहत मिली... और आज़ादी का वो एहसास फिर से उभरने लगा। तब मुझे एहसास हुआ कि इस सब के पीछे मेरी आत्मा की प्रेरणा थी;

58

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

चाहे आज हो या कुछ दिन बाद, मुझे यह विराम लेना ही पड़ता। "शुभस्य विराम" - जितनी जल्दी, उतना अच्छा!

लेकिन मामला अधर में लटक गया था। अभी तक कोई अंतिम निर्णय नहीं हुआ था। स्वामीजी के अंतिम शब्द क्रोध में नहीं कहे गए थे - "तो फिर, यहाँ से चले जाओ!"

मैं अपने दैनिक कार्य में लग गया, पूरे दिन समाधान के लिए चिंतित रहा।

दोपहर में, जब मैं मुख्य द्वार के सामने बरामदे में एक बेंच पर आराम कर रहा था, बातें करते हुए यात्रियों का एक समूह द्वार से परिसर में दाखिल हुआ। सबसे आगे एक युवक था। उसके गले में दूरबीन लटकी थी; एक हाथ में बैग और दूसरे में सूटकेस था। वह आगे-आगे चल रहा था। उसके बगल में धूप का चश्मा पहने एक युवती चल रही थी, कंधे पर कैमरे का बैग। उनके पीछे एक और युवती अपनी कमर पर एक लड़के को लिए हुए थी और एक छोटी बच्ची का हाथ पकड़े हुए थी। और पीछे कई बुजुर्ग व्यक्ति चल रहे थे। वृंदावन में पर्यटन का मौसम था और एक ट्रेन अभी-अभी आई थी। सेवाश्रम में

ऐसे लोगों की अब उम्मीद थी और उनका स्वागत था क्योंकि यात्रियों की मदद करना इस जगह का मुख्य कार्य और आय का प्राथमिक स्रोत भी था।

पहली नज़र में मैंने उन्हें एक विस्तृत परिवार समझा: एक मज़दूर अपने प्रियजनों को तीर्थयात्रा पर ले जा रहा था। लेकिन अपनी आँखों के सामने यह सुखद दृश्य देखकर मैं पहले से कहीं ज़्यादा व्याकुल हो गया। ओह, मेरा कोई नहीं था, पूरी दुनिया में कोई नहीं! मैं कितना बदकिस्मत था! मैं यहाँ था, इस गर्म, सुरक्षित आश्रय को छोड़ने की कगार पर... "लेकिन अब आगे क्या? अब मैं कहाँ जाऊँ?"

मैं निराशा की भावना में डूब गया। लेकिन यह सब बस कुछ सेकंड के लिए ही था। फिर मैंने खुद को संभाला: "मैं क्या सोच रहा हूँ? यह उदासी क्या है?"

मैं तुरंत उठा और स्वामीजी को उनके आगमन की सूचना दी। उन्होंने मुझे उनकी ज़रूरतें पूरी करने का निर्देश दिया। मैंने उनके इस्तेमाल वाले कमरे खोले और साफ़ किए, उनमें से एक को बाथरूम दिखाया, और पास के बाज़ार से उनकी ज़रूरत की चीज़ें ख़रीदने का इंतज़ाम किया।

लेकिन शाम को मैं फिर उस बेंच पर जाकर बैठ गया, जहाँ मैं अक्सर सेवाश्रम में अपना खाली समय बिताता था।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

59

अच्छे-बुरे मौसम में मेरा साथी बनो, सपनों के लिए मेरा कोना। जब भी मेरा काम खत्म होता, मैं ऊपर वाले कमरे में बैठने की बजाय वहीं बैठ जाता।

मैं अगली सुबह सेवाश्रम छोड़ने का इरादा रखता था, और वहां बैठकर मैंने अभ्यास किया कि मैं स्वामीजी से क्या कहूंगा।

हाथ में जलती हुई अगरबत्तियों का बंडल लिए, गया से आए ब्रह्मचारी स्वामीजी के कमरे और अन्य कमरों से गुज़रे। धीमी आवाज़ में वे धीरे से गा रहे थे:

मेरे हृदय की गहराई में भी श्याम है, और बाहर भी श्याम है, इस यमुना के जल में भी श्याम है।

नीचे भी यही श्याम है, ऊपर भी यही श्याम है; सम्पूर्ण नील गगन में व्याप्त है श्याम।

"श्याम से प्रेम करो, श्याम से प्रेम करो, जमुना से प्रेम करो। श्याम से प्रेम करो, श्याम से प्रेम करो, श्याम से प्रेम करो।"

मैं चुपचाप सुन रहा था। मुझे लगा कि ब्रह्मचारी मुझे उस अँधेरे कोने में बैठे नहीं देख पाएँगे, और मैं इस त्यागी की अंतरतम प्रार्थना को बिना देखे सुन सकता हूँ। लेकिन नहीं। उनकी आँखें बिल्ली जैसी थीं; उस अँधेरे में भी उन्होंने मुझे पहचान लिया। मुझे देखकर उनका गाना अचानक बंद हो गया। उन्होंने मुझे डाँटना

शुरू कर दिया: "तुम यहाँ अँधेरे में बैठे क्या कर रहे हो? मैं सारा दिन तुमसे एकांत में बात करने के लिए इंतज़ार कर रहा था। तुम कहाँ थे?"

"मैं भी तुम्हें ढूंढ रहा था," मैंने उठते हुए कहा।

"क्यों? क्यों? क्या बात है? सुना है तुम जा रहे हो! ऐसा तो नहीं हो सकता न? क्योंकि मैं तुम पर भरोसा कर रहा था... मैं गया जा सकता था और तुम..."

"हाँ, मेरे भाई। तुम्हें मुझे माफ़ करना होगा। यह मेरी नियति है कि तुम्हारे प्रेम और स्नेह के बावजूद मैं इस सेवाश्रम में नहीं रह सकता। मैं कल यहाँ से जा रहा हूँ, बिल्कुल।"

"लेकिन क्यों? क्या ग़लत हुआ है?"

स्वामीजी की तरह ब्रह्मचारी की आवाज़ भी अत्यंत चिंता और चिंता से भरी हुई थी।

60

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

"आश्रम में कुछ भी ग़लत नहीं हुआ है," मैंने जवाब दिया। "यहाँ आकर मुझसे ग़लती हुई है, और अब मुझे उस ग़लती को सुधारना है।"

"लेकिन इतनी जल्दी क्यों? तुम्हें यहाँ आए हुए मुश्किल से पंद्रह दिन ही हुए हैं। क्यों न कुछ दिन और रुककर इस जगह को एक मौका दो? मुझे यकीन है कि तुम्हारी यह असुविधा और असंतोष जल्द ही दूर हो जाएगा। आखिरकार, तुम हमेशा के लिए वृंदावन में तो नहीं रहोगे। जैसे ही यह निर्माण-कार्य पूरा हो जाएगा, हम गया वापस चलेंगे और तुम भी हमारे साथ चलोगी। और वहाँ पहुँचकर स्वामीजी तुम्हें दीक्षा देंगे, जैसे उन्होंने हमें दी है..."

"नहीं, मेरे भाई!" मैंने उसे रोका, "यह असंभव है! मुझे जाना होगा!"

ब्रह्मचारी ने सहानुभूतिपूर्वक कहा, "ओह, तुम असंभव हो! क्या तुम्हें पता नहीं कि तुम कब संपन्न हो? तुम किस तरह के इंसान हो जो इस सौभाग्य का मज़ाक उड़ा रहे हो? जब मैं पहली बार आया था, तो मुझे तरह-तरह की कठिन परीक्षाएँ झेलनी पड़ी थीं। हम सभी को इस दौर से गुज़रना पड़ता है। मैं यहाँ एक साल तक परीक्षा में रहा, और दूसरों के साथ भी यही कहानी रही है। अगर कोई इस तरह की परीक्षा नहीं झेल पाता, तो वह चला जाए, उसे कोई मना नहीं सकता। लेकिन तुम... जब से तुम आए हो, तुम्हें सब कुछ दिया गया है! क्या तुम्हें पता नहीं है कि स्वामीजी ने तुममें कितनी रुचि ली है, और तुम्हारे प्रति उनका कितना स्नेह है? उन्होंने यह भी देखा कि तुम सिर्फ़ एक बनियान पहने हुए हो और ठंड से काँप रहे हो... पिछले कुछ दिनों से उन्होंने मुझे बाज़ार से तुम्हारे लिए गर्म कपड़े और बिस्तर लाने को कहा है। ऐसा सिर्फ़ इसलिए हुआ क्योंकि मुझे अभी तक वहाँ जाने का समय नहीं मिला था। इसीलिए..."

"नहीं, ब्रह्मचारी भाई। अब मुझे उनकी कोई ज़रूरत नहीं है। मैं कल सुबह जल्दी निकल जाऊँगा। इससे ज़्यादा मैं क्या कहूँ? ऐसा सुरक्षित और सुखी आश्रय मेरे लिए नहीं है। भिखारी का जीवन ही मेरे भाग्य में है। और अगर मैं यहीं रहा, तो दर-दर भीख माँगना संभव नहीं होगा। जब आप मुझे अपने मुख्य द्वार से एक छत्र से दूसरे छत्र जाते हुए देखेंगे, तो आपको मेरी बात का प्रमाण मिल जाएगा!"

यह महसूस करते हुए कि अब और कुछ कहने को नहीं बचा है, ब्रह्मचारी ने आहत स्वर में कहा: "ठीक है! मैं जाकर स्वामीजी से कह दूँगा कि आप कल सुबह अवश्य चले जाएँगे....गया की मेरी यात्रा के लिए इतना ही!"

मैं असहाय था। मैं ब्रह्मा के लिए कुछ नहीं कर सकता था-

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

61

चारी। लेकिन मुझे राहत मिली कि अब स्वामीजी के पास जाने की ज़रूरत नहीं थी। ब्रह्मचारी सीधे उनके पास गए और उन्हें मेरा निर्णय बताया।

अगली सुबह मैं वृंदावन के स्वामीजी के पास गया और उनसे विदा ली। मैंने उनसे अपने जाने के बारे में कभी चर्चा नहीं की थी, और ज़ाहिर है इसकी ज़रूरत भी नहीं थी क्योंकि मैं गया के स्वामीजी के संरक्षण में था, और मेरे बारे में उन्होंने जो भी फ़ैसले लिए थे, उनमें उन्होंने कोई दखल नहीं दिया था।

फिर भी उन्हें सब कुछ पता था जो हुआ था...यहाँ तक कि मुझे आज सुबह ही जाना था। प्रणाम के बाद मैं खड़ा हुआ और उन्होंने कहा, "तो, तुम अभी जा रहे हो? एक मिनट रुको..."

यह कहकर वह बगल के कमरे में गायब हो गया।

जिस दिन मैं वहाँ पहुँचा था, मैंने उसे अपना शेष धन दे दिया था।

सत्तर या अस्सी पैसे, और उससे कहा कि वह इसे मेरे भरण-पोषण के लिए खर्च करे। लेकिन अब तक मुझ पर कोई खर्च नहीं हुआ था... और यह अच्छा ही हुआ: वरना उनके प्रति मेरा दायित्व असहनीय लगता, और मैं उनके सेवाश्रम से दूर जाने में इतना स्वतंत्र महसूस नहीं करता।

स्वामीजी उन्हीं सिक्कों के साथ वापस आये और बोले, "लो, ये ले लो और अपनी पुस्तकें भी ले लो।"

चूँकि मैं जा रहा था, इसलिए उन्हें किताबें रखने का कोई मतलब नहीं सूझा। लेकिन मैंने ज़िद की, "स्वामीजी, कम से कम ये किताबें तो रख लीजिए।"

हालाँकि, उन्होंने उन्हें एक तरफ रख दिया।

फिर मैं गया के स्वामीजी के पास गया। हमेशा की तरह वे आँगन में बैठे निर्माण कार्य का निरीक्षण कर रहे थे। मुझे देखते ही उन्होंने कहा,

"हाय, मेरे बेटे! क्या तुम सचमुच जा रहे हो? ब्रह्मचारी कहाँ हैं? वे चाहते थे कि जब वे गया जाएँ, तब तुम यहीं उनके यहाँ रहो। सेवाश्रम में जो भी आता है, उसके साथ ऐसा ही होता है - वह अपने प्रिय लोगों को अपने पास रखना चाहता है। बेचारा!"

और स्वामीजी जोर से हंसने लगे - हा-हा-हा-हा!

लेकिन मुझे लगा कि उसकी हँसी बनावटी थी, और मेरे दिल का दर्द मेरी सहनशक्ति से कहीं ज़्यादा था। हमारे बीच जो स्नेह का बंधन बन गया था, उसे तोड़ने और जाने का रास्ता आसान बनाने के लिए, मैंने कहा, "लेकिन तुम नहीं जानते कि मैं पहले से कहीं ज़्यादा खुशी की तलाश में कितना बेसब्र हूँ।"

62

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

यहाँ सुरक्षित हूँ। आने वाले दिनों में जब आप मुझे एक छत्र से दूसरे छत्र पर जाते देखेंगे, तो आपको इसका प्रमाण मिल जाएगा..."

लेकिन स्वामीजी ने मेरी बात को अलग तरह से समझा और कहा, "तो फिर तुम क्यों जा रहे हो? तुम्हें जगह-जगह भीख मांगने के लिए कौन कह रहा है? बस कुछ दिन और यहीं रहो, फिर देखो कि तब तक तुम्हें कैसा महसूस होता है!"

"नहीं, नहीं, स्वामीजी, कृपया ज़िद न करें। अगर मैं यहाँ और रुका तो मेरे अंदर ग़लत काम करने की भावना और बढ़ जाएगी। अब मुझे समझ आ गया है कि मुझे यहाँ आना ही नहीं चाहिए था... कृपया मुझे माफ़ कर दीजिए!"

स्वामीजी ने अचानक एक बहुत ही अलग दृष्टिकोण अपना लिया।

उसने अचानक मुझसे पूछा,

"अच्छा, बेटा, क्या तुम उस 'विदेशी महिला' को अपनी माँ कहते हो?"

पहले तो मैं उसके सवाल से चौंक गया। क्या वह मेरे मन में 'माँ, माँ' के जप की बात कर रहा था? पर उसे कैसे पता? मैंने तो कभी किसी से इस बारे में बात ही नहीं की थी। फिर जब मैं उससे इस बारे में पूछने ही वाला था, मुझे याद आया: अरे हाँ! पहले ही दिन मैंने उसे बताया था कि मेरे गाँव के लोग पांडिचेरी से यह कहकर लौटे हैं कि 'माँ' अभी नए लोगों को स्वीकार नहीं कर रही हैं। वह ज़रूर इसी बात का ज़िक्र कर रहा होगा। और तब मुझे तुरंत समझ आ गया कि उस 'विदेशी महिला' से उसका क्या मतलब था। मैंने उसे जवाब दिया,

"हाँ, श्रीमान्, मैं उन्हें 'माँ' ज़रूर कहता हूँ। मैं माँ को 'माँ' क्यों न कहूँ? इसमें ग़लत क्या है? हम तो मिट्टी और पत्थर से तरह-तरह के देवता बनाते हैं और उन्हें 'माँ' कहकर पूजते हैं, है न? और अगर हम मिट्टी और पत्थर की मूर्तियों की

पूजा कर सकते हैं, तो स्वामीजी, एक हाड़-माँस की स्त्री को 'माँ' कहने में क्या ग़लती है, चाहे वह कोई विदेशी महिला ही क्यों न हो?

"वास्तव में, स्वामीजी, मैंने आश्रम की माता को अपनी आँखों से कभी नहीं देखा, फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि मैंने उन्हें अनेक बार अनेक रूपों में देखा है। मैंने अनेक अवसरों पर उनकी उपस्थिति का अनुभव किया है। मुझे तो ऐसा भी लगता है कि अनगिनत जन्मों से वे मेरी माता रही हैं। माता की बात करें तो मेरा पूरा अस्तित्व जीवंत हो उठता है... देखिए, मेरे शरीर के सारे रोंगटे खड़े हो गए हैं!"

मैंने बहुत से शब्द कहे, लेकिन स्वामीजी की चेतना में कोई भी बात नहीं पहुँची। तब तक उनका ध्यान राजमिस्त्रियों की ओर लौट आया था, वे उन्हें आगे के निर्देश दे रहे थे।

वृंदावन के स्वामीजी भी अपने कमरे में व्यस्त थे। सेवाश्रम में मेरे जैसे लोग अक्सर आते-जाते रहते थे।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

63

यदि वे इस प्रक्रिया में अनावश्यक रूप से शामिल होते तो इससे उनके जीवन का प्रवाह बाधित हो जाता।

लेकिन दोनों ब्रह्मचारी इन चीज़ों के लिए नए थे, इसलिए आसानी से प्रभावित हो जाते थे। सेवाश्रम के मुख्य द्वार से बाहर निकलते हुए मैंने आखिरी बार देखा कि दोनों ब्रह्मचारी बरामदे में खड़े थे और उस आदमी को दया से देख रहे थे, जो अपनी इच्छा से फिर से सड़कों पर भीख माँगने जा रहा था!

नोट और सन्दर्भ

1. धर्मार्थ संगठन.

2. मेघदूत का अर्थ है 'बादल-दूत'; यह कालिदास का एक प्रसिद्ध काव्य है। इसमें योक्ष की कहानी है, जो रामगिरि पर्वत पर निर्वासित है, जबकि उसकी प्रेमिका दूर आलोकपुरी में है। वह बादलों के ज़रिए उसे संदेश भेजता है।

3. द गोल्डन बोट, रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा।

4. श्याम: श्री कृष्ण जिनका रंग गहरा हरा है।

अध्याय पांच

छत्र से छत्र तक मेरी भिक्षावृत्ति वास्तव में भारत सेवाश्रम से प्रस्थान के दिन से शुरू हुई।

चूँकि इस समय मेरे पास पांडिचेरी जाने का कोई रास्ता नहीं था, और चूँकि मैं सेवाश्रम में भी नहीं रह सकता था, तो विकल्प क्या था? दिन में मैं रास्ते में मिलने वाले चतरों से कुछ रोटियाँ ले लेता, और रातें मैं साधु-संतों के साथ एक गुफा में बिताता।

बेशक, इस विशेष भूमि में, राधा-कृष्ण के इस अनुग्रहपूर्ण स्थान में, प्रत्येक कार्य और प्रत्येक वस्तु का अपना अनूठा महत्व था। वृंदावन की सड़कों की धूल को साधारण गंदगी नहीं कहा जाता है - इसे प्रेम-रज-प्रेम-धूल के रूप में जाना जाता है! यहां एक घर सिर्फ एक इमारत नहीं है, बल्कि एक कुंज है, जिसका अर्थ है उपवन या बगीचा, जहां राधा-कृष्ण अपनी दिव्य क्रीड़ा करते हैं: एक घर का नाम राय-कुंज, या राधा के उपवन और दूसरे का श्याम-कुंज-कृष्ण का बगीचा था; और वहां ललिता-कुंज, धीर-समीर-कुंज और कई अन्य थे। इसी तरह, वृंदावन में भीख मांगने का भी एक विशेष नाम है... कोई भी इसे भीख नहीं कहता। भारत सेवाश्रम में स्वामीजी ने इसे भीख

मांगना कहा था, सभी इसे मधुकरी कहते हैं, जिसका अर्थ है 'शहद इकट्ठा करना'। और यहाँ शहद को राधा और कृष्ण की कृपा का प्रतीक माना गया है। इसलिए वृंदावन में भीख माँगना वस्तुतः ईश्वरीय कृपा का सक्रिय संग्रह है, ठीक वैसे ही जैसे एक मधुमक्खी एक फूल से दूसरे फूल पर उड़कर शहद इकट्ठा करती है। यहाँ, जो भीख माँगता है, या मद-हुकारी करता है, उसका अभिमान नष्ट हो जाता है... माना जाता है कि भीख माँगना अभिमान को तोड़ने में सहायक होता है: अपने से निम्न लोगों के प्रति तिरस्कार की भावनाएँ मिट जाती हैं। सारी लज्जा, सारी घृणा और अहंकार की भावना

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

65

नष्ट हो जाता है, इस प्रकार व्यक्ति के मन और शरीर को नित्य-लीला - ईश्वर की शाश्वत लीला - के लिए तैयार किया जाता है। और जो भोजन देता है, या यूँ कहें कि 'शहद' इकट्ठा करने वाले व्यक्ति को उत्तर देता है, वह प्रतीकात्मक रूप से भिखारी को नहीं, बल्कि राधारानी को - भिखारी के वेश में स्वयं ईश्वर को भोजन अर्पित कर रहा होता है। इसलिए, यहाँ वृंदावन में, न तो देने वाला और न ही लेने वाला बड़ा या छोटा है, न अमीर है और न ही गरीब; दोनों ईश्वर की दृष्टि में समान हैं, और दोनों को ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त होता है।

इसी कारण, यहाँ भीख माँगने का वह शर्मनाक अर्थ नहीं है जो अन्यत्र है। और इसी विशेष महत्त्व के कारण, धनवान व्यक्ति भी, जिनका सामान्य कार्य दान करना है, भीख माँगने के लिए गरीबों का वेश धारण कर लेते हैं। लाला बाबू, जो मुँह में चाँदी का चम्मच लेकर पैदा हुए थे, और जिनके मंदिर में सैकड़ों-हजारों तपस्वी, संत, पंडित और वैष्णव भिक्षु भोजन करते हैं, मुट्ठी भर चावल के लिए कंधे पर बटुआ लटकाकर भीख माँगने निकल पड़ते थे!

यहाँ भिक्षा माँगना तपस्या का ही एक अंग है। यह एक साथ आत्मा और शरीर, दोनों की सेवा करता है; एक ओर यह 'योग' है - ईश्वर से मिलन; तो दूसरी ओर, यह 'भोग' भी है।

लेकिन किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि मैं हमेशा के लिए भिखारी बन जाऊँगा, और अपने किए को जायज़ ठहराने के लिए मैंने भीख माँगने का इतना सुंदर चित्र बना दिया है। नहीं, महोदय! बिलकुल नहीं। मैंने वृंदावन की वास्तविक स्थिति का वर्णन किया है।

तुम्हें इस सब पर यकीन नहीं हो रहा? तुम्हें सबूत चाहिए?

ठीक है, मैं कुछ प्रमाण देने की कोशिश करूँगा। शायद आप हमारे युग के साहित्यकारों पर विश्वास करते हों... क्या हम उनसे उदाहरण लें? कई लेखक इस तथ्य से वाकिफ हैं। अगर नहीं, तो उन्होंने अपनी कहानियों के ज़्यादातर असहाय और असहाय नायक-नायिकाओं को रेलगाड़ी से काशी या वृंदावन क्यों भेजा, और उन्हें यात्रा के लिए सिर्फ़ टिकट ही दिए? उन्होंने यह क्यों नहीं सोचा कि वे वहाँ कैसे गुज़ारा करेंगे? और जब ऐसा बार-बार होता है, तो यह संयोग कैसे हो सकता है? मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यह भीख की उम्मीद में किया गया था। उदाहरण के लिए, श्रीकांतो की कमल लता, प्रियनाथ मुखर्जी, बामुनेर मेये की संध्या और ज्ञानोदा, शेषर परिचय की ब्रज बिहारी और रेणुका - या अन्नपूर्णा को याद कीजिए।

66

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

और रवीन्द्रनाथ की चोखेर बाली की बेनोदिनी। ऐसे कई उदाहरण हैं: श्रीकांतो में अन्नदा-दीदी, पंडित मशाई के बृंदावन और कुसुम और रायकमल के रायकमल - शायद उन्होंने भी बृंदावन की मरम्मत की थी।

और ये इस घटना के हमारे सामने उपलब्ध अनेक उदाहरणों में से कुछ ही हैं। साधारण जीवन की कठिनाइयों और अन्यायों के कारण, ये पात्र अपने घर-परिवार को छोड़कर शांति और शायद अपनी समस्याओं के कुछ समाधान खोजने के लिए वृंदावन आते हैं; और भिक्षाटन की इस प्रक्रिया के माध्यम से, हालाँकि वे तपस्वी वेश में नहीं हैं, वे स्वयं को आंतरिक प्रगति करते हुए और वास्तव में साधना करते हुए पाते हैं। कभी-कभी, किसी व्यक्ति विशेष के लिए, इस व्यवसाय का अभ्यास अपरिहार्य हो जाता है। तो फिर मुझे बताइए, अगर यहाँ भिक्षाटन में कुछ अनोखा न होता, तो ये सभी लेखक अपने पात्रों को वृंदावन भेजने की जहमत क्यों उठाते?

यह दिलचस्प है कि इन लेखकों ने कभी यह नहीं बताया कि उनके नायक और नायिकाएँ वृंदावन क्यों जाते हैं, या वहाँ क्या करते हैं। मुझे लगता है कि इसके पीछे एक कारण है: भिक्षावृत्ति को मधुकरी कहा जा सकता है, लेकिन जब तक किसी ने स्वयं यहाँ इस प्रक्रिया का अनुभव न किया हो, तब तक मधुकरी भारत में कहीं और भीख माँगने के अलावा और कुछ नहीं है, और इसके साथ मधुकरी का कोई भाव नहीं जुड़ा है। इस अर्थ में, संशयवादियों के लिए, यह तुच्छ भीख माँगने के अलावा और कुछ नहीं है। कहीं संशयवादी तिरस्कार में नाक-भौं सिकोड़ न लें, इसलिए लेखकों ने इस विचार को लोगों की नज़रों से छिपाया। या शायद, उन्होंने सोचा होगा कि अगर यह पता चल जाए कि काशी और वृंदावन में मुफ़्त भोजन आसानी से मिल जाता है, तो दुनिया भर से हर आवारा, भिखारी और निकम्मा वहाँ जमा हो जाएगा! शायद यही वजह थी कि इन लेखकों ने ये सावधानी भरे कदम उठाए।

बेशक, उनकी सावधानी पूरी तरह कारगर नहीं रही। उन्होंने अपने नायकों और नायिकाओं को काशी और वृंदावन इसी तरह भेजा, यही बात कई लोगों को इन जगहों की ओर खींच लाई, जैसा कि मैं आगे बताऊँगा।

भिक्षावृत्ति का वर्णन तो बहुत हो गया। अब मैं मुद्दे पर आता हूँ: जिस क्षण मैंने भारत सेवाश्रम छोड़ा, मुझे सब कुछ वापस मिल गया—मुझे अपने भीतर फिर से माता और श्रीअरविंद का स्पर्श महसूस हुआ। हालाँकि मैं वृंदावन में रह रहा था, फिर भी मेरा उनसे संपर्क टूट गया था।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

67

इसके साथ ही, अपने मानसिक द्वंद्व के कारण अब मैं वृंदावन भी वापस आ गया। लेकिन साथ ही, मुझे पांडिचेरी भी भूलना पड़ा। क्या उन परिस्थितियों में पांडिचेरी जाना संभव था? इसलिए मुझे पांडिचेरी को भूलना पड़ा। मैंने खुद को यह कहकर सांत्वना दी:

"दुनिया में इतने सारे लोग हैं... अगर वे सब पांडिचेरी में रहना चाहें, तो यह कैसे संभव होगा? और माँ इतनी भीड़ से शायद खुश न हों। इसलिए अगर मैं पांडिचेरी में नहीं रह पाऊँगा, तो क्या हर्ज है? आखिर, ईश्वर तो वृंदावन में भी है। क्या श्रीअरविंद और श्रीकृष्ण में कोई अंतर है? क्या रामप्रसाद ने नहीं गाया था:

"आप श्याम और श्यामा (काली) में अंतर देखते हैं।

यद्यपि तुम्हारे पास आँखें हैं, फिर भी तुम कितने अंधे हो!

इन शब्दों को मन में रखते हुए मुझे शांति का अनुभव हुआ - मानो मैं हमेशा के लिए वृंदावन में रह सकूंगा।

एक अन्य मामले में भी, यह अच्छा था कि मैंने सेवाश्रम छोड़ दिया... अन्यथा मैं इस मधुकरी प्रदर्शन को कभी नहीं समझ पाता, भले ही मैं वृंदावन में रह रहा था।

वहाँ, कितने ही स्थायी छत्र हैं जहाँ भरपेट भोजन मिलता है... मतलब, जहाँ पेट भरकर खाया जा सकता है; और इसके अलावा, ब्रजवासी भी अपने घरों में मधुकरी चढ़ाते हैं। यह हमारे गाँव जैसा नहीं है, जहाँ घर की औरत यह कहकर टाल देती है, "मुझे परेशान मत करो, मैं व्यस्त हूँ - किसी और घर जाओ!" या घर का मर्द अचानक कह देता है, "क्या तुम अपना पेट भरने के लिए काम नहीं कर सकते?"

नहीं! यहाँ तो बस चौखट पर खड़े होकर राधा का नाम जपना और "जय राधे राधे!" कहना ही काफी है। ब्रजवासी स्त्रियाँ अपने सारे काम छोड़कर दौड़ी चली आती हैं और मधुकरों को मधुकरी अर्पित करती हैं।

और जो देते हैं वो कोई साधारण मधुकारी नहीं होती! भिखारी के स्पर्श से बचने के लिए, वो तिरस्कार और बेतरतीब ढंग से उसके बटुए में आधी मुट्ठी नहीं डाल देते। बिल्कुल नहीं! गरमागरम मुगलई परोटा (घी में तला हुआ आटा) और साथ में कोई सब्ज़ी या पका हुआ छोला (एक पौष्टिक फली) या थोड़ा सा गुड़... और उसके साथ एक गर्मजोशी भरा स्वागत, 'कृपया पधारें और अपना आसन ग्रहण करें' वाला भाव - मानो मधुकारी करने वाले नहीं, बल्कि स्वयं श्रीकृष्ण उनके घर पधारे हों!

68

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

लेकिन क्या दूसरी जगहों के लोग मेरी बात पर यकीन कर पाएँगे? वे कहेंगे कि मैं बढ़ा-चढ़ाकर कह रहा हूँ, बस एक मनगढ़ंत कहानी लिख रहा हूँ। इसलिए मेरा सुझाव है कि आप सभी एक बार वहाँ ज़रूर जाएँ और खुद देखें कि वे 'प्यार की धरती' में कैसे प्यार करते हैं और कैसे रहते हैं!

बेशक, एक बात ध्यान में रखनी होगी: ये सभी व्यवस्थाएँ तपस्वियों, संतों और वैष्णव संतों के लिए हैं। उनकी सेवा के लिए ही इतने सारे दान-गृह, छत्र, तीर्थ, आश्रम और मठ हैं। उनकी कृपा पाने के लिए ही धनी व्यापारी लाखों रुपये छत्रों पर खर्च करते हैं और रात के अंधेरे में सोते हुए साधुओं और तपस्वियों के बगल में नए वस्त्र, कंबल और कमंडल बिछा देते हैं। जो तपस्वी सड़कों पर, गुफाओं में या

पेड़ों के नीचे सोते हैं, उनके सिर के पास नए कमंडल और भोर में जागने पर उनके शरीर पर नए वस्त्र और कंबल मिलते हैं - उनकी साधारण ज़रूरतें राधारानी ने पूरी कर दी हैं।

और जो लोग तपस्वी नहीं हैं, उनके लिए दूसरे छत्र हैं, जहाँ भिखारी, अनाथ और अन्य लोग भी एक रोटी और थोड़ी सी दाल प्राप्त कर सकते हैं। अगर तपस्वियों और भिक्षुओं को वितरित करने के बाद कंबल और कपड़े बच जाते हैं, तो उन्हें भी सर्दियों के मौसम में वितरित कर दिया जाता है। इस प्रकार अनाथ, बेसहारा और भिखारी भी किसी तरह यहाँ अपना गुजारा कर लेते हैं।

मैं भी बच गया। बेशक, मुझे एक दिन से ज़्यादा सब्ज़ी और दाल के साथ मुगलई परोटा खाने का सौभाग्य नहीं मिला; फिर भी मैं बच गया। जैसा कि मैंने कहा, ये चीज़ें तपस्वियों, संतों और वैष्णव संतों के लिए थीं। चूँकि मैं इनमें से कोई नहीं हूँ, तो मुझे उनके लिए बनी चीज़ें क्यों खानी चाहिए? और मुझे ऐसे भोजन की कोई लालसा भी नहीं थी। लेकिन कई छत्र ऐसे होते हैं जहाँ नए मेहमान को सबसे पहले खाना खिलाया जाता है, चाहे वह तपस्वी हो, गृहस्थ हो या भिखारी। इस तरह कुछ दिन बीते, और मैंने नए मेहमान के स्वागत और स्नेह का आनंद लिया। बाद में, जब दिन बीतने के साथ मेरा स्वागत धीरे-धीरे कम होता गया, जब मैं वृंदावन का पुराना निवासी बन गया, तब मेरे भरण-पोषण के लिए केवल 'खुदरा छत्र' ही बचे।

मैं इन्हें 'खुदरा छत्र' इसलिए कहता हूँ क्योंकि वहाँ पेट भरने के लिए पूरा भोजन नहीं मिलता; परोसे जाने वाले हिस्से बहुत कम होते हैं: रोटी का एक टुकड़ा और थोड़ी सी पकी हुई दाल। इन जगहों पर सभी वर्ग के लोग—साधु, वैष्णव, भिखारी और गृहस्थ—सभी को भोजन मिलता है।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

समान व्यवहार और समान भोजन।

69

मैं इन खुदरा छत्रों में से पाँच-छह में जाता था, और पाँच-छह रोटी के टुकड़े और पकी हुई दाल लेकर अपना गुज़ारा करता था। तो असल में, सच्ची मधुकरी का असली मतलब मेरे हिस्से में आया... क्योंकि मधुकरी प्रथा में, अत्यधिक ग्रहण करना - यानी मुट्ठी भर चावल या रोटी से ज़्यादा - वर्जित है; व्यक्ति को लोभ और अपनी तृष्णाओं को पूरा करने की प्रवृत्ति पर विजय प्राप्त करनी होती है। एक तपस्वी एक घर में भी भरपेट भोजन प्राप्त कर सकता है, लेकिन वैष्णव शास्त्र उसे मधुकरी नहीं कहते।

बेशक, कुछ लोग मेरे इस तरह जीने को, सच्ची मधुकरी पर निर्भर होकर जीने को, बिल्कुल भी नहीं मानेंगे! शायद बहुत से लोग इस बात पर यकीन न करें कि मैं सचमुच ऐसे ही रहता था: कि मैं सिर्फ़ वही खाता था जो मुझे उन छत्रों से मिलता था, और वृंदावन की ठंड में बिना किसी बिस्तर के एक गुफा के नम फर्श पर सोता था। उन्हें शायद शक हो कि कोई सचमुच ऐसे भी रह सकता है।

लेकिन मैं आपको दोहराता हूँ कि सच में मैं इसी तरह जीता था, और मैं बहुत खुश और संतुष्ट था। दरअसल, सूरज उगता और डूबता था, और दिन अनगिनत बीतते जाते थे। हर दिन

मैं उन्हीं गलियों में घूमता, नियमित रूप से वही रोटी और दाल खाता और तपस्वियों की गुफा में रात बिताता। लेकिन यह दिनचर्या मुझे ज़रा भी नीरस नहीं लगती थी; मेरे मन में कभी, एक बार भी, यह ख्याल नहीं आया कि क्या मेरा पूरा जीवन इसी तरह गुज़र सकता है या नहीं। बल्कि, मुझे जो खुशी मिलती थी, उससे मुझे यह एहसास होता था कि मैं सैकड़ों युगों तक इसी तरह चलता रहूँगा। मेरे हृदय का अंतरतम एक अज्ञात आनंद से लबालब भरा हुआ था। मेरे मन में लगातार ये शब्द उठते रहते थे:

"ओह मधुर! तुम कितने मधुर हो, तुम मधुरता के राजा हो! और वह वृंदावन भी मधुर है जहाँ तुम सदैव निवास करते हो!"

छत्रों पर मधुकरी वितरण आमतौर पर सुबह ग्यारह या बारह बजे तक समाप्त हो जाता था। उसके बाद, मुझे जो भी खाना मिलता, मैं उसे यमुना किनारे ले जाता, जहाँ बैठकर मैं हर निवाले का स्वाद बड़े चाव से लेता। अपने आखिरी पैसों से मैंने एक ढक्कन वाला एल्युमीनियम का लोटा खरीदा था। मैं अपना खाना इसी लोटे में रखता और आगे बढ़ जाता।

70

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

यमुना के किनारे दो खास गलियों से होकर गुज़रता था, जिनका नाम था 'दान-गोली' और 'मंगोली'। नदी तक जाने का मेरा यही रोज़ाना का रास्ता था। आखिरी छत्र इसी दिशा में स्थित था, इसलिए छत्रों के दर्शन करने के बाद यमुना तक जाने के लिए यही रास्ता सुविधाजनक था।

लेकिन ये सिर्फ़ सुविधा से कहीं बढ़कर था; मैं इन गलियों के नामों की वजह से इनकी ओर बहुत आकर्षित था। मेरे लिए इनमें कितनी मिठास थी! कुछ लोग इसे सरासर बकवास कह सकते हैं... लेकिन क्या करें? मेरी आँखें और कान ऐसे ही हैं: नाम या रूप की थोड़ी सी भी मिठास से अभिभूत हो जाते हैं! मुझे मथुरा जेल में घटी एक घटना आज भी याद है:

हमारी बैरक में बंबई शहर का एक युवा कैदी था। उसका संतुलन थोड़ा बिगड़ा हुआ था। उसके दोनों टखनों और कलाइयों पर मोटी लोहे की ज़ंजीरें बंधी थीं। फिर भी वह अपने बेड़ियों से बंधे हाथों को ऊपर उठाकर भगवान बुद्ध की एक प्रसिद्ध महिला भक्त श्रीमती की तरह गाने और नाचने लगता था:

"ओ-ओ-ओ-ओ बोलूंगी!

ओह बोलुंगी! (ओह, मैं कहूँगा... ओह, मैं कहूँगा...)"

मुझे नहीं पता वो क्या कहते थे; वो एक बहुत ही आम हिंदी गाना था, और उसकी धुन भी बहुत साधारण थी... फिर भी उनकी आवाज़ आज भी मेरे कानों में गूंजती है, मैं उसे पूरी तरह भूल नहीं पाता। मेरे कान खास आवाज़ों पर इसी तरह प्रतिक्रिया करते हैं।

ब्रजवासियों की उन दो गलियों के नाम सुनते ही, मुझे अपनी अंतरात्मा की आँखों में उनकी खूबसूरती नज़र आने लगी; भुबन मोइरा के कीर्तन के बोल मेरी स्मृति में

लौट आए। मुझे भुबन मोइरा की "दान का कार्य" वाली पंक्तियां याद आ गईं, और कैसे वे सभा के बीच में अपनी पूरी आवाज़ में गाते थे:

"सुनो, सुनो, मैं क्या कह रहा हूँ, नगर-स्त्रियों! मेरे इस धर्मार्थ नौका पर यह कानून है कि यदि विवाहित स्त्रियाँ यहाँ आती हैं, तो उन्हें पार करने के लिए कीमत चुकानी होगी...."

यह सुनकर मेरे मन में प्राचीन वृंदावन की यादें ताज़ा हो गईं: इसी गली में कहीं एक घाट हुआ करता था। और इसी गली से राधा और उनकी सहेलियाँ रोज़ाना दूध, दही, छाछ और घी से भरे बर्तन एक के ऊपर एक रखकर मथुरा जाने के लिए नाव पर सवार होती थीं। एक दिन कृष्ण ने मल्लाह का वेश धारण किया और उन्हें पुकारा,

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

71

"हर दिन तुम राजा को उसका हक देने में धोखा देते हो, लेकिन आज मैं किसी को माफ नहीं करूंगा:

तुम मित्रों को ले जाने के लिए मैं प्रत्येक से एक चाँदी का सिक्का लूँगा; किन्तु राधा को ले जाने के लिए मैं उसके प्रत्येक कान से सोने की बालियाँ लूँगा।

इस कथा को गाते हुए भुवन मोइरा ने उपस्थित लोगों से पूछा, "क्या आप जानते हैं मित्रो, राधा को उसके साथियों से अधिक कीमत क्यों चुकानी पड़ रही है? ऐसा इसलिए है क्योंकि जब कोई प्रेम की वस्तु होती है, तो दावे अधिक होते हैं, मांगें बढ़ जाती हैं। हां, जब किसी से इतना अधिक प्रेम किया जाता है, तो मांगें भी अधिक होती हैं। यहां, कृष्ण केवल राधा को चाहते हैं। उसे पाने के लिए ही उन्होंने इस नौका के टोलमैन का रूप धारण किया है और उससे दूसरों की तुलना में बहुत अधिक मांग करते हैं...."

जब मैंने पहली बार भुबन मोइरा को अपने गाँव में यह गाते सुना

72

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

उनकी बात मान नहीं पाई। हम अक्सर सोचते हैं कि जब कोई प्रेम करता है, तो वह अपने प्रियतम को केवल देने की परवाह करता है, उससे लेने की नहीं; तो कृष्ण राधा से इतना अधिक क्यों माँग रहे थे? लेकिन उस दिन कथावाचक जिस मोहक वातावरण में थे, उसमें किसी ने यह प्रश्न पूछने की ज़हमत नहीं उठाई। और वह गाते रहे:

"तब, श्री कृष्ण के ढोंग और चालाकी को ध्यान में रखते हुए, राधा की एक सखी कृष्ण को उत्तर देती है:

हे चतुरों में सबसे चतुर! तुम जो माँगोगे, हम तुम्हें सब देंगे। पर तुम सिर्फ़ सोना-चाँदी ही क्यों माँग रहे हो? कुछ और भी अनमोल तुम्हारा इंतज़ार कर रहा है। सब इंतज़ाम हो जाएँगे, बस तुम्हें उसे स्वीकार करना है! उसके शब्दों में तुम्हें हीरे-मोती मिलेंगे, उसकी हँसी में पन्ने-नीलम, उसकी आँखों में सबसे अनमोल रत्न।
उसके टखनों में
आसमान के तारे
झूल रहे हैं।
यह सब तुम्हारा
है।

अब आओ, हे चतुर, हमें जल्दी से पार ले चलो। दिन चढ़ता जाता है और दही जल्दी ही खराब हो जाएगा।"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

73

इस घटना से पहले, राधा और कृष्ण गुप्त रूप से मिलते रहे थे। लेकिन इस घटना ने एक बदलाव ला दिया - अब सब कुछ खुलकर सामने आ गया था, और उनका प्रेम परवान चढ़ रहा था। कहा जाता है कि यह घटना डांगोली लेन में ही घटी थी।

लेकिन नए-नए प्रेम की पहली चमक फीकी पड़ने के बाद, दूसरे तत्व उसमें प्रवेश करने लगे। राधा और कृष्ण के प्रेम की परंपरा में और भी चरण हैं। प्रेम के इस पूर्ण रूप से प्रस्फुटित चरण के बाद मंगोली आती है। यह ईर्ष्या, छोटी-छोटी बातों पर चोट और दिखावटी क्रोध का समय है, हालाँकि प्रेम की गहराई में कोई बदलाव नहीं आया था।

बड़े शहरों में पाई जाने वाली दूसरी आम गलियों की तरह, मंगोली लेन भी संकरी और बिलकुल साधारण थी। बाएँ-दाएँ, दोनों तरफ़ एक के बाद एक घरों की ऊँची दीवारें इसकी पक्की सतह को छू रही थीं। रास्ते में एक जगह एक छोटा सा बगीचा था जिसमें कृष्णचूड़ा का पेड़ था, यानी गुल-मोहर का पेड़। जब यह पेड़ अपने अनगिनत लाल-लाल फूलों के साथ पूरी तरह खिल जाता है, तो ऐसा लगता है मानो पूरा बगीचा जल रहा हो। शायद इसी पेड़ के नीचे बसाक-कुंज, जैसा कि इसे जाना जाता है, हुआ था - लेकिन अब कौन कह सकता है?

खैर, हमारे गायक कवि, भुबन मोइरा, उपस्थित लोगों को बसाक-कुंज का अर्थ विस्तार से समझाते हैं। कुंज, वृक्षों का एक सावधानीपूर्वक देखभाल किया हुआ उपवन होता है। कृष्ण के इतिहास में, बसाक-कुंज उस प्रसिद्ध उपवन को संदर्भित करता है जहाँ श्रीकृष्ण ने राधा से मिलन के लिए चुना था। राधा उनसे मिलने वहाँ जाती थीं। अपने आगमन पर, वह इस उपवन को प्रेमपूर्वक फूलों की मालाओं और अन्य सुंदर

वस्तुओं से सजाती थीं, और फिर अपने प्रभु को भेंट करने के लिए लाए गए छोटे-छोटे उपहारों के साथ प्रतीक्षा करने बैठ जाती थीं। और इस प्रकार वह अपने प्रियतम के आगमन तक प्रत्येक क्षण की गिनती करते हुए प्रतीक्षा करती थीं।

उफ़! कितनी उम्मीद थी! पर वह व्यर्थ ही इंतज़ार करती रही। घंटे दर घंटे बीतते गए, और भोर के पहले पहर में रात ढलने लगी। उसके हाथों की पुष्पमाला ढीली पड़ गई। आख़िरकार उसने अपनी पुष्पमाला उतार फेंकी और वीणा लेकर बैठ गई ताकि खुद को सांत्वना दे सके।

तभी, आखिरकार श्रीकृष्ण प्रकट हुए। अब तक वह मन ही मन सोच रही थी, "भोर हो गई है, पर श्याम अभी तक नहीं आया!" लेकिन उन्हें देखकर उसे दुःख हुआ। उन्हें इतनी देर क्यों हुई? और जब उसे पता चला कि उन्होंने अपना सारा समय बिता दिया है, तो उसका दुःख क्रोध में बदल गया।

74

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

पूरी रात अपनी एक अन्य भक्त चंद्रावली के साथ कुंज में बितायी!

आह, अचानक सब कुछ कैसे बदल गया! वह अपने गुस्से को रोक नहीं पाई - उसकी ईर्ष्या की आग भड़क उठी:

"अब मैं तुम्हारे काले चेहरे को नहीं देखूंगा!

आपने यहाँ आने की ज़हमत क्यों उठाई?

"चले जाओ! उसके पास वापस जाओ जिसे तुम सबसे ज़्यादा प्यार करते हो!"

और यहाँ, हमारे कवि भुवन मोइरा, उनकी प्रेम गाथा गाते हुए, राधा की भावनाओं से इतने जुड़ गए हैं कि ऐसा लगता है मानो वे ही पूरी रात भगवान कृष्ण की प्रतीक्षा कर रहे थे। लेकिन यह राधा वह नहीं है जिसने चंद्रावली के घर में रात बिताने के बाद श्रीकृष्ण से मुँह मोड़ लिया था... नहीं, यह बिल्कुल अलग राधा है। श्रीकृष्ण द्वारा इतने छल के बाद भी, उन्हें देखते ही वह कहती है:

"यह अच्छा है, हे मेरे प्रिय मित्र, तुम सुबह-सुबह आ गए; दिन अच्छा बीतेगा, क्योंकि मैं भोर में तुम्हारा चेहरा देख रहा हूँ!"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

75

"हाँ," कवि आगे कहता है, "दिन अच्छा बीतेगा, जिसकी शुरुआत आपसे हुई है, मेरे प्रभु; आपके आगमन की तैयारी में मालाओं से मैंने पूरी रात उत्सुकता से आपकी प्रतीक्षा की है। हाँ, मैंने फूट-फूट कर रोया और आपको पुकारा: 'हे कृष्ण, हे प्रियतम, हे मेरे हृदय के स्वामी!' लेकिन जब आप फिर भी नहीं आए, तो मैंने उन सभी को, जो मुरझाए हुए थे, एक साथ इकट्ठा किया और नदी में प्रवाहित कर दिया!

"परन्तु इन सब बातों की परवाह न करें, कम से कम आप मेरे पास तो आए। बल्कि, यह तो अच्छा ही हुआ कि आज सुबह आपने मुझे याद किया। अहा, मैं धन्य हूँ, मैं तृप्त हूँ! सच कहूँ तो, जो कुछ भी मैंने सहा, अब मैं उसे दुःख नहीं मानता। यदि मुझे विश्वास है कि आप मेरी सभी अपेक्षाओं के अंत में अवश्य आएंगे, तो मैं दिन-प्रतिदिन जागता रहूँगा और देखता रहूँगा - मैं जीवन भर हर रात पिछली रात की तैयारियाँ दोहराता रहूँगा।

"ओह मेरे प्रिय! इस आशा में कि तुम आओगे, मैं सदा जागता रहूँगा, और सदा रोता रहूँगा, तुम्हारा नाम पुकारता रहूँगा, हे कृष्ण, हे सुंदर जीवन-साथी! मैं सदा जागता रहूँगा और सदा रोता रहूँगा...."

कवि की भक्ति और राधा की प्रार्थना के साथ उनकी एकात्मता को अनुभव करके, उपस्थित जनसमूह में किसी की भी आँखें नम नहीं थीं। गायक के साथ-साथ, वहाँ उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रभु के आगमन की ऐसी उत्कंठा अनुभव कर रहा था। मानो वे भी कवि के साथ-साथ गुनगुना रहे हों:

हे प्रिये! तेरे आने की आशा में, मैं सदा जागता रहूँगा;

और कभी रोओगे....

तो ये थीं वो दो गलियाँ: डंगोली, जो इतने सारे सुखद प्रसंगों की मूक साक्षी थी, और मंगोली, जो आज भी हमें प्रभु के लिए रोज़ाना कितने दुःख, कितने जागने और रोने की याद दिलाती है। क्या इसे आसानी से भुलाया जा सकता है? या, क्या इसे भुला दिया

जाना चाहिए? इसलिए प्रेम की इस शाश्वत लीला की याद दिलाने के लिए, मैंने इन्हें अपनी दिनचर्या का हिस्सा बनाने का फ़ैसला किया।

सदियों से यमुना नदी ने अपना रास्ता बदल लिया है। अब यह इन गलियों से लगभग एक मील दूर बहती है। लेकिन एक समय ऐसा था जब यह

76

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

पास ही बहती थी। और इसका प्रमाण आज भी वहाँ देखा जा सकता है। दो गलियों के किनारे बने बड़े घरों के पीछे चौड़ी सीढ़ियाँ हैं जो

[illegible]

[illegible]

77

[illegible]

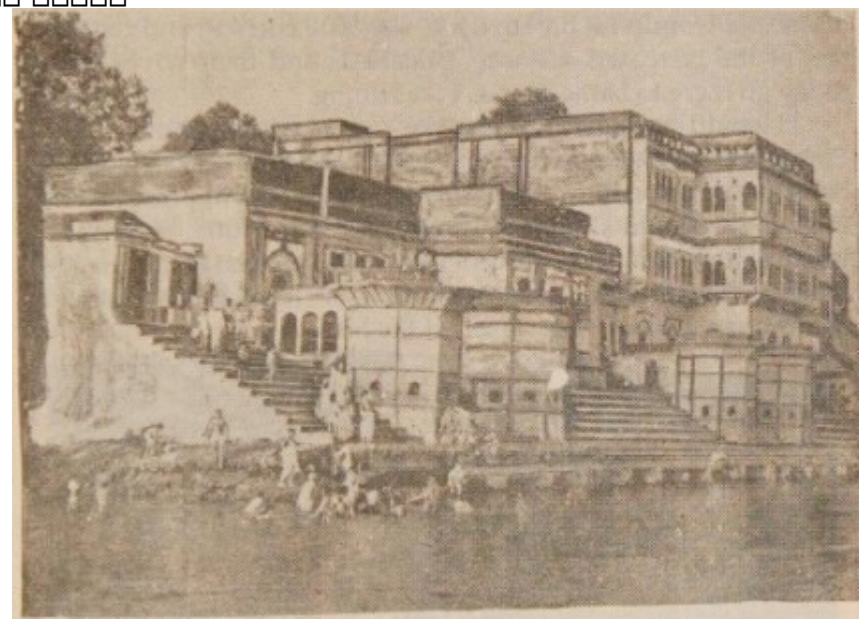

[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [

दूर नीले क्षितिज को निहारना, या यमुना नदी में कछुओं और जंगली बत्तखों को रोटी खिलाना, जो कभी-कभी मेरा ध्यान आकर्षित कर लेते थे।

कई बार ऐसा भी होता था कि मैं स्वयं को एक परिचित बाउल गीत गाते हुए पाता था:

हे यमुना! क्या तुम उसी यमुना नदी की धारा हो?

किसके चौड़े तट पर श्रीकृष्ण सुन्दरी के साथ नृत्य करने आये थे?

तो फिर वह आकर्षक चंद्रबली कहां है, जो खेल वह खेला करती थी?

वह मित्र ललिता, अपनी मधुर हंसी के साथ, कहां है?

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

और वह कौन है जो प्रिय राधा को साथ लेकर बांसुरी बजाता था?

79

इस तरह मेरी दोपहरें बीततीं। जब चरवाहे शाम को चरागाहों से घर लौटने लगते, तो मैं भी नदी किनारे से भागवत पाठ के लिए गोपीनाथ मंदिर लौट आता।

कलकत्ता में मैंने यही पाठ कीर्तन के साथ सुना था - भगवान के नाम का गुणगान करने वाला एक संगीतमय संगत। लेकिन यहाँ यह कहीं अधिक उत्तम प्रकार का था। जैसे ही वैष्णव वाचक ऊँचे मंच पर बैठने के लिए आते, श्रोताओं में से महिलाएँ आगे आकर उनके चरण धोतीं, पहले उन्हें अपने बालों से और फिर अपनी साड़ियों के छोर से पोंछतीं। फिर उन्हें माला पहनातीं।

यह भागवत के पाठकों के लिए किया जाने वाला पारंपरिक स्वागत है।

फिर पाठक अपनी बारी में भजन गाकर श्रोताओं का स्वागत करते, और भक्तगण उत्साहपूर्वक समवेत स्वर में उत्तर देते:

"हरि बोल, हरि बोल! जय गौर-नित्यानंद!" और पढ़ते समय वे बीच-बीच में एक ही तरह का जवाब दोहराते रहते।

ये पाठक अपने श्रोताओं के मन को कैसे प्रभावित करना है, यह बखूबी जानते हैं। पाठ की शुरुआत में ही, वे भागवत से एक संस्कृत श्लोक का पाठ करते हैं:

"तदशमसारंग हृदयांग वाटेदांग, यादगृह्मणैरहरिणामद्धेयैह!"

इसका मतलब यह है:

"जो हृदय हरि (ईश्वर) का बार-बार नाम सुनने पर भी नहीं पिघलता, वह पत्थर के समान है, या शायद लोहे के समान है - यह आप एक तथ्य के रूप में जानते हैं।"

यह सुनकर श्रोताओं के लिए अपने आँसू रोकना मुश्किल हो जाता है। इन सभाओं की भावनाएँ उमड़ पड़ती हैं और वे चिल्ला उठते हैं:

"हे राधे! हे गोविंद! हम पर दया करो!"

जब सत्र समाप्त हो जाता है, तो पाठक और श्रोता दोनों आगे बढ़ जाते हैं

80

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

किसी और जगह एक और सत्र हो सकता है। वहाँ गोपीगीत या गोपियों का गीत सुनाया जा सकता है। यह ग्रन्थ भी असाधारण सौंदर्य से भरपूर है - जिसने इसे कभी नहीं सुना, वह इसकी मधुरता की कल्पना भी नहीं कर सकता।

जब मैं वहां पुरुष और महिला वैष्णवों के बीच बैठकर सुन रहा था, तो मुझे वास्तव में राधा-कृष्ण की लीला का दृश्य दिखाई दे रहा था, जो वृंदावन में उनके सांसारिक अस्तित्व में घटित हो रही थी, मानो मेरी आंखों के सामने हो!

इन सत्रों के अंत में मैं एक और मंदिर, गोविंदजी मंदिर, जाता था। मैंने सुना था कि गोविंदजी की संध्या आरती या ज्योति-पूजा देखने लायक होती है। मैं मंदिर के गर्भगृह में खड़ा होकर उस आराध्य की पूजा देखता था। जिन शामों को पाठ नहीं होता था, मैं पूरी दोपहर मंदिर के बरामदे में बैठकर बिताता था। फिर, संध्या-पूजा समाप्त होने पर, मैं शहर की गलियों में तब तक घूमता रहता जब तक कि गुफा में सोने का समय न हो जाए।

मेरे सामने सुनसान सड़कें थीं, मेरे ऊपर अनंत आकाश में असंख्य तारों के मौन मुखमंडल मेरी निगरानी कर रहे थे; और किसी निकटवर्ती मंदिर या वैष्णव सभा से संगीत की लहर बहकर आ रही थी:

"हे कृष्ण, हे माधव! मेरी आपसे बार-बार विनती है... कृपया मुझे मत छोड़िए!"

तब मुझे लगा जैसे पूरा शांत वृंदावन किसी रहस्यमयी उपस्थिति की ओर आकृष्ट हो रहा हो। पेड़, उपवन, हवा, पूरा आकाश एक गहन मधुरता से भर गया!

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

81

नोट और सन्दर्भ

1. श्रीकांतो, बामुनेर मेये, शेषर परिचय और पंडित मशाई, ये सभी शरतचंद्र द्वारा रचित हैं; चोखेर बाली रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा रचित है; रायकमल ताराशंकर बनर्जी द्वारा रचित है। वर्णित सभी पात्र या तो पुस्तक के नायक हैं या नायिका - प्रेम में असफल या समाज के अन्याय या निर्दयी रिश्तेदारों द्वारा बहिष्कृत। लेखक उन सभी को या तो काशी या वृंदावन भेजते हैं, और उन्हें केवल यात्रा के टिकट प्रदान करते हैं।

2. ये नाम श्रीकृष्ण के प्राचीन काल से चले आ रहे हैं और इनका एक विशेष अर्थ है।
डंगोली का अर्थ है 'दान की गली'; यह हमें याद दिलाता है कि बहुत पहले यहाँ कोई दान-कार्य किया जाता था। मंगोली का अर्थ है 'प्रेम-वेदना और क्रोध में फुसलाना और दुलारना'।

3. समूह गायन, प्रायः राधा और कृष्ण की स्तुति में।

4. हम श्रीकृष्ण को जगत के परमपिता परमेश्वर के रूप में जानते हैं। जब भी कोई भक्त उन्हें सच्चे मन से पुकारता है, तो भगवान उसके पास अवश्य आते हैं। इसी प्रकार, हमारे भगवान श्रीकृष्ण, राधा को भूलकर, चंद्रावली के कुंज में चले गए।

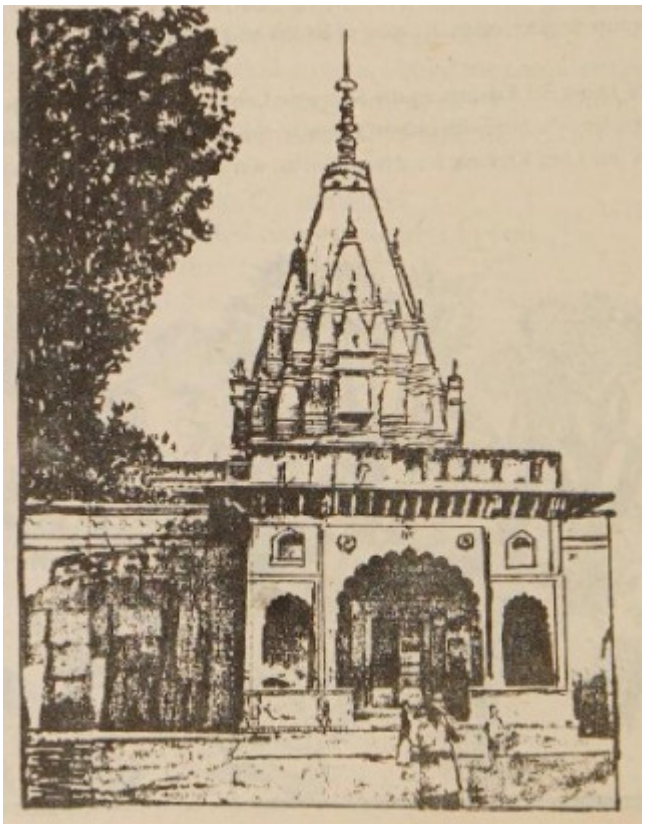

अध्याय छह

मेरे एक मामा ने हाल
ही में मुझसे पूछा,
"भांजे, तुम काफी समय
तक वृंदावन में रहे।
क्या तुमने कभी वहां
कोई सुनहरा ताड़ का
पेड़ देखा?"

मैंने उसकी तरफ
अविश्वासपूर्ण
दृष्टि से देखा:

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार
83
"वृंदावन में एक सुनहरा ताड़ का पेड़?"
"हाँ, क्या तुमने लाला बाबू के मंदिर में एक सुनहरा ताड़ का पेड़ नहीं देखा?" "नहीं, मैंने नहीं किया।"
"हे भगवान! बाकी सभी लोग जब वहाँ जाते हैं तो इसे देखते हैं। आपने क्यों नहीं देखा?"
"शायद ऐसा इसलिए है क्योंकि मैं दूसरों से अलग हूं - इसीलिए मैंने वह नहीं देखा जो सब लोग देखते हैं।"
"बहाने, बहाने! मुझे तो ऐसा लग रहा है जैसे तुमने वहाँ अपना पूरा समय सिर्फ़ अपने पेट के बारे में सोचते हुए बिताया...कहाँ और किस छत्र में चावल मिलेगा,

कहाँ रोटी मिलेगी, अगला कौन सा छत्र आज़माना है वगैरह-वगैरह। लगता है तुमने वहाँ देखने और करने लायक ज़रूरी चीज़ें ही छोड़ दीं!"

मैंने कहा, "नहीं अंकल। आप ग़लत हैं। हाँ, वहाँ मैंने अपने पेट का ध्यान ज़रूर रखा था। लेकिन मैंने अपना सारा समय उसी की चिंता में नहीं बिताया। अगर मैं वहाँ सिर्फ़ खाने के लिए गया होता, तो बाक़ी पर्यटकों की तरह मुझे भी सुनहरा ताड़ का पेड़ ज़रूर दिखाई देता। क्या आपको लगता है कि मैं लाला बाबू के मंदिर में कभी नहीं गया?"

उसने पूछा, "ओह, तुम वहाँ गये थे?"

"बिल्कुल... कई बार मैंने पूरे पूजा समारोह में भाग लिया और वहाँ प्रसाद ग्रहण किया - लेकिन मैंने कभी सुनहरा ताड़ का पेड़ नहीं देखा। क्या आप सोने से जड़े आदमकद ताड़ के पेड़ की बात कर रहे हैं? कतई नहीं!"

आख़िरकार मेरे मामा ने मेरी बात पर सहमति जताई: "यह बिल्कुल वैसा ही है जैसा आपने कहा था। जब तक कोई किसी को सुनहरे ताड़ के पेड़ की ओर इशारा नहीं करता, वह उसे पहचान नहीं पाएगा। वहाँ एक ऊँचा गुंबद है, जिसके दोनों ओर दो शाखाएँ फैली हुई हैं; लोग कहते हैं कि गुंबद पर सोने की परत चढ़ी है... और पुजारी उस गुंबद को ही सुनहरे ताड़ के पेड़ के रूप में बताते हैं...।"

"हे भगवान! कृपया इसे फिर से कहो! मैं कभी भी पर्यटक गाइड के साथ वहां के मंदिरों में नहीं गया, तो मुझे सुनहरे ताड़ के पेड़ को कौन दिखाता?"

मैं अक्सर पर्यटकों के समूहों के पास से कालिया स्नान स्थल पर गुज़रता था, जहाँ कृष्ण ने विषैले कालिया नाग का वध किया था। पहले वहाँ नदी के पानी तक जाने के लिए कई सीढ़ियाँ हुआ करती थीं, लेकिन अब तलहटी में पानी नहीं है। वह सूखा पड़ा है। आजकल भारी बारिश के बाद वहाँ थोड़ा सा पानी ही जमा होता है। फिर भी लोग आते हैं।

84

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

इस स्थान पर आने वाले लोग, वहाँ घटी घटनाओं की स्मृति के लिए आते थे। वे स्नान स्थल के ऊपर सीमेंट की सीढ़ियों पर बैठते थे, पंडे या मार्गदर्शक उन्हें श्रीकृष्ण की पूजा करवाते थे, और फिर वे पर्यटकों के समूह को श्रीकृष्ण को भोग लगाने के लिए प्रोत्साहित करते थे। वे नाटकीय ढंग से विस्तार से उस घटना की कहानी सुनाते हैं।

वहाँ क्या हुआ: वह स्थान जहाँ श्रीकृष्ण ने कालिया नाग से युद्ध किया था और जहाँ विजयोत्सव मनाया गया था जब उनके सभी मित्र उनकी स्तुति में भजन गाने के लिए एकत्रित हुए थे। पर्यटक इस पूरे प्रसंग से मंत्रमुग्ध होकर पंडों के हर शब्द को निगल जाते हैं, और बाद में यमुना तट पर सिक्के फेंकते हैं। फिर पंडे और आस-पास के भिखारी उन्हें इकट्ठा करके अपने वस्त्रों में लपेट लेते हैं...

लेकिन चूँकि किसी ने मुझे बताया ही नहीं, इसलिए मैं उस समय कालिया स्नान-स्थल को पहचान नहीं पाया। इसके अलावा, मेरे पास हर ऐतिहासिक विवरण देखने का समय नहीं था, क्योंकि मैंने अपनी एक दिनचर्या बना रखी थी। मैं उस दिनचर्या से एक कदम भी बाहर नहीं जा सकता था। लेकिन यह मेरे लिए बहुत खुशी की बात थी, और चूँकि मैं स्वेच्छा से उसका पालन करता था, इसलिए यह कभी बोझ नहीं बना।

इस वजह से मुझे वहाँ समय बीतने का पता ही नहीं चला। ऐतिहासिक वृंदावन को देखने में मुझे ज़्यादा दिलचस्पी नहीं थी। दरअसल, मैं कभी शहर की सीमा से आगे नहीं गया...

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

85

गोकुल, नंदग्राम, बरसाना, गिरि गोवर्धन, नंदीश्वर, अक्रूरतीर्थ और पंचकोशी वृंदावन जैसे किसी भी पड़ोसी गाँव में जाएँ; मैंने इनमें से कुछ भी नहीं देखा। मैंने यमुना में स्नान किया है, फिर भी मुझे कभी नहीं पता चला कि कौन सा स्नान-स्थल केशी घाट है और कौन सा चीर घाट। मैंने गोविंद मंदिर में घंटों बिताए, फिर भी मैंने कभी वहाँ के मुख्य पुजारी का नाम या संस्थापक का नाम या ऐसी कोई अन्य जानकारी जानने की जहमत नहीं उठाई। न ही मुझे तब पता था कि दो गोविंद मंदिर हैं।

सच कहूँ तो, इन चीज़ों को जानने की चाहत मेरे अंदर कभी पैदा ही नहीं हुई। जब कोई घूमने जाता है, तो उसकी आँखों को आराम नहीं मिलता, उसे हमेशा यही चिंता रहती है

कि कहीं कुछ देखने लायक छूट न जाए! लेकिन मैं घूमने नहीं आया था, इसलिए इस तरह की चिंता मुझ पर हावी नहीं हुई। मैं तो वृंदावन में स्थायी रूप से रहने आया था... तो एक-दो दिन में सब कुछ देखने की जल्दी कहाँ थी?

हालाँकि, एक बात मुझे बहुत परेशान कर रही थी, और मैं सचमुच बेचैन हो गया। यमुना के किनारे बैठे-बैठे, कभी-कभी मुझे आसमान में काले बादल छा जाते, यमुना का नीला पानी मटमैले धूसर रंग में बदल जाता, मानो आने वाले बुरे दिनों की भविष्यवाणी कर रहे हों। और इसी के साथ, मेरे लिए खाने-पीने की समस्याएँ भी बढ़ने लगीं, जिससे वृंदावन में मेरे प्रवास की खुशियाँ फीकी पड़ गईं। दरअसल, कई बार तो मुझे खाना भी नहीं मिल पाता था।

पहले तो मैंने सोचा था कि बंगाल के कुछ ही लेखक और मैं, छत्रों में मिलने वाले मुफ़्त भोजन और वृंदावन में मिलने वाले मुफ़्त आश्रय के बारे में जानते होंगे। लेकिन धीरे-धीरे मुझे एहसास हुआ कि यह खबर दूर-दूर तक फैल चुकी है!

मैं 1954 की बात कर रहा हूँ, जब विभाजन के कारण शरणार्थियों का भारत में आना अभी भी ज़ोरों पर था। भारत सरकार द्वारा स्थिति से निपटने के लिए अथक प्रयासों के बावजूद, लाखों बेघर लोगों के लिए पर्याप्त आवास उपलब्ध कराना असंभव था। जब भी संभव होता, पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान, दोनों से शरणार्थी स्थापित शरणार्थी शिविरों को छोड़कर किसी भी उपलब्ध आश्रय स्थल की ओर भाग जाते थे। और वृंदावन और मथुरा की ओर भी, शरणार्थियों का तांता लगा रहता था, और वे कोई भी संभव स्थान चुन लेते थे। विकल्प का कोई सवाल ही नहीं था। किसी भी खाली बरामदे में, किसी धर्मशाला के कोने में, किसी अप्रयुक्त मंदिर में, रेलवे स्टेशनों के टिन शेड में,

86

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

सड़कों के किनारे खाली ज़मीन पर, यहाँ तक कि पेड़ों के नीचे भी, वे डेरा डाल लेते थे। लेकिन सर्दियों की हाड़ कंपा देने वाली ठंड में, ये ठिकाने बहुत नाकाफ़ी थे।

लेकिन खाने के लिए, सभी लोग उन लोकतांत्रिक छत्रों पर जाते थे। पुरुष बहुत जल्दी उठ जाते थे, और बिना नहाए-धोए, मुँह धोए भी, आँखें मलते हुए, द्वार पर खड़े छत्रों की ओर बढ़ते थे; और महिलाएँ, एक हाथ में बच्चे को लिए और दूसरे का हाथ थामे, उनके पीछे-पीछे चलती थीं।

लेकिन इन छत्रों की भी अपनी सीमाएँ थीं - भोजन की कोई अनंत आपूर्ति नहीं थी। कुछ छत्र दस लोगों को भोजन देते थे, कुछ बीस को, कुछ तीस को; लेकिन अगर ज़्यादा मेहमान आ जाते, तो दरवाज़े के सबसे पास खड़े लोगों को तय संख्या में भोजन परोसा जाता, और फिर दरवाज़े बंद कर दिए जाते।

अब शरणार्थियों के इस नए आगमन के कारण, भोजन आवश्यकता से बहुत कम हो गया; और शरणार्थियों ने छत्र द्वार खुलने से कई घंटे पहले ही, भोर होने से पहले ही कतारें लगानी शुरू कर दीं।

जैसा कि मैंने पहले ही बताया है, कुछ छत्रों के लिए नए लोगों को प्राथमिकता देना पारंपरिक था, चाहे वे संन्यासी हों, गृहस्थ हों या भिक्षुक। लेकिन शरणार्थियों ने इस विशेषाधिकार को बनाए रखने का एक तरीका खोज निकाला: उन्होंने पाया कि अगर वे दस दिनों में केवल एक बार छत्र पर जाएँ, तो उनके चेहरे याद नहीं रहेंगे, और उन्हें फिर से एक नए व्यक्ति के रूप में माना जाएगा। क्या छत्र प्रबंधक याद कर सकता है कि उसने दस दिन पहले किसकी सेवा की थी और किसकी नहीं? वृंदावन में कई छत्र हैं; इसलिए आज यहाँ जाना और कल वहाँ जाना पर्याप्त है। इस तरह शरणार्थियों ने जल्द ही वृंदावन में उपलब्ध सभी मुफ्त भोजन पर नियंत्रण कर लिया।

लेकिन उन्होंने पाया कि इस पद्धति की भी अपनी सीमाएँ थीं, क्योंकि त्यागियों को शक्ति का दर्जा दिया गया था - मेरा मतलब है, तपस्वियों, एकान्तवासियों और वैष्णव साधुओं को। जब कोई पवित्र वस्त्र धारण करता है, तो वह व्यावहारिक रूप से निंदा से मुक्त हो जाता है। यह आंशिक रूप से सम्मान के कारण है, और अधिकांशतः योग शक्ति के भय के कारण... वे जो चाहें कर सकते हैं: इलाके के लोग उनके खिलाफ एक शब्द भी नहीं बोलेंगे। तो, नए लोग कब तक छत्र-अर्पण का बड़ा हिस्सा प्राप्त कर सकते थे, तपस्वियों और एकान्तवासियों को बाहर निकाल सकते थे?

कई दिनों तक यह देखने के बाद कि चीजें किस प्रकार चल रही हैं, एक सुबह एक तपस्वी आगे आया, शरणार्थियों के लिए प्रवेश द्वार बंद कर दिया, और उन्हें आदेश दिया,

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

87

"आप लोग रुकिए! कृपया साधु महात्माओं और महापुरुषों को पहले जाने दीजिए!"

किसी भी नए मेहमान की हिम्मत नहीं हुई कि वह जवाब में एक शब्द भी बोल सके। यहाँ तक कि छत्र का मैनेजर भी, जो उस समय मेहमानों को एक-एक करके बुला रहा था, चुप रहा। बस हल्का सा मुस्कुराया और परिसर में वापस चला गया।

अ-संन्यासियों - अर्थात्, वे सभी जो बचे हुए थे और जो संन्यासी, भिक्षु या साधु नहीं थे, यहाँ तक कि वैष्णव भी नहीं थे - को इस हस्तक्षेप पर बहुत बुरा लगा। क्योंकि अब वह संन्यासी, जिसने यह बात कही थी, द्वारपाल की तरह द्वार पर पहरा दे रहा था, और केवल अपने ही जैसे गेरुआ वस्त्रधारी भिक्षुओं को ही द्वार से अंदर जाने दे रहा था; उनके बाद, यदि जगह होती, तो वह वैष्णवों को भी अंदर जाने देता। लेकिन भिखारियों, अनाथों और अन्य लोगों के लिए कोई आशा नहीं बची थी।

परिणामस्वरूप, बाहर रह गए कुछ गैर-संन्यासी अधीर हो गए, और इस नई व्यवस्था के विरुद्ध खुलकर विद्रोह करने लगे। पहरे पर खड़े साधु की उपेक्षा करते हुए, वे छत्र के प्रबंधक को दोष देने लगे, उसे मूर्ख कहने लगे और माँग करने लगे:

"अच्छा, यह छत्र किसका है? क्या यह पूज्य तपस्वी का है, या आपका, जो आपने उसे द्वार पर बैठने दिया?"

लेकिन पूज्य तपस्वी द्वारपाल ने उनकी आपत्तियों पर ध्यान नहीं दिया। बल्कि वह और भी निरंकुश होता गया, और चयन पर पूरा नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया।

वैष्णवों के बाद, और आम लोगों को अंदर आने से पहले, वह खुद अंदर घुस जाता और दरवाज़ा बंद कर लेता। फिर बचे हुए मेहमान उदास चेहरे लिए एक-एक करके चले जाते।

बेशक, सभी लोग नहीं गए। कई बार तो कुछ लोग नाराज़ होकर बलपूर्वक प्रवेश करने की कोशिश करते थे, द्वारपाल से हाथापाई और कर्मचारियों से कर्मचारियों की लड़ाई करते थे। साधु पर हमला होते देख, दूसरे साधु दौड़कर वहाँ पहुँचे, और छत्र के प्रबंधक ने भी ज़ोर-ज़ोर से विरोध करना शुरू कर दिया। अंततः द्वारपाल साधु को कोई नुकसान नहीं हुआ - केवल लड़ने वालों को ही कुछ दिनों के लिए छत्र में आने से रोक दिया गया।

लेकिन वे कब तक इस तरह कष्ट सहते? उनके पास तपस्वियों से हाथापाई के अलावा और कोई चारा नहीं था... और अगर वे ऐसा करते भी, तो उन्हें कुछ हासिल नहीं होता। दूसरी ओर, उनकी भूख तो मानो मान ही नहीं रही थी। उनकी भूख की तीव्रता तपस्वियों से कम नहीं थी। दरअसल, तपस्वियों के पास कई तरह के थे।

88

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

लाभ और सुविधा... वे निजी घरों के साथ-साथ खुदरा छत्रों से भी मधुकरी प्राप्त कर सकते थे, और वे चौकोर भोजन छत्रों में भोजन कर सकते थे, जहां तक उनका संबंध था, नए मेहमानों के बारे में कोई नियम और विनियम नहीं थे।

बेशक, वे हर दिन एक ही जगह खाना पसंद नहीं करेंगे... क्योंकि कौन हर दिन एक जैसा खाना पसंद करता है? कुछ छत्र ऐसे होते हैं जो हर दिन उबले हुए आलू और गाजर का मिश्रण और बिना नमक के चावल और दाल की खिचड़ी परोसते हैं; एक और छत्र रोज़ वही चावल और सब्ज़ी परोसता है; और जो छत्र दाल और रोटी देते हैं, वे बारह महीने और तीस दिन बिना चूके बस यही देते हैं। इस प्रथा में ज़रा भी बदलाव नहीं किया जा सकता, चाहे बाहरी दुनिया उलट-पुलट ही क्यों न हो जाए। जो लोग खाना खाते हैं, वे कभी इसकी शिकायत करने के लिए आवाज़ नहीं उठाते; आख़िरकार, यह एक उपहार है, और जैसा कि कहावत है: "भिखारियों को ज़्यादा चुनना नहीं चाहिए"! इसी कारण, स्वाद में कुछ बदलाव लाने के उद्देश्य से, तपस्वी स्वेच्छा से रोज़ाना एक ही छत्र पर नहीं जाते।

खैर, जब नए लोगों को मिलने वाले सभी लाभ और सुविधाएं समाप्त हो गईं, तो खुदरा छत्र, जो केवल एक रोटी का टुकड़ा और थोड़ी दाल देते थे, ही एकमात्र उम्मीद बचे थे।

लेकिन अब ये खुदरा छत्र भी एक साथ, एक ही समय पर खुलने लगे। ये एक-दूसरे से बहुत दूर थे। एक आदमी के लिए दौड़कर सभी कतारों में शामिल होना संभव नहीं था। अगर कोई किसी एक छत्र में जाता, तो बाकी सभी से भोजन मिलने की संभावना समाप्त हो जाती। इसलिए उन्हें वृंदावन में रोटी जुटाने का कोई और तरीका ढूँढ़ना पड़ा।

कुछ ही दिनों में पता चला कि उनकी संख्या अपने आप ही काफ़ी कम हो गई है। जो लोग पहले भोर से ही छत्रों के बरामदों में, आस-पास के घरों के बरामदों में या सड़क किनारे पेड़ों की छाया में छत्रों के खुलने का इंतज़ार करते थे, अब उनमें से

कोई भी नज़र नहीं आता था। कौन जाने, शायद वृंदावन में भोजन की असुविधा के कारण उन्हें दूसरे पवित्र तीर्थस्थलों पर जाना पड़ा हो।

ऐसी घटनाएं घटित होती थीं, लोग कुछ दिनों के लिए वृंदावन से मथुरा जाते थे, और फिर हरिद्वार और ऋषिकेश जाते थे।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

89

उन्होंने वहां कुछ दिन बिताए... क्योंकि पश्चिम भारत में हर जगह ऐसे छत्र हैं; वहां भी भोजन और आवास की सुविधाओं की कोई कमी नहीं थी।

एक दिन एक आदमी हम सबके लिए एक नई खबर लेकर आया। उसने कहा, "आज सुबह-सुबह मैंने लोगों का एक बड़ा समूह मथुरा जाते देखा। चलते-चलते मैंने उन्हें हरिद्वार और ऋषिकेश का ज़िक्र करते सुना..."

उनसे ऐसी अच्छी खबर सुनकर दूसरे ने कहा,

"बस, बहुत हो गया! अब हम उन्हें यहाँ नहीं देखेंगे! ज़रूर वे हरिद्वार और ऋषिकेश जा रहे होंगे! उन्हें जाने दो, वहाँ प्रसिद्ध काली-कमली के छत्र देखने दो!"

एक अन्य ने कहा, "अब हमें राहत मिली है! कम से कम वृंदावन के इन छत्रों को अब कुछ दिनों की राहत मिलेगी।"

लेकिन इसी बीच एक और घटना घटने लगी। तपस्वियों, संन्यासियों और वैष्णवों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही थी। पहले तो किसी ने ध्यान नहीं दिया। छत्रों पर मौजूद सभी लोग यह देखकर राहत महसूस कर रहे थे कि शरणार्थी अब नहीं आ रहे थे। जब धीरे-धीरे यह बात ध्यान में आई, तो तपस्वियों और वैष्णवों के लिए भी जगह नहीं बची... उनमें से कई को गैर-तपस्वी की तरह लौटना पड़ा। फिर से यह टिप्पणियाँ सुनाई देने लगीं:

"कितनी विचित्र बात है! ये सारे तपस्वी और वैष्णव कहाँ से आ रहे हैं?"

दरअसल, दिन-ब-दिन छत्रों को नए चेहरों, नए गेरुआ वस्त्रों और पगड़ियों से घेरा जा रहा था। अब, बड़े-बड़े तपस्वी भी कुछ नहीं कर सकते थे; सभी, चाहे वे पुराने हों या नए, एक ही वर्ग के थे और उन्हें समान विशेषाधिकार और प्रथम वरीयता के अधिकार प्राप्त थे!

बेशक, पुराने और नए संन्यासियों के व्यवहार और दृष्टिकोण में काफ़ी अंतर था। पहले, छत्र द्वार खुलने तक कतार में बैठे लोगों के बीच एक शांत और स्थिर भाव रहता था। लेकिन इन नए चेहरों के आने के बाद वह शांति भंग हो गई। शुरुआत में तो हल्की-फुल्की बुदबुदाहट हुई; लेकिन आगे चलकर यह बढ़ती ही गई और बहस और झगड़ों का रूप ले लिया।

और अब झगड़ा तपस्वी और असंयासी के बीच नहीं, बल्कि तपस्वी और तपस्वी के बीच था। लेकिन आपको यह नहीं सोचना चाहिए कि

90

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

चूँकि यह तपस्वियों के बीच का झगड़ा है, तो इसका मतलब है कि यह दर्शनशास्त्र की किसी जटिल समस्या या आस्तिकता और नास्तिकता के बीच किसी मतभेद के बारे में होगा। मुझे यह जानकर निराशा हुई कि ऐसा कुछ भी नहीं था। ये त्यागी अत्यंत सामान्य और साधारण प्रकार के विवादों में उलझ गए; जैसे हम साधारण लोग राई का पहाड़ बनाते हैं, झगड़ते हैं, लड़ते हैं और अंततः मुकदमा दायर करने अदालत पहुँच जाते हैं—वे भी ठीक वैसा ही करते हैं। उदाहरण के लिए:

एक साधु कतार में घुस गया, और अपने बगल में एक वैष्णव पर आंशिक रूप से बैठ गया। और बस इतना ही काफी था। आइए, एक पल के लिए उनकी बात सुनें। वैष्णव चिल्लाया:

"उफ़! क्या इस साधु का पेट इतना खाली है कि इसे अपनी आँखों से दिखाई नहीं दे रहा कि यह कहाँ बैठा है? इतनी जगह है, फिर भी इसे मेरे ऊपर बैठना है?"

जिस पर यह बात कही जाती है, वह समझ जाता है कि यह उसके तप या संन्यास पर सीधा प्रहार है। लेकिन तप या संन्यास बहुत ही कमज़ोर चीज़ है... क्या वह इस तरह का प्रहार सहन कर सकता है? इसलिए वह तुरंत जवाब देता है:

"और क्या तुम्हारी भूख की चुभन किसी और से कम है? लगता है तुम इतने भूखे हो कि अपनी बढ़ती हुई भूख मिटाने के लिए रात भर के लिए अलग जगह बना रखी है। क्या तुम कम से कम लोगों के निकलने के लिए जगह नहीं छोड़ सकते थे? तुम किस तरह के वैष्णव हो?"

अब साधु के पास बचने का कोई रास्ता नहीं बचा। ये तो आग में घी डालने जैसा था! पहला मरद एकदम भड़क उठा और चिल्लाया:

"क्या? क्या तुम मेरी जाति और धर्म को बीच में लाने की हिम्मत कर रहे हो? इतना दुस्साहस? क्या तुम जानते हो कि राधारानी का वृंदावन केवल वैष्णवों का स्थान है? यहाँ कोई भी अपने पाप नहीं छिपा सकता। सब देखो: सिर्फ़ नारंगी रंग खरीदकर और अपने वस्त्रों का रंग बदलकर वह रातोंरात साधु बन गया है! वह सोचता है कि उसकी चाल के बारे में किसी को पता नहीं है!"

अब बताओ, ऐसा अपमान पाकर कौन गुस्से से उबल न पड़ेगा? ऐसे अपमान से तो कोई मरा हुआ आदमी भी कब्र से उछल पड़ेगा! वह तो बस एक इंसान था, उससे और क्या उम्मीद की जा सकती थी? जब उसके नए रंगे हुए वस्त्रों के बारे में इतनी बेबाकी से सार्वजनिक बयान दिया गया, तो उसने उसी तरह गुस्से से जवाब दिया; उसकी ज़बान से कोई भी अपमानजनक शब्द नहीं निकला। उसकी तीखी आलोचना

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

91

"और तुम, अच्छे साथी! क्या तुम्हें लगता है कि मैं इसके बारे में नहीं जानता हूँ?

वृंदावन के असली वैष्णव कौन हैं? मैं हर चीज़ पर नज़र रखता हूँ: आप

शुरू हुआ, और गालियों की एक धारा बह निकली:

"तुम तो कुछ दिन पहले ही आए हो। तुम गाँव से किसके साथ भागे थे? क्या मैं उसका नाम सबको बताऊँ?" यह सब शोर सुनकर बाकी संन्यासियों ने कान बंद कर लिए और बोले, "राम! राम! तुम दोनों यहाँ क्या कर रहे हो? यहाँ सार्वजनिक जगह पर ऐसी बातें कैसे कर सकते हो?"

इस घटना के बाद, वहाँ संन्यासियों की अचानक बढ़ती आबादी का कारण किसी को समझ नहीं आया। लेकिन शरणार्थियों को क्या दोष दिया जा सकता है? आखिर बेघर लोग और क्या कर सकते थे? वे यहाँ साधु बनने नहीं आए थे, बल्कि उनकी ज़रूरतें उन्हें इस ओर खींच लाई थीं। चूँकि उन्हें पता था कि चंद सिक्कों में वे अपने वस्त्र रंग सकते हैं और फिर भरपेट भोजन पा सकते हैं, तो भला भूखे पेट कौन ऐसा नहीं करेगा? और स्थानीय लोगों के साथ घुल-मिलकर, उन्होंने पाया कि उन्हें दूसरों ने स्वीकार कर लिया है।

वास्तव में, जब तक कोई ऐसा नहीं बन जाता, न केवल भोजन प्राप्त करना, बल्कि वृंदावन में रहना भी मुश्किल होगा। क्योंकि उस क्षेत्र में चोर और बदमाश वैसे भी आम हैं। शरणार्थियों के आने के बाद, उन्हें काफी लाभ हुआ; चाहे वह रुपये-पैसे हों, बर्तन-जायदाद हों, बेटे-बेटियाँ हों,... जो कुछ भी चुराया गया, सबने शरणार्थियों पर ही दोष मढ़ दिया। उन्होंने कहा,

"इन लोगों ने हमारी ज़मीन बर्बाद कर दी है। इनके आने से पहले इतनी चोरी और बदमाशी नहीं होती थी!"

इसलिए शहरवासियों को उन पर शक हो गया और उन्होंने उन्हें उनके कमरों और घरों से भगा दिया। पुलिस उनकी गतिविधियों पर कड़ी नज़र रखती थी और किसी भी चोरी या गलत काम के लिए उन्हें गिरफ्तार कर लेती थी।

यह सब देखकर मेरे दो-तीन मधुकरी साथी रातोंरात तपस्वी और वैष्णव बन गये!

उन साथियों की बात करते हुए, मुझे गोविंदजी के मंदिर में एक देर दोपहर की घटना याद आती है, जब भागवत पाठ के लिए कोई सभा नहीं थी, और मैं सबसे ऊपर बैठा था।

92

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

पश्चिमी द्वार की सीढ़ी पर सूर्यास्त का आनंद लेते हुए। अपनी ऊँची जगह से मैं नीचे देख सकता था... उन ढेरों सीढ़ियों से जो दूर नीचे सड़क तक जाती थीं। और वहाँ से, सीधे आगे, जहाँ तक

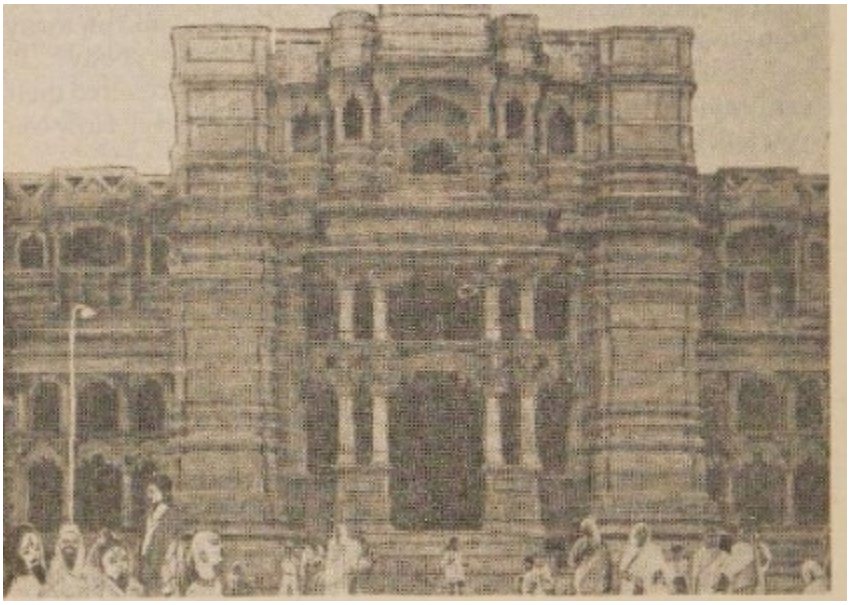

क्षितिज पर वृंदावन का पूरा पश्चिमी भाग मेरी दृष्टि के लिए खुला था।

एक तरफ ऊँची दीवार से घिरा लाला बाबू का मंदिर था; दूसरी तरफ शाजी का मंदिर, अष्टसखी का मंदिर और गोपीनाथजी का मंदिर था। इनके आगे अनगिनत अन्य मंदिरों के शिखर थे जो जहाँ तक नज़र जाती थी, फैले हुए थे। और फिर शहर के उस पार, जहाँ ज़मीन आसमान से मिलती थी, एक शानदार सूरज डूब रहा था। उस डूबते सूरज की प्रखरता के साथ, वृंदावन के पेड़ और हरियाली, उसके घर, मंदिर और ऊपर का आसमान, सभी ने अत्यंत सुंदर रंग धारण कर लिए थे।

लेकिन किसी ने भी इस सारी सुंदरता की सराहना करने का समय नहीं निकाला। मेरे साथ सीढ़ियों पर बैठे साधु और वैष्णव वहाँ उस उद्देश्य से नहीं आए थे। दिन के उस समय, आप देखिए, वे सीढ़ियों पर उन भक्तों से मधुकरी ग्रहण करने के लिए बैठे थे जो मंदिर के भीतर देवता की पूजा करके लौट रहे थे।

मैंने कभी भी इन सब में भाग नहीं लिया; मैं छत्र के अलावा किसी अन्य स्थान पर मधुकरी एकत्र नहीं करता था, क्योंकि मुझे कुछ विकर्षण महसूस होता था और मैं

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

93

मैं खुद को इसके लिए मजबूर नहीं कर सका। इसलिए मेरे पास पर्याप्त समय था, और ऐसा लग रहा था कि मैं ही उस अद्भुत सूर्यास्त का एकमात्र दर्शक था।

पूर्वाह्न

मैं संभावित दानदाताओं की तलाश में नहीं था, इसलिए मैं संन्यासियों पर ज्यादा ध्यान नहीं दे रहा था; यदि देता, तो शायद मुझे बहुत पहले ही पता चल जाता कि उनमें से एक मेरा पूर्व साथी था।

बेशक, इसमें शक है कि मैं उन्हें पहली नज़र में पहचान पाता; क्योंकि एक दिन पहले ही मैंने उन्हें देहाती वेश-भूषा में देखा था: एक चुस्त छोटी धोती और कंधों पर एक सफ़ेद हथकरघा शॉल; और आज वे बिल्कुल अलग व्यक्तित्व के थे, भगवा वस्त्र पहने

और सिर पर लाल पगड़ी बाँधे, साधुओं के बीच बैठे हुए। मैं इस बदलाव को कैसे पहचान पाता?

लेकिन तभी एक घटना घटी। एक धनी मारवाड़ी अपनी कार नीचे खड़ी करके अपने दल-बल के साथ मंदिर में आया। जैसे ही संन्यासियों के शांत सागर को इस बात का अहसास हुआ,

94

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

जैसे-जैसे पार्टी नज़दीक आ रही थी, वह सन्नाटा एक अशांत लहरों वाले समुद्र में बदल गया! इस बात को लेकर संघर्ष शुरू हो गया कि इस धनी दानदाता से मधुकरी माँगने के लिए कतार में सबसे पहले कौन खड़ा होगा।

मैंने अपना सिर उस कोलाहल की ओर घुमाया। शांतिपूर्ण चिंतन का समय समाप्त हो चुका था। जैसे ही मैंने मुड़कर देखा, मेरी नज़र नए भगवा वस्त्र पहने एक साधु पर पड़ी। वह कुछ असमंजस में था, इधर-उधर देख रहा था, और समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे। लेकिन जैसे ही उसकी नज़र मुझसे मिली, उसकी हरकतें पूरी तरह बदल गईं... मानो वह मधुकरी के बारे में सब कुछ भूल गया हो। मानो इस डर से कि मैं उसकी पहचान सबको बता दूँगी, वह मेरे पास आकर बैठ गया। आखिरकार उसे पहचानते हुए, मैंने आश्चर्य से उससे पूछा, "क्या हो रहा है? तुम कब से इन वस्त्रों में हो?"

हालाँकि मेरा यह पूर्व साथी पंजाबी था, फिर भी वह टूटी-फूटी बंगाली बोल सकता था। बिना किसी भूमिका के उसने शुरू किया,

"मैंने कल ही साधु बाबा से दीक्षा ली है।"

"लेकिन अचानक यह पहल क्यों?" मैंने पूछा।

"अरे नहीं, यह अचानक नहीं हुआ। देखो, आजकल वृंदावन में दीक्षा बहुत ज़रूरी है। तुम भी दीक्षा क्यों नहीं ले लेते? अगर तुम चाहो तो मेरे गुरु तुम्हारी मदद करेंगे...।"

मैंने उसकी बात काटते हुए कहा, "नहीं भाई, मेरे पास तो पहले से ही गुरुदेव हैं।"

"तो फिर आप साधारण पोशाक में क्यों हैं? आपका गेरुआ वस्त्र कहाँ है?"

"हमारी आध्यात्मिक साधना में कोई औपचारिक दीक्षा नहीं होती, तथा कोई विशेष पोशाक भी नहीं होती।"

"तो फिर यहीं संन्यास की दीक्षा क्यों नहीं ले लेते? साधना में अनेक गुरुओं की आवश्यकता होती है। क्या आपने पौराणिक और तांत्रिक ग्रंथ नहीं पढ़े हैं?"

"नहीं," मैंने जवाब दिया, "वे क्या कहते हैं?"

"कहते हैं कि जैसे मधुमक्खी एक फूल से दूसरे फूल पर जाकर शहद इकट्ठा करती है, वैसे ही ज्ञान की अभिलाषा रखने वाले शिष्य को एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाना चाहिए।" उन्होंने कहा। "एक गुरु उसे लंगोटी देगा, एक उसे मंत्र और ज्ञान देगा, और कोई दूसरा उसे तंत्र विद्या देगा..."

यह लड़का शायद मुझसे दो या तीन साल छोटा था, और बहुत दुबला-पतला था, और देखने में तेरह या चौदह साल का लड़का लग रहा था।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

'95

इतने कम उम्र के व्यक्ति से ज्ञान की ये बातें सुनकर मैंने आश्चर्य से उससे पूछा, "तुमने इतनी कम उम्र में इतना कुछ कैसे सीख लिया?"

"अरे, मैंने यह अपने गुरुजी से सीखा है। मैंने भी एक अन्य मठ में दीक्षा ली है; लेकिन यहाँ एक गुरु ने मुझे इसे पुनः लेने के लिए प्रोत्साहित किया......ताकि मेरे लिए वृंदावन में भोजन जुटाना आसान हो जाए। इसीलिए मैंने यह किया।"

"ओह, मैं समझ गया," मैंने कहा। "इसमें कितना खर्च आया? मैंने सुना है कि पूरी प्रक्रिया काफ़ी महंगी है।"

"लेकिन मैंने कुछ भी नहीं दिया। मेरे गुरुजी ने सब कुछ संभाल लिया। वह मुझे एक व्यापारी के दरवाज़े पर ले गए और उससे पूछा,

"हे व्यापारी महोदय, यह लड़का तपस्वी बनना चाहता है, लेकिन इसके पास एक पैसा भी नहीं है..."

"यह पर्याप्त था। इसका प्रबंध वहीं हो गया। व्यापारी ने कहा, 'महाराज, आप इसकी चिंता न करें; मैं खर्च वहन करूँगा।'"

"वास्तव में, यह बहुत अच्छी व्यवस्था है! आप अपनी धार्मिक क्रियाएँ कैसे करेंगे?"

उन्होंने कहा, "अभी तक गुरु ने मुझे मेरे सतीत्व व्रत और उनकी व्यक्तिगत सेवा के अलावा कोई विशेष निर्देश नहीं दिए हैं। औपचारिक निर्देश बाद में दिए जाएँगे।"

"यह तो समझ में आता है। आपके गुरु का आश्रम कहाँ है? क्या मैं उनसे मिल सकता हूँ?" मैंने पूछा।

"क्यों नहीं? लेकिन उसका कोई आश्रम नहीं है। कल छत्र पर मैं तुम्हें उसके बारे में बता दूँगा।"

अगले दिन मैं अपने दोस्त से फिर छत्र पर मिला। मुझे देखते ही उसे मेरी विनती याद आ गई और उसने पूछा,

"क्या आप मेरे गुरुजी से मिलना चाहेंगे?"

बोलते समय उसकी नज़रें उस क्षेत्र में घूम रही थीं, भीड़ के बीच अपने स्वामी को खोज रही थीं, और उसने तुरन्त उनकी ओर इशारा किया:

"वहाँ, उधर देखो - मेरे गुरुजी छत्र के द्वार पर खड़े हैं...."

उसकी निगाहों का अनुसरण करते हुए मैंने उस दिशा में देखा और पूछा,

"क्या आपका मतलब उस साधु से है जिसके माथे पर नारंगी-लाल रंग का पाउडर, सिर पर लाल पगड़ी, लंबी दाढ़ी और बाल हैं? क्या वह आपके गुरुजी हैं?"

"हाँ, हाँ! तुमने सही पहचाना। ये मेरे गुरुजी हैं।"

96

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

"तो फिर," मैंने मज़ाक में कहा, "आपके गुरुजी छत्र के द्वारपाल हैं?"

उसका चेहरा अचानक खुशी से चमक उठा।

"हाँ, बिल्कुल!" उसने जवाब दिया। "वह जहाँ भी जाता है, दरबान बन जाता है। क्या तुम्हें पता है कि सभी भिखारी उससे बहुत डरते हैं?"

"हाँ, मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि उनके पास उससे डरने का अच्छा कारण है। साधु को छोड़कर जो भी छत्र द्वार के पास आता है, उसे इतनी ज़ोर से कोहनी लगती है कि वह ज़मीन पर गिर जाता है!" मैंने जवाब दिया।

मेरी टिप्पणी सुनकर वह बहुत खुश हुए और बोले,

"हाँ, हाँ! जो कोई त्यागियों के लिए रखा भोजन खाता है, वह उसका पूरा-पूरा हकदार है!"

"हाँ भाई - और जब तक तुम दरवाजे पर खड़े हो, तब तक रुको। तुम्हारे गुरु बूढ़े और कमजोर हैं, लेकिन तुम उन्हें अच्छी तरह पीट पाओगे!"

यह सुनकर वह जोर से हंसने लगा।

हाँ, उसे हँसने दो। पर मैं अपने मज़ाक का मज़ा नहीं ले पा रहा था। मेरे लिए अच्छा होता अगर मैं उसके गुरु को कभी देखता ही न। क्योंकि अब मैं सिर्फ़ यही देख पा रहा था कि मेरे दोस्त की रुचि आध्यात्मिक विकास से ज़्यादा खाने में हो गई है।

"हाँ," मैंने मन ही मन सोचा, "तुम सचमुच बुद्धिमान हो; तुमने अपने गुरु के लिए एक द्वारपाल चुना है, जो छत्रों में प्रवेश की अनुमति देता है - इसलिए तुम्हें अच्छी तरह से भोजन मिलने का आश्वासन है।"

लेकिन शायद मैं उसके साथ कुछ ज़्यादा ही सख्ती बरत रहा था। शायद हालात के दबाव ने ही उसे यह नया रास्ता अपनाने पर मजबूर किया था।

लेकिन भोजन के बारे में इतना ही काफी है। भोजन पर इतना ज़्यादा विचार करने से चेतना कम हो जाती है... मैंने अपने मन को उस दिशा में नहीं जाने दिया, बल्कि उसे प्रभु की ओर मोड़ दिया।

वृंदावन आने से पहले, मैं मन ही मन बहुत देर तक सोचता रहा था कि क्या वृंदावन नाम की कोई जगह अब भी है, या ये सिर्फ़ कहानियाँ और कल्पनाएँ हैं? अब, जब मैं वहाँ पहुँच ही गया हूँ, तो इन सांसारिक बातों और तुच्छ इच्छाओं में इतना क्यों उलझा हुआ हूँ? बल्कि, मैं इस बात पर ध्यान केंद्रित करूँ कि मैं वहाँ किस लिए गया था -

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

97

'नित्य वृंदावन' शाश्वत वृंदावन, शाश्वत मोक्ष-धाम जहाँ सभी इच्छाएं स्वयं ही समाप्त हो जाती हैं।

हमारे कवि ने कहा है कि सनातन वृंदावन में राधा और कृष्ण सनातन हैं, और उनकी लीला भी। लेकिन उस सनातन वृंदावन का मार्ग लंबा, कठिन और बाधाओं से भरा है। आत्मा की शुद्ध खोज ज्योति से ही उस स्थान तक पहुँचा जा सकता है। यात्रा चाहे कितनी भी लंबी क्यों न हो, रास्ते में चाहे कितनी भी कठिनाइयाँ क्यों न आएँ, वह वृंदावन तो है ही। अंत में, अंतिम गंतव्य, नित्य वृंदावन, सनातन वृंदावन, एक दिन अवश्य प्राप्त होगा!

यही आशा मुझे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रही थी। मैंने उस नित्य वृंदावन के बारे में सोचा, उस आंतरिक आनंद की अवस्था के बारे में जो गोपियों ने कृष्ण के अवर्णनीय दर्शन, रूप के अवर्णनीय सौंदर्य का अनुभव करने के बाद अनुभव की थी:

"मेरी आँखें उस सौन्दर्य के सागर में डूब गयीं, मेरा मन उसकी जवानी के स्वर्ग में खो गया!"

अध्याय सात

वृंदावन में मेरा एक दूसरा मित्र भी वैष्णव बन गया।

मैं इस मित्र के उस पंजाबी से कहीं अधिक करीब था जो साधु बन गया था... वह भी मेरी तरह बंगाल से था, इसलिए हमारी पृष्ठभूमि में काफी समानता थी; यह हमारी घनिष्ठता के कारणों में से एक था।

लेकिन दोस्ती सिर्फ़ पृष्ठभूमि से कहीं बढ़कर थी। मैं वहाँ कई बंगालियों से मिला था, फिर भी बहुत कम लोगों के साथ नज़दीकी बना पाया था। निताई बाउरी एक ऐसे इंसान थे जो आसानी से दोस्त बना लेते थे। उनमें कोई दिखावा नहीं था; सहज महसूस करना; ऐसे व्यक्ति से दोस्ती करने में ज़रा भी समय नहीं लगता था।

हाँ, उन्होंने मुझे बताया कि उनका नाम निताई बाउरी था। उनके चेहरे से उनकी उम्र का अंदाज़ा लगाना मुश्किल था... उनकी उम्र 30 से 50 के बीच रही होगी। उनका चेहरा धूप की वजह से गहरा काला और झुलसा हुआ था, और उनका गोरा रंग तांबे जैसा हो गया था। उनके सिर और दाढ़ी में कुछ सफ़ेद बाल साफ़ दिखाई दे रहे थे। फिर भी, कभी-कभी वो मुझे दादा बड़े भाई कहकर बुलाते थे - और कभी-कभी अपने मूड के हिसाब से मुझसे ज़्यादा औपचारिकता से बात करते थे।

उन्होंने ही मुझे छत्रों से मधुकरी इकट्ठा करने की दीक्षा दी थी। शहर में अपने पहले दिन, मुझे छत्रों के नियमों और विनियमों के बारे में कुछ भी नहीं पता था। मैं चुपचाप एक तरफ खड़ा था, छत्र प्रमुख ने नए मेहमानों को भवन के भीतर जाने का निर्देश दिया; लेकिन मैं आगे बढ़ने में बहुत शर्मिंदा था। तभी निताई बाउरी ने

पहली बार मेरी मदद की। खुद की परवाह न करते हुए, उन्होंने मुझे प्रबंधक की ओर इशारा करते हुए कहा,

"देखिये, सर, वह आदमी नया मेहमान है!"

मुझसे उन्होंने कहा, "इधर आओ, नौजवान! तुम छत्र में भोजन करने आए हो, क्या तुम शर्म से यहीं रहोगे?"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

99

दूरी?"

मेरे आस-पास के कई लोगों के चेहरों पर नाराज़गी थी, क्योंकि वे देख रहे थे कि एक और पेट है जिसके साथ मुझे दिया गया खाना बाँटना है; इसलिए उनके प्रोत्साहन भरे शब्द और उनके दोस्ताना लहजे ने मुझे काले बादलों को चीरती हुई सूरज की किरण की तरह महसूस कराया। छत्र में खाने का इरादा छोड़कर मैं उनकी ओर बढ़ रहा था; तभी मैनेजर ने मुझे आवाज़ दी,

"जी हाँ, सर! कृपया अंदर आइए।"

उनके कहने पर, मैं अपने पहले छत्र में गया। और जिसने मुझे आगे आने के लिए प्रोत्साहित किया था, उसे उस दिन अंदर जाने की अनुमति नहीं थी, इसलिए मुझे उनके किए का धन्यवाद करने का कोई मौका नहीं मिला। लेकिन अगले ही दिन मैं उनसे एक और छत्र पर फिर मिला, और उन्होंने फिर से मेरा अभिवादन ऐसे किया जैसे मैं कोई पुराना दोस्त हूँ, और कहा,

"आओ, इधर आओ दादा! क्या आपने अभी-अभी छत्रों पर खाना शुरू किया है?"

"हाँ भाई," मैंने उत्तर दिया।

"तुम्हें देखते ही मैंने अंदाज़ा लगा लिया था," उसने कहा। "तुम वृंदावन में कब से हो?"

मैंने जवाब दिया, "मैं यहां कुछ ही दिन से हूं।"

उन्होंने पूछा, "क्या आप पूर्वी पाकिस्तान से हैं?"

मैं समझ गया कि वह उम्मीद कर रहा था कि मैं उसके अपने देश से हूँ ताकि हम एक ही पृष्ठभूमि के लोगों के बीच होने वाली विशेष आत्मीयता विकसित कर सकें। और मैं चाहता था कि मैं 'हाँ' में जवाब दे पाता; लेकिन यह सच नहीं होता, इसलिए किसी चीज़ ने मुझे हाँ में जवाब देने से रोक दिया।

मैंने जवाब दिया, "नहीं, मैं पश्चिम बंगाल से हूं।"

इन शब्दों पर निताई बौरी मानो मोमबत्ती की लौ की तरह अचानक बुझ गए। उन्होंने कहा,

"तो फिर अगर आप शरणार्थी नहीं हैं, तो आप किस कष्ट से यहां आये हैं?"

मैंने पूछा, "क्या केवल दुःख ही लोगों को यहां लाता है?"

"खैर, मुझे नहीं पता कि तुम क्यों आए हो, भाई, लेकिन हम बहुत कष्ट सहने के बाद यहाँ आए हैं। तुम यहाँ आकर देख सकते हो और फिर घर लौट सकते हो, लेकिन हमारे लिए तो निर्वासन अंतिम है," उसने गहरे दुःख के साथ उत्तर दिया।

मैंने कहा, "लेकिन कष्ट क्यों? क्या आप इतने प्रेम के देश में रहते हुए भी अपने देश को नहीं भूल सकते? क्या आपको नहीं पता कि आप कितना…"

100

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

यहाँ आने की अनुमति मिलने से पहले कौन सा पुण्य अर्जित करना चाहिए? और इसके अलावा, आपको यहाँ रहने की अनुमति दी गई है।"

"क्या मतलब है तुम्हारा?" निताई बौरी ने मुझे बीच में ही टोक दिया। "क्या मैं उस स्वर्ग को भूल जाऊँ जहाँ से मैं आया हूँ? अगर तुम ऐसा कह सकते हो, तो इसका मतलब है कि तुम वहाँ कभी गए ही नहीं। तभी तुम उस ख़ज़ाने को समझ पाओगे जो हम पीछे छोड़ आए हैं!"

बोलते समय उनकी आंखें चमक उठीं और मुझे समझ में आ गया कि उनकी मातृभूमि की दिव्य छवि उनके हृदय में उभर आई है।

"ओह, यह सचमुच कैसा देश है!" उसने आह भरी। नारियल, आम, सुपारी और कटहल के घने पेड़, यहाँ तक कि जामुन की झाड़ियाँ भी बहुतायत में! हर महीने, हर दिन कोई न कोई फल तोड़ने के लिए तैयार रहता है। प्यास लगने पर पानी की तलब लगती है, पर हम तो बस मीठा नारियल पानी पीते हैं... जितना जी चाहे। यहाँ पद्मा, मेघना, धलेश्वरी और लक्ष्या नदियाँ बहुतायत में हैं... गाँवों और खेतों से होकर बहती हैं, नालों और लंबे तालाबों से हर घर तक नहरें या तालाब जुड़े हैं, जहाँ मछुआरे बाड़ के जाल की मदद से मछलियाँ पकड़ते हैं। पद्मा नदी पर जहाँ तक नज़र जाती है, पाल फड़फड़ाती मछली पकड़ने वाली नावें क्षितिज तक उड़ती हुई प्रतीत होती हैं। बस इतना बताइए, ऐसा सौंदर्य और कहाँ देखने को मिलता है? सचमुच, वह धरती हमारी सनातन सखी है! उसने पीढ़ी-दर-पीढ़ी हमारे पूर्वजों को खिलाया है, और हमें वैसे ही पाला है जैसे एक माँ अपने बच्चों को खिलाती है। और आप, आप मुझे उसे भूल जाने के लिए कह रहे हैं?

मैं अवाक रह गया; उसे सांत्वना देने के लिए कोई शब्द नहीं सूझे। मैंने बस इतना कहा, "लेकिन क्या किया जा सकता है? शायद यह ईश्वर की सज़ा है। इंसान हस्तक्षेप करने में असमर्थ है। शायद इसमें तुम्हारे देश के लिए कोई सबक हो।"

"बस, बस! ज़बान संभालो, प्लीज़!" उसने जवाब दिया। "भगवान हमें सज़ा क्यों दे? ये तो इंसानी भूलों का नतीजा है। हमारे नेताओं ने बड़ी भूल की है। और हमें देश

छोड़ने की सलाह देकर, हमारे गाँव के बुज़ुर्गों ने और भी बड़ी भूल कर दी है। आख़िरकार, हम पर एक सदी से भी ज़्यादा समय तक मुसलमान बादशाहों का राज रहा है— क्या हमारी हत्या की गई या हमें ज़बरदस्ती धर्मांतरित किया गया? असल में वो हमारा क्या कर सकते हैं? क्या वो हमें मार डालेंगे या मुसलमान बना देंगे? ये सब बकवास है... बेकार की अटकलबाज़ी के अलावा कुछ नहीं!"

"बकवास और अटकलें?" मैंने उससे पूछा। "तुम सब सिर्फ़ अटकलों पर भागे थे? मैंने तो कुछ और ही सुना है - कि

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

101

हिंदुओं पर बिना किसी कारण के अत्याचार किए गए और इसी डर से आप लोग और आपके बच्चे भाग गए।"

"तो, आपको लगता है कि हम डर के मारे चले गए? तो अब हमारी क्या हालत है? क्या आपको लगता है कि हम यहाँ सुरक्षित महसूस करते हैं? आख़िरकार, हम यहाँ भी वैसे ही मरेंगे जैसे वहाँ मरते। तो क्या किसी दूसरे देश में मरने के बजाय अपने घर में मरना बेहतर नहीं है?"

"मान लीजिए भारत और पाकिस्तान फिर से एक हो जाएं... तो क्या आप अपने घर लौट जाएंगे?" मैंने उसे थोड़ा शांत करने के लिए पूछा।

निताई बाउरी फूट-फूट कर रोने लगे और बोले,

"हाय भाई! क्या मैं अपने घर लौट जाऊँ? पर मेरा घर कहाँ है? मैंने तो सब सस्ते दामों में बेच दिया है। और अब मैं किसके पास जाऊँ? वहाँ कौन रहता है? जब हम यहाँ आ रहे थे, तभी कुछ बदमाश मेरी जवान पत्नी को लेकर फरार हो गए, और हमारी पहुँच से पहले ही तारापासा स्टेशन पर मेरी बुज़ुर्ग माँ की सदमे से मौत हो गई। तो अब इतना सब होने के बाद वापस जाने के लिए क्या बचा है?"

बोलते हुए उसे अपने आस-पास का कुछ भी पता नहीं था। वैष्णव और साधु हमारे आस-पास जमा हो गए थे और ध्यान से सुन रहे थे, लेकिन उसे उनकी उपस्थिति का पता ही नहीं था। हम छत्र खुलने के समय से काफी पहले पहुँच गए थे, और हमारे पास अभी भी समय था; लेकिन मैंने उसे और कुछ याद करने के लिए नहीं कहा, क्योंकि कौन जाने यह बातचीत उसे कहाँ ले जाती? इसके बजाय, मैंने अचानक विषय बदल दिया और पूछा,

"आप यहाँ काफी समय से हैं, है ना? आप कहाँ रह रहे हैं?"

"कुछ साधुओं के साथ एक गुफा में," उसने विचलित स्वर में उत्तर दिया।

"मुझे यहां कोई पहाड़ी नजर नहीं आ रही है," मैंने पूछा, "गुफा कहां है?"

"यह किसी पहाड़ी पर नहीं है," उसने जवाब दिया। यह एक धर्मशाला में एक गुफा है।"

फिर उसने मुझसे पूछा, "तुम? तुम कहाँ रहते हो?"

"मैं गोविंदजी मंदिर के नट-मंदिर में रह रहा हूँ।" मैंने उससे कहा।
"आपका मतलब है कि आप वहां अन्य साधुओं के साथ रहते हैं?"
"नहीं, मैं इसके ऊपर, खुले में रहता हूँ।"
"हे भगवान! भाई, उस ठंडे पत्थर पर रात को कैसे सोते हो?"
"खैर, कम से कम मेरे पास सोने के लिए जगह तो है," मैंने जवाब दिया।
इस पर उन्होंने पूछा, "क्या आप हमारे साथ गुफा में आकर रहना चाहेंगे? इसमें केवल एक कठिनाई है - इसमें प्रवेश करना कठिन है।"
102
वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार
"अगर तुम इसमें शामिल हो सकते हो, तो मैं क्यों नहीं हो सकता?" मैंने पूछा। "मेरे साथ आओ, तुम खुद देख सकते हो।"
तो उसी दिन हम दोनों साथ में उस गुफा में गए। मैंने देखा कि वो सचमुच एक गुफा थी। नीचे एक भूमिगत जगह थी।

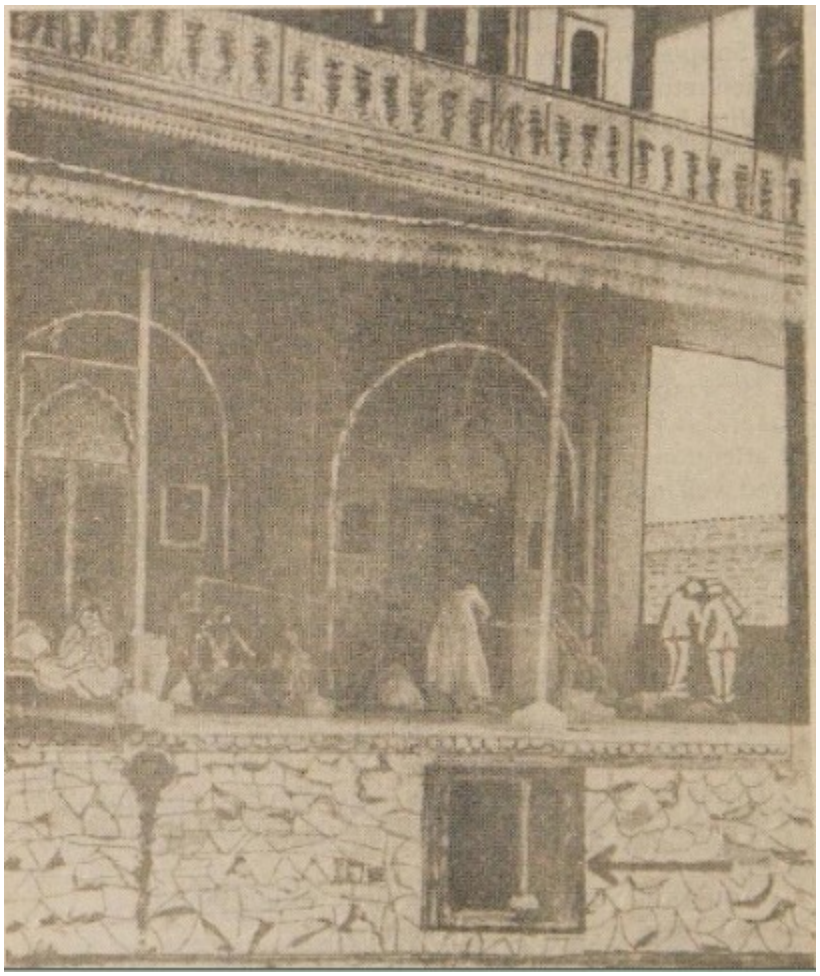

[illegible], [illegible] [illegible] [illegible]

मैं घर में चावल रखने की संकरी कोठरी में चढ़ने में माहिर थी; फिर भी, इस गुफा में ढलने में मुझे कई दिन लग गए। पहले मैंने एक पैर अंदर डाला, फिर झुककर अपने सिर और छाती को अंदर डाला; फिर मैंने अपना वज़न उस पैर पर डाला जो पहले से अंदर था, और अपने धड़ को अंदर खींचा, दूसरा पैर सबसे आखिर में अंदर आया। अंदर जाने के बाद, हमें बाहर जाने में डर लगता था, जब तक कि ऐसा करना ज़रूरी न हो। दरअसल, अंदर जाने के बाद मैं अक्सर सोचती थी कि मैं उस 'माँ की कोख' से कैसे बाहर निकल पाऊँगी!

लेकिन इसके कुछ फायदे भी थे। हालाँकि यह खुला था, कुत्ते, बिल्लियाँ और पक्षी इसमें घुसकर इसे गंदा नहीं कर सकते थे। इसके अलावा, सर्दियों में हम अच्छी तरह सुरक्षित थे: ठंडी हवा अंदर नहीं आ सकती थी, और एक-दूसरे के करीब होने की गर्माहट के कारण, ठंड के मौसम में भी हम वहाँ बहुत आरामदायक महसूस करते थे।

हालाँकि प्रवेश द्वार बहुत छोटा था, यह भूमिगत गुफा इतनी ऊँची थी कि हम सीधे खड़े हो सकते थे, और मद्रास से आए दो साधु भी एक घंटे तक शीर्षासन कर सकते थे। और यह इतनी बड़ी थी कि हम पंद्रह-बीस लोगों के सोने के लिए पर्याप्त जगह थी। दिन के उजाले में भी गुफा के अंदर घुप्प अँधेरा था; अगर अंदर कोई साँप या मेंढक होता, तो हम उसे देख नहीं पाते।

मद्रास से आए साधु प्रवेश द्वार के पास बैठते थे; वे अपने देवता की पूजा के लिए एक मोमबत्ती जलाते थे। उस रोशनी में हम घूमते-फिरते और रात के लिए खुद को व्यवस्थित करते थे। हम में से हर कोई अपने कंबल एक खास जगह पर रखता था जहाँ हम नियमित रूप से सोते थे। प्रसाद के रूप में थोड़ी सी कच्ची चीनी मिलने के बाद, हम सब सोने चले जाते थे।

लगभग 3 बजे हमारी सुबह की गतिविधियां शुरू हो जाती थीं: कुछ लोग ध्यान करते, कुछ लोग भजन-कीर्तन करते, कुछ लोग हठ योग और प्राणायाम (श्वास संबंधी व्यायाम) करते, जबकि अन्य लोग स्नान करने के लिए बाहर जाने लगते; ऐसी हमारी दिनचर्या थी।

यह सब निताई बाउरी की ही देन थी कि मुझे रहने के लिए इतनी उपयुक्त जगह मिली। हालाँकि उस पर किसी का अधिकार नहीं था, फिर भी कोई बाहरी व्यक्ति उसमें घुसने की हिम्मत नहीं कर सकता था, गुफावासियों की शक्ति ऐसी थी - या शायद गुफा का ही एक निषेधात्मक पहलू!

जैसा कि किसी भी जगह पर होता है जहाँ लोग एक साथ रहते हैं, वहाँ कुछ ऐसे लोग थे

104

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

नियमों का पालन करना अनिवार्य था; स्थायी निवासियों के अलावा किसी को भी वहाँ रहने का अधिकार नहीं था। निताई बाउरी के माध्यम से ही मुझे यह अधिकार प्राप्त हुआ। जब मैं पहली बार वहाँ पहुँचा, तो निताई बाउरी ने मुझे अपने बिस्तर से एक बोरा दिया ताकि मैं उस पर लेट सकूँ। एक और दिन उन्होंने मुझे एक गीता दी - एक माचिस की डिब्बी जितनी छोटी किताब, जो गोरखपुर गीता प्रेस से संस्कृत अक्षरों में प्रकाशित हुई थी। उसे मुझे देते हुए उन्होंने कहा,

"भाई, चूँकि मैं पढ़ या लिख नहीं सकता, इसलिए आप इसे हर दिन मुझे ज़ोर से पढ़कर सुना सकते हैं।"

उस दिन से, निताई बौरी के साथ मेरी आत्मीयता और गहरी होती गई। हर रात, गुफा में प्रवेश करने से पहले, मैं धर्मशाला की रोशनी में उन्हें कुछ अंश ज़ोर से पढ़कर सुनाता, और वे बड़े ध्यान से सुनते। जब कुछ अंश उन्हें समझ नहीं आते, तो वे पूछते, "तुमने क्या कहा? फिर से सुनाओ।" और मैं उन छंदों को दोहरा देता।

इन सत्रों के बाद हम दोनों गुफा में साथ-साथ जाते और साथ-साथ सो जाते। अगली सुबह मैं सबसे पहले उठती, अपना काम पूरा करने के बाद, मैं उसके काम खत्म होने का इंतज़ार करती।

थोड़ी देर से उठना उनकी आदत थी। वे उठते और बाहर नल के पानी से नहाते। नहाते हुए, वे अन्य तपस्वियों की तरह, ठंडे पानी की ठंड से बचने के लिए, पूरे स्वर में "ॐ नमो शिवाय, ॐ नमो शिवाय" का जाप करते। फिर वे अपने बिस्तर पर बैठते और अपने बटुए से एक छोटा सा दर्पण निकालते और उसकी मदद से अपने माथे पर भस्म (विभूति) लगाते, बालों में कंघी करते और उसकी एक लट अपने मुकुट पर बाँध लेते। मैं उनके समाप्त होने तक प्रतीक्षा करता, और फिर हम छत्रों में मधुकरी की तलाश में साथ-साथ निकल पड़ते। छत्र-पंक्ति में भी हम साथ-साथ खड़े होते। अगर साधु मुझे प्रवेश द्वार पर रोकते, तो वे मेरी ओर से विनती करते।

दिन-ब-दिन यही चलता रहा। उसका मुझसे ज़्यादा करीबी कोई दोस्त नहीं था, और मेरा भी उसके जैसा कोई नहीं था। खाना खाने के बाद हम दोनों अपने-अपने रास्ते चले जाते, लेकिन रात में गुफा के द्वार पर हम हमेशा फिर मिलते। जो पहले आता, वह दूसरे का इंतज़ार करता। यही हमारी रोज़ की दिनचर्या थी।

कौन सोच सकता था कि दोस्ती का अंत इस तरह होगा?

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

105

एक दिन निताई बौरी गुफा में वापस नहीं आया। अगली रात भी वह गायब रहा, और अगली रात भी, और फिर अगली रात भी। कई दिनों तक मैं उसे देख ही नहीं पाया। वह जहाँ भी रहता, सबको छत्र पर खाना खाने जाना पड़ता था, लेकिन मैं उससे छत्र पर भी नहीं मिला। मैंने अंदाज़ा लगाया कि वह शहर छोड़कर चला गया होगा। शायद उसे अलविदा कहने का समय ही नहीं मिला होगा।

मुझे याद आया कि उन्होंने एक बार कहा था,

"मेरा नाम निताई बौरी है, लेकिन असल में मैं निताई बौल हूँ... मैं बस एक घुमक्कड़ तपस्वी गायक हूँ। मैं किसी एक जगह पर ज़्यादा देर तक नहीं रुक सकता। कभी-कभी मैं इस जगह से बाहर चला जाता हूँ। मैं हरिद्वार, ऋषिकेश, लक्ष्मणझोला, गया, काशी और प्रयाग, या रामेश्वरम, कन्याकुमारी और द्वारका चला जाता हूँ। जहाँ भी मेरी इच्छा होती है, घूमता हूँ। कभी-कभी खाने-पीने और जीवनशैली में बदलाव के लिए, मैं वृंदावन के आस-पास के गाँवों में मधुकरी करने भी निकल पड़ता हूँ।"

मैंने उनसे पूछा, "क्या यहां के ग्रामीण भी आपको मधुकरी देते हैं?"

"क्यों नहीं?" उसने जवाब दिया। "ऐसा चढ़ावा तो वृंदावन और मथुरा के नगरवासी भी नहीं देते। वे गाँव वाले बहुत चढ़ावा देते हैं... वे बड़े उदार हैं। मुझे साल भर में यहाँ से दुगना-तिगुना मिलता है। बस मधुकरी की तरकीबें जाननी होंगी, बस। अगर तुम यूँ ही वहाँ जाकर खड़े हो जाओगे, तो काम नहीं चलेगा।"

"रणनीति? आपका मतलब है कि आपको मधुकरी के लिए भी मनोविज्ञान का उपयोग करना होगा?"

"बिल्कुल! हम अपने जीवन में कहाँ-कहाँ हथकंडे नहीं अपनाते? पूरी दुनिया इसी आधार पर चलती है। ज़रा अपने आस-पास देखिए—अगर आप गोकुल में जाकर कृष्ण का नाम लेंगे, तो मधुकरी भूल जाएँगे... आपको वहाँ खड़े होने की भी इजाज़त नहीं होगी, मधुकरी देना तो दूर की बात है। इसी तरह, अगर आप नंदग्राम में जाकर 'राधे-राधे' कहेंगे, तो ज़रा सावधान! वे आपको भगा भी सकते हैं—शहर से बाहर! तो आप देख सकते हैं कि सही माहौल में सही व्यवहार बहुत ज़रूरी है।"

आश्चर्यचकित होकर मैंने कहा, "सचमुच, इस पर विश्वास करना कठिन है! आखिर, क्या राधा और कृष्ण दो अलग-अलग प्राणी हैं? नंदग्राम में राधा के नाम को कोई सम्मान क्यों नहीं मिलता और गोकुल के लोगों को कृष्ण का नाम लेना असहनीय क्यों लगता है? यह कितनी असाधारण बात है!"

"तब आप आसानी से समझ सकते हैं कि हमें कितना ख़तरा है

106

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

चेहरा: तुम एक बार मेरे साथ चलो और इसे अपनी आँखों से देखो? मैंने यह सब प्रत्यक्ष अनुभव किया है। इसलिए मुझे इस पर इतना यकीन है। यह एक सगे भाई-बहन की तरह है जो एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हैं। राधा के अनुयायियों और कृष्ण के अनुयायियों के बीच यह झगड़ा कभी खत्म नहीं होता—यह पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है।

"क्या आपने कभी उन 'झगड़े वाले गीतों' में से कोई सुना है?" वह पूछता रहा।

"हाँ, ज़रूर," मैंने जवाब दिया, "कई बार। क्या यह उनमें से एक नहीं है?"

नर तोता कहता है- "मेरे कृष्ण ने एक पर्वत उठा लिया।"

मादा तोता जवाब देती है - "उसे ऐसा करने की शक्ति मेरी राधा से मिली। अन्यथा वह ऐसा कैसे कर पाता?"

लेकिन निताई बाउरी इससे असहमत हैं:

"नहीं, नहीं! उन पक्षियों ने ऐसा बिल्कुल नहीं कहा।"

"क्या मतलब है तुम्हारा? क्या उन्होंने बात नहीं की? यह तो गाने में ही है!" मैंने जवाब दिया।

"गीत तो रहने दो, पर मैं फिर कहता हूँ: उन पक्षियों ने यह नहीं कहा। वे तो बस पक्षी हैं और पक्षी शब्दों से नहीं गाते। वे शब्द गोकुल और नंदग्राम के ग्रामीणों के शब्द हैं। इसी तरह नंदग्राम और गोकुल के लोग आपस में झगड़ते हैं। भाषा और विचार उनके हैं। जब नंदग्राम दावा करता है कि उनके कृष्ण ब्रह्मांड के स्वामी हैं, और गोकुल कहता है कि राधा अपने भक्तों की सभी इच्छाओं को पूरा करने वाली हैं, तो वास्तव में जगत का स्वामी कौन है?

उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या आप जानते हैं कि सभी इच्छाओं को पूरा करने वाला होने का क्या मतलब होता है?"

मैं इस सवाल का विस्तार से जवाब देने के लिए तैयार था, लेकिन उन्होंने मुझे बोलने नहीं दिया। उन्होंने कहा,

... a "नहीं, मैं आपको बताता हूँ। इसका मतलब यह है कि गोकुल कहना चाहता है, 'आप कह रहे हैं कि आपके कृष्ण ब्रह्मांड के स्वामी हैं, सुंदर विचार है! बहुत-बहुत बढ़िया। लेकिन अगर आपके स्वामी में अपने भक्तों की इच्छा पूरी करने की क्षमता नहीं है, तो 'ब्रह्मांड के स्वामी' का वास्तव में क्या अर्थ है? कौन उनकी आज्ञा मानेगा, उनसे प्रेम करेगा? केवल हमारी राधा ही हैं जो वास्तव में भक्तों की इच्छा पूरी कर सकती हैं।' तो

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

107

इस बात को ध्यान में रखते हुए, आप स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि कौन श्रेष्ठ है!"

"यह सचमुच बहुत अजीब है!" मैंने कहा। "क्या इस दिव्य मिलन के तत्वों को अलग करके उन पर झगड़ा करना संभव है?"

"सिर्फ़ झगड़ा ही नहीं, भाई," निताई बाउरी ने मुझसे कहा। "कभी-कभी तो झगड़े भी हो जाते हैं - कर्मचारियों के बीच झगड़े! इस तरह का झगड़ा आज की बात नहीं, सदियों पुराना है। और ये सिर्फ़ गोकुल और नंदग्राम तक ही सीमित नहीं है। मथुरा, अयोध्या, काशी और हरिद्वार में भी आपको ऐसे ही झगड़े मिल जाएँगे... भारत में जहाँ भी जाइए, ये रिवाज़ चलन में है। कृष्ण के भक्त राम का नाम नहीं लेंगे, और राम के भक्त कृष्ण को पुकारने के बारे में सोचेंगे भी नहीं; शिव के भक्त विष्णु का नाम नहीं लेंगे, और वैष्णव शिव को कभी नहीं पुकारेंगे। वे सिर्फ़ अपने ख़ास देवता को जानते हैं - उनके दिल में किसी और देवता के लिए जगह नहीं!"

निताई बौरी की बातें सुनकर मैंने सोचा, "कौन सोच सकता है कि यह आदमी पढ़-लिख नहीं सकता?" मुझे चुपचाप सोचते देखकर निताई बौरी ने पूछा,

"तुम इतने विचारशील क्यों हो? मैंने गोकुल और नंदग्राम के बारे में जो कुछ कहा है, क्या उसके बाद तुम्हारा उन जगहों के प्रति सम्मान खत्म हो गया है? सुनो, इसे

इतनी गंभीरता से मत लो। ज़िंदगी ऐसी ही है। अगर तुम चीज़ों को ठीक से देखो, तो उनके प्रति तुम्हारा सम्मान और भी बढ़ जाएगा।"

"क्या इस तरह से उनके प्रति आपका सम्मान बढ़ गया?" मैंने उनसे पूछा।

"भैया, शायद आपको मेरी बात पर यकीन न हो, लेकिन हाँ; उनकी एकनिष्ठ भक्ति देखकर मेरे मन में उनके प्रति आदर ज़रूर बढ़ गया। क्यों न बढ़े? यह सिर्फ़ झगड़ा नहीं है। यह झगड़े से कहीं बढ़कर है - यह उनकी भक्ति, उनके इस गर्व और प्रेम को दर्शाता है कि वे राधा-कृष्ण की धरती के लोग हैं। मथुरा और वृंदावन में आपको ऐसी भावना देखने को नहीं मिलेगी। वहाँ के लोग इसी समर्पण के कारण आम आदमी से ऊपर हैं; उनमें एक बड़प्पन है। जब वे मधुकरों को भोग लगाते हैं, तो मानो वे स्वयं भगवान को भोग लगा रहे हों। अगर मैं उन गाँवों में मंडुकरी माँगता हूँ, तो मुझे वहाँ दस दिन में वह मिल जाता है जो मुझे यहाँ वृंदावन में पूरे साल में मिलता। वहीं मुझे यह कम्बल, मेरे कपड़े और मेरा कमंडल दिया गया। लेकिन उन गाँव वालों की उदारता के बिना, मेरे पास सिर्फ़ यही एक पतला कपड़ा होता जो मैं अपने साथ लाया था। तो, अब समझ में आया?"

"ठीक है, ठीक है," मैंने जवाब दिया। "मैं आपकी बात समझ रहा हूँ। लेकिन आप भी

108

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

हरिद्वार, ऋषिकेश वगैरह की यात्राओं का ज़िक्र किया। क्या आपको अपनी यात्राओं के लिए टिकट की ज़रूरत नहीं है?

जब वे उत्तेजित होते, तो निताई बाउरी अपनी मातृभाषा छोड़कर हिंदी में बात करने लगते; और जब वे लगातार हिंदी में भाषण देते, तो कोई भी एक शब्द भी नहीं बोल पाता था। टिकट के बारे में मेरे इस आखिरी सवाल के साथ ही वे रॉकेट की तरह उड़ गए; मानो मैं टिकट चेकर हूँ और वे होने वाले यात्री... मैंने उनसे यात्रा के टिकट के बारे में पूछा था!

उनका गुस्सा हिन्दी में फूट पड़ा:

"मैं किराया क्यों दूँ, साहब? क्या साधु और वैष्णव किराया देते हैं? कभी नहीं!"

मैं उनके नाटकीय उत्तर पर हंसा और बोला: "हां, सर, मुझे यह पता है, लेकिन आप उनमें से एक नहीं हैं, है ना?"

हुआ यूँ कि मैंने मासूम मज़ाक में निताई बौरी के एक बहुत ही नाज़ुक हिस्से पर वार कर दिया। उनका पारा चढ़ गया:

"तुम्हारा क्या मतलब है? मैं कोई तपस्वी या वैष्णव नहीं हूँ? मैं भी उनके जितना ही अच्छा हूँ! मैं तपस्वी हूँ, अगर तुम मुझे तपस्वी कहते हो; मैं वैष्णव हूँ, अगर तुम मुझे वैष्णव कहते हो। मुझे दिखाओ कि मैं उनसे किस प्रकार निम्न हूँ?"

सचमुच, उसकी बात सही थी! उसके लंबे बाल और दाढ़ी थी, एक हाथ में पीतल का कमंडल और दूसरे में बिस्तर; कंधे पर एक झोला टंगा था... एक साधु के सारे लक्षण उसमें थे; और वैष्णवों की तरह, वह हमेशा मोटे सूती कपड़े से बुना एक लंबा सफेद वस्त्र धारण करता था। तो फिर वह साधुओं और वैष्णवों से किस मायने में कमतर था? इन सबके अलावा, उसने हिंदी पर इतना अधिकार कर लिया था कि उसे एक ज्ञानी... एक अतिविशिष्ट व्यक्ति का सम्मान प्राप्त था। इस प्रकार, वह पूरे भारत में, जहाँ चाहे, बिना किराया दिए यात्रा कर सकता था।

अब, इस पिछली घटना को याद करते हुए, मैंने सोचा कि शायद निताई बाउरी नई मधुकरी की तलाश में शहर छोड़ कर चले गए हैं, इसीलिए वे वृंदावन में कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं।

लेकिन नहीं! कुछ दिन बाद अचानक मेरी मुलाक़ात उससे हुई, वो अभी भी शहर में था, पर कितना बदला हुआ! उसके कपड़े बदल गए थे, और उसका सब कुछ भी!

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

109

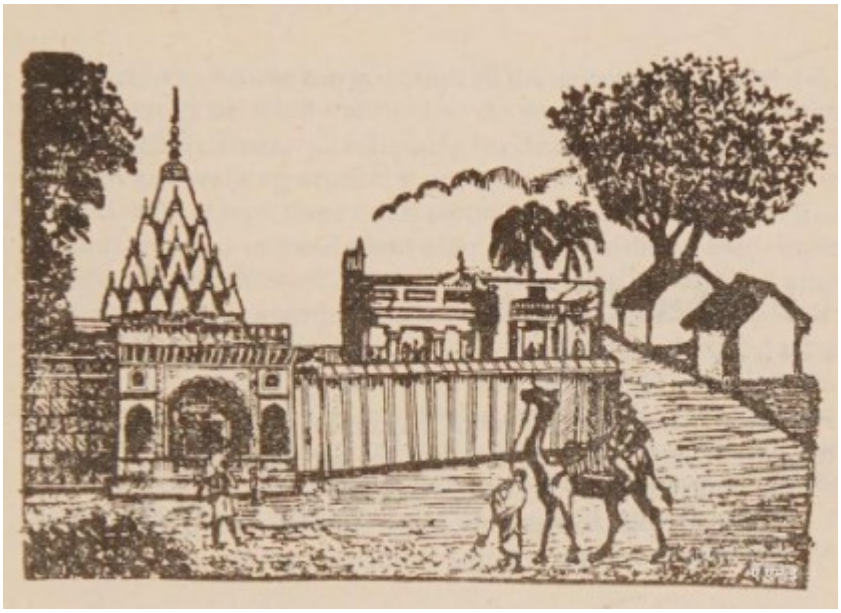

ए एम इ

नोट और सन्दर्भ

1. वह हॉल जहाँ नाटक आयोजित किये जाते हैं।

2. गोकुल - मथुरा के पास एक छोटा सा शहर, राधा का तीर्थ स्थान

3. नंदग्राम - श्री कृष्ण के पालक पिता नंद का गांव, जहां कृष्ण और उनके भाई का पालन-पोषण ग्वाले के रूप में हुआ।

4. वृंदावन में जब मधुकर या भिखारी मधुकरी के लिए निजी घरों में जाते हैं, तो वे 'राधे, राधे' पुकारते हैं, मानो गृहिणी स्वयं राधा हों।

अध्याय आठ

किसी कारणवश उस दिन गोपीनाथजी के मंदिर में भागवत पाठ नहीं हो रहा था, इसलिए मैं शाम से कुछ पहले ही वृंदावन की सड़कों पर घूमने निकल पड़ा।

वृंदावन में दोपहर के समय का एक अलग ही आकर्षण होता है। इस समय कोई भी घर पर रहना पसंद नहीं करता - यह समय होता है...

पूर्वाह्न

बाहर घूमें; पुरुष और महिलाएँ, युवा और वृद्ध, सभी सड़कों पर निकल आते हैं। वृंदावन में अलग-अलग आकार के पाँच से छह हज़ार मंदिर हैं, और यही वह समय है जब लोग मंदिरों के चक्कर लगाते हैं।
वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

111

बेशक, कोई भी एक ही दिन में सभी मंदिरों की परिक्रमा नहीं कर सकता, और ऐसा करना पूरी तरह से बेतुका होगा। क्योंकि मंदिर की परिक्रमा का मतलब सिर्फ़ अंदर-बाहर आना-जाना नहीं है, न ही इसका मतलब बस यूँ ही घूमना है। इसका मतलब है कि सबसे पहले मुख्य मंदिर की कम से कम तीन बार परिक्रमा करनी चाहिए, साथ ही मंदिर प्रांगण के बीच में स्थित तुलसी के पौधे की वेदी की भी, जिसकी अलग-अलग परिक्रमा करनी चाहिए; उसके बाद, देवता को साष्टांग प्रणाम करना चाहिए - ज़मीन पर लेटकर प्रणाम करना चाहिए, और मंदिर की पवित्र रोज़ा धूल को अपने पूरे शरीर पर मलना चाहिए; फिर पवित्र जल ¹ और तुलसी के पत्ते ग्रहण करने चाहिए, और किसी न किसी मंदिर में देवता का प्रसाद ग्रहण करना चाहिए। तो एक ही दिन में देर दोपहर में इतनी लंबी प्रक्रिया करते हुए कोई कितने मंदिरों के दर्शन कर सकता है? इसीलिए लोग कुछ मुख्य मंदिरों की परिक्रमा करके अपने दिन के काम पूरे करते हैं।

उस दिन मैं भी उनके साथ हो लिया; और भीड़ के बीच टहलते हुए, मैंने खुद को एक बड़े मंदिर में प्रवेश कर रहे लोगों की भीड़ के साथ पाया। और इस तरह मुझे पहली बार पता चला कि गोविंदजी के दो मंदिर हैं - एक पुराना और एक नया। पुराने वाले का शिखर सदियों पहले मुगल काल में तोप से ध्वस्त हो गया था; उसके बगल में एक नया गोविंद मंदिर बनाया गया था - और आजकल यह नया मंदिर मूल मंदिर से कहीं अधिक अलंकृत है।

ऊँची दीवारों से घिरे इसके विशाल परिसर में प्रवेश करते ही मुझे ऐसा लगा मानो मैं शरतचंद्र के उपन्यास श्रीकांतो में वर्णित 'मुरारिपुकुर मठ' जैसे किसी वैष्णव भिक्षुओं के मठ में पहुँच गया हूँ। कमलों से भरा ऐसा ही एक वन, और हर उम्र और हर प्रकार की वैष्णव महिलाएँ यहाँ भी अपनी विविध गतिविधियों में व्यस्त थीं! कुछ महिलाएँ चमेली की कलियों को उनकी डंडियों से अलग कर रही थीं, तो कुछ उनके बगल में भगवान के लिए मालाएँ बुन रही थीं। दूसरी ओर, कुछ महिलाएँ उन वस्त्रों को सावधानीपूर्वक हाथ से सिल रही थीं जो जल्द ही देवताओं के श्रृंगार के लिए तैयार किए जाने थे। कुछ महिलाएँ आरती में इस्तेमाल होने वाले तेल के दीपक तैयार कर रही थीं, तो कुछ भक्तों और आगंतुकों को तुलसी के पत्तों का प्रसाद बाँट रही थीं। गर्भगृह के अंदर, चार-पाँच महिला वैष्णव, राधा और कृष्ण की जुड़वां मूर्तियों को सजाने में पुजारी की मदद कर रही थीं।

112

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

मुरारीपुकुर मठ का केवल एक पहलू उस दृश्य से गायब था जो मैंने देखा: भगवान को अर्पित किए जाने वाले भोजन की तैयारी... जैसे कि दूध उबालना और खीर या गाढ़ा दूध बनाना,

पूर्वाह्न

मीठे नारियल के गोले बनाना और लूची (घी में तली हुई टिकिया) बनाने के लिए आटा गूंथना; शायद ये चीज़ें मंदिर के भीतरी कक्षों में कहीं और बनाई जाती थीं। इसके अलावा, बाकी दृश्य बिल्कुल शरतचंद्र द्वारा मुरारीपुकुर मठ के वर्णन जैसा ही था। यहाँ भी, सभी अपने-अपने निर्धारित कार्यों में व्यस्त थे। सभी इतने व्यस्त थे कि उन्हें आने-जाने वालों पर ध्यान देने का समय ही नहीं मिला - क्योंकि शाम के दीपदान समारोह की समय सीमा तेज़ी से नज़दीक आ रही थी; उनका सारा प्रयास अपने- अपने कार्यों को समय पर पूरा करने में लगा हुआ था।

वह दिन मंदिर में एक खास दिन था - पूर्णिमा की रात। जैसे-जैसे तैयारियाँ आगे बढ़ीं, चाँदनी की चमक साफ नीले आसमान से क्षितिज तक फैलने लगी। मंदिर प्रांगण में सभी दर्शनार्थी वहाँ बैठे रहे, और ऊपर आकाश की दिव्य सुंदरता को निहारने के लिए अपनी परिक्रमा करते रहे।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

113

नीचे, मंदिर के भीतर का दृश्य। और - रोमांचकारी अनुभूति, कीर्तन की स्वर लहरियाँ गूंज रही थीं, साथ में खोल (ढोल) और छोटी-छोटी घंटियों जैसी झांझों की लयबद्ध थाप भी।

निताई एनेच्छे नाम - हरे कृष्ण, हरे राम

निताई हास ब्रॉट द नेम हरे कृष्ण, हरे रामा.

समारोह समाप्त होने के बाद, जब मैं मंदिर से अपनी झोपड़ी में लौटने के लिए निकल रहा था, तो मुझे एक जानी-पहचानी आवाज़ सुनाई दी और मैं वहीं रुक गया। क्या यह निताई बाउरी की आवाज़ नहीं थी? कुछ कदम और आगे बढ़ने पर मैंने देखा कि यह तो वही थे! वे किसी वैष्णव मित्र के साथ गहन वार्तालाप और मंत्रोच्चार में मग्न थे।

मैं उसके पास गया और आश्चर्य से बोला,

"क्या, निताई-दा? आप अभी भी वृंदावन में हैं?"

तुरन्त ही उन्होंने गीत गाकर मेरा स्वागत करना आरम्भ कर दिया:

"आओ, आओ! हे प्यारे मित्र!

मुझे अपनी खुशखबरी बताओ!"

मुझे पहले से पता था कि वह कभी-कभार किसी साधु से थोड़ी अफीम या भांग ले लेते थे, और फिर भजन या स्तोत्र पाठ करने लगते थे। चूँकि मैं उनके तौर-तरीके जानता था, इसलिए उनके गर्मजोशी भरे स्वागत से मुझे कोई शर्मिंदगी महसूस नहीं हुई। मैं उनके पास बैठ गया और बोला,

"ज़िंदगी चल रही है... तुम्हारे जाने के बाद से ज़्यादा कुछ नहीं हुआ। पर तुम्हारा क्या हुआ? तुम कहाँ थे? मुझे लगा शायद तुम शहर छोड़कर चले गए हो!"

"नहीं भाई, मैंने एक दिन के लिए भी वृंदावन नहीं छोड़ा है; मैं तो हमेशा से यहीं हूं।" उसने उत्तर दिया।

"तुम यहीं रह रहे हो? लेकिन तुम गुफा में वापस क्यों नहीं आए? मैंने तुम्हें छत्रों पर भी नहीं देखा - तुम कैसे काम चला रहे हो?"

नितल बाउरी ने उनके चेहरे और ऊपरी भुजाओं पर विशिष्ट वैष्णव चिह्नों की ओर इशारा करते हुए कहा,

"देख नहीं रहे हो? मैंने मोहनतो से भेख ले ली है।"

"भेक? यह क्या है?" मैंने पूछा।

114

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

अब तक निताई बाउरी का मित्र चुप था; लेकिन मेरे पूछने पर उसने उसकी ओर से उत्तर दिया:

"आप भेक नहीं समझते? यह वैष्णव धर्म में दीक्षा के लिए प्रयुक्त शब्द है।"

"ओह, अब मैं समझ गया। इसीलिए तो तुम इस मंदिर में हो। वरना तुम पहले कभी इस जगह पर नहीं आए थे, है ना?"

मेरे प्रश्न को टालते हुए निताई बाउरी ने कहा,

"आप क्या कह रहे हैं? यह हमारे गोविंद, हमारे प्रिय कृष्ण का निवास स्थान है - क्या मैं यहां नहीं आऊं?"

"तो, आपने यहीं भेक ले लिया," मैंने टिप्पणी की,

"हाँ, बिल्कुल। और इसी वजह से मैं पिछले कुछ दिनों से नज़रों से ओझल हूँ," उसने गर्मजोशी से जवाब दिया, अपनी अस्पष्ट गुमशुदगी का कोई कारण ढूँढ़कर खुश होकर। "इस पूरे समय मैं न तो गुफा में गया, न ही छत्रों पर - मेरा सारा समय मेरे मोहनतो के कुञ्ज में बीता है। उसने मुझे मधुर-भाव (प्रगाढ़ प्रेम की भावना) में डाल दिया है, और मेरे दिन बड़े आनंद से बीत रहे हैं!"

निताई बाउरी के दिन सुखपूर्वक बीत रहे थे, यह बात उनके बाहरी रूप से स्पष्ट थी। इन कुछ दिनों में उनमें एक बड़ा परिवर्तन आया था - मानो किसी मुरझाते हुए पौधे पर नए फूल खिल गए हों। वे किसी नवविवाहिता दुल्हन की तरह दिव्यदृष्टि से ओतप्रोत थे। और उन्होंने अपने रूप-रंग पर भी बहुत ध्यान दिया था: पहले भी वे अपने सिर के मुकुट पर बालों का एक गुच्छा बनाते थे - अब उन्होंने उस गुच्छा को तुलसी की लकड़ी की माला से सजाया था; उनकी भुजाएँ और गर्दन भी तुलसी की मालाओं से सुसज्जित थीं, और कुल मिलाकर वे अत्यंत सुंदर और आकर्षक लग रहे थे।

"सचमुच!" मैंने मन ही मन सोचा, "उसका मनमोहक रूप और पोशाक इतने समय से मेरी नज़रों से ओझल क्यों है?"

"तो तुम गुफा में वापस नहीं जाओगे?" मैंने उससे पूछा। "क्या तुम अपने मोहनतो के कुंज में ही स्थायी रूप से रहोगे?"

"नहीं, मेरे दोस्त, स्थायी रूप से नहीं। कुंज में ज़्यादा जगह नहीं है - मैं वहाँ कैसे रह सकता हूँ? वरना मुझे वहाँ से जाने की ज़रा भी इच्छा नहीं है। रात में जब महिला वैष्णव इतना सुंदर कीर्तन गाती हैं, तो मेरे पैर ज़मीन पर जम जाते हैं, और मुझे लगता है जैसे मैं कभी वहाँ से जाना ही नहीं चाहता!"

मैंने पूछा, "क्या आपका मतलब यह है कि आपके कुंज में महिला वैष्णव भी गाती हैं?"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

115

"बिल्कुल," उन्होंने इशारा करते हुए कहा, "वहां उन महिलाओं को देखो - वे सभी गाती हैं।"

निताई बौरी के नए दोस्त ने बीच में ही टोकते हुए कहा, "बंद करो - उंगली उठाना बंद करो! महिलाओं पर उंगली उठाना बिल्कुल भी शिष्टता नहीं है!"

निताई बाउरी तुरंत शांत हो गए और अपनी बात का अंदाज़ बदल दिया। उन्होंने कहा, "जानते हो, ये पिछले कुछ दिन मेरे लिए बहुत भाग्यशाली रहे हैं। मुझे एक प्यारा दोस्त मिल गया है। मेरे नए भाई, बलराम-दा... वो भी मेरे ही घर से हैं! क्योंकि वो भी कीर्तन सुनने आते हैं, इसीलिए हमारी पहली मुलाक़ात हुई थी...।"

अब वह अपने नए दोस्त बलराम-दा के अलावा किसी और के बारे में बात नहीं कर सकता था। उसने उससे पूछा,

"अच्छा, बलराम-दा! क्या मैंने आपको नहीं बताया था कि अगर अनुराधा एक भी कीर्तन गा ले, तो पूरी शाम सफल हो जाएगी?"

उनके मित्र बलराम ने सहमति जताते हुए कहा, "बिल्कुल! उसका गायन सुनकर तो खाने की भी इच्छा नहीं रहती! और उसके कीर्तन के बाद तो बाकी सभी गायकों की नींद उड़ गई!"

इस जवाब ने निताई बौरी को मंत्रमुग्ध कर दिया। वह बहुत उत्साहित हो गया और अपने दोस्त से बोला,

"क्या अब तुम मुझ पर विश्वास करते हो? आह! उसने कितना सुन्दर गाया:

'मैं अभी-अभी उसे देखकर आया हूँ, हे मित्र!'

मैं अभी-अभी उनसे मिलकर आया हूँ-

उसके शरीर के प्रत्येक भाग में इतनी सुन्दरता,

मेरी आँखें कल्पना नहीं कर सकीं!"

यह सुनकर मैंने पूछा, "क्या यह पदावली कीर्तन नहीं है? क्या यह आपके मोहन्टो के यहाँ गाया जाता है?"

"बिल्कुल, हर दिन", उन्होंने ज़ोर देकर उत्तर दिया।

"हर दिन? वृंदावन में अपने पूरे प्रवास के दौरान मैंने जात्रागान (नाट्य गीत), भजन सुने हैं, कृष्ण लीला और रासलीला देखी है, लेकिन पदावली कीर्तन कभी नहीं सुना! क्या आपका संस्करण वैसा ही है जैसा हम रेडियो पर सुनते हैं, उदाहरण के लिए, राधारानी, छवि रानी या कमला झारिया द्वारा गाया गया?"

"हे भगवान! अपने रेडियो गायकों का ज़िक्र मत करो! हमारे सामने तो वे कुछ भी नहीं हैं। अगर तुमने एक बार हमारे गायकों को सुना होता, तो..."

मैंने उनकी बात काटते हुए पूछा, "तो क्या आप मुझे उन्हें सुनने ले चलेंगे? मेरी तीव्र इच्छा है कि मैं वे कीर्तन सुनूं!"

निताई बौरी चुप हो गए, मानो उनके पास शब्द ही न बचे हों। कुछ देर रुकने के बाद,

116

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

उसने कहा,

"अच्छा, आप कीर्तन सुनना चाहेंगे? ठीक है, किसी दिन मैं आपको ले चलूँगा... जब सही समय होगा। पहले मुझे मोहनतो की इजाज़त लेनी होगी, क्योंकि आप हमारे समाज से नहीं हैं। मैं आपको एक दिन पहले बता दूँगा।"

"ठीक है," मैंने जवाब दिया। भूलना मत। ओह, देर हो रही है - मुझे अब जाना होगा।"

और मैं जाने के लिए खड़ा हो गया।

निताई बाउरी उस रात भी गुफा में नहीं लौटे। उन्होंने कहा था कि वे अगली रात लौटेंगे। इसलिए मैं उन्हें बिना बताए ही नए गोविंद मंदिर से निकल पड़ा। लेकिन निताई बाउरी के नए मित्र बलराम दा खड़े हो गए और मेरे साथ चलते हुए बोले,

"क्या आप मिर्ज़ापुर धर्मशाला की तरफ़ जा रहे हैं? चलिए, मैं भी उसी तरफ़ जा रहा हूँ।"

रास्ते में उसने मुझसे कहा,

"एक बात साफ-साफ कह दूं भाई, अपने मित्र निताई के साथ कीर्तन सुनने मत जाना।"

"क्यों नहीं? कृपया मुझे बताइये," मैंने पूछा।

"एक बार वहाँ जाने पर, तुम मानो किसी भूलभुलैया में फँस जाओगे। क्या तुम्हारे मित्र ने नहीं कहा था कि उसे मधुर भाव प्राप्त हुआ है? यह सब बकवास है! ऐसा कुछ भी नहीं! वे वैष्णव लोग उस मधुर भावना से दिन-प्रतिदिन व्यथित होते जा रहे हैं। क्या चैतन्यदेव ने उन्हें कभी स्त्री संगिनी के साथ साधना करने को कहा था? नहीं, कभी नहीं! सनातन गोस्वामी को याद करो! उन्होंने वृंदावन में किसी स्त्री से बात तक नहीं की - यहाँ तक कि जब प्रसिद्ध भक्त मीराबाई उनसे मिलने आईं, तो उन्होंने उन्हें भी लौटा दिया। लेकिन अब, देखो आजकल क्या हो रहा है...।"

मैंने आश्चर्य से कहा, "लेकिन आप 'उनके' बारे में क्यों बात कर रहे हैं? क्या आप स्वयं उनमें से एक नहीं हैं?"

"अरे नहीं, साहब!" उसने कहा। "मैं अभी तक इतना पागल नहीं हुआ हूँ! मैं एक अलग समूह का हिस्सा हूँ, मेरा समाज अलग है!"

"लेकिन क्या निताई बाउरी ने यह नहीं बताया कि वह तुमसे अपने मोहनतो के घर पर मिला था? कि तुम वहाँ रोज़ कीर्तन सुनने जाते थे?"

"मैं वहाँ सिर्फ़ कीर्तन सुनने जाता हूँ," उन्होंने जवाब दिया। "वे बहुत अच्छा गाते हैं, इसीलिए मैं जाता हूँ, और यही मेरे वहाँ आने का एकमात्र कारण है।"

"मैं भी उन्हें सुनना चाहूँगा," मैंने कहा। "लेकिन सिर्फ़ सुनने के लिए, न कि

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

117

उनके समूह में शामिल होने के लिए।"

"लेकिन आप तो शादीशुदा नहीं हैं न?" उसने पूछा।

"नहीं," मैंने जवाब दिया, "मैं शादीशुदा नहीं हूं।"

"इसीलिए मैं तुम्हें पहले ही चेतावनी दे रहा हूं कि वहां मत जाओ।

"उस कुंजा में एक चिपचिपा पदार्थ है - तुम वहाँ फँस जाओगे," उन्होंने कहा। "मैं एक पारिवारिक व्यक्ति हूँ, मेरे घर में पत्नी और बच्चे हैं; मेरे लिए कोई ख़तरा नहीं है। मैं फँसने वाला नहीं हूँ...।" चूँकि मैं चुप रहा, उन्होंने अपनी बात दोहराई: "मैं तुम्हें बस चेतावनी दे रहा हूँ, भाई। लेकिन हाँ, तुम जो चाहो करने के लिए स्वतंत्र हो। यह मेरी चिंता का विषय नहीं है। ओह, यही वह जगह है जहाँ मैं तुम्हें अब छोड़ता हूँ।"

हम एक शाखा डाकघर में आ गए थे। यहाँ हम अलग हो गए, और दोनों अपने-अपने रास्ते चल पड़े - मैं मिर्ज़ापुर धर्मशाला की ओर, और वह अपने घर की ओर।

लेकिन बलराम-दा की सलाह के बावजूद, कीर्तन सत्र में भाग लेने की मेरी इच्छा बढ़ती रही; और जब मैं सड़क पर चल रहा था तो मैंने खुद को निताई बाउरी से सुनी हुई उन पंक्तियों को गाते हुए पाया:

"मैं अभी-अभी उसे देखकर आया हूँ, हे मित्र!

मैं अभी-अभी उसे देखकर आया हूँ!

इन पंक्तियों को गाते हुए मुझे ऐसा आनंद महसूस हुआ मानो मैंने स्वयं उसकी शानदार सुंदरता को देखा हो!

दो दिन बाद निताई बाउरी छत्र पर लौट आया, और रात में गुफा में। लेकिन किसी तरह हमारी दोस्ती की गर्माहट पहले जैसी नहीं रही। वह पूरी तरह बदल चुका था।

वह सिर्फ़ ज़रूरत पड़ने पर ही देर रात गुफा में आता था, और हमेशा भोर की पहली किरण के साथ ही चला जाता था; हमारे बीच बातचीत का कोई मौका ही नहीं मिलता था। आखिरकार जब मुझे मौका मिला, तो मैंने उससे एक बार फिर कीर्तन में चलने के लिए कहा।

"मैं तुम्हें ले चलूँगा, मैं तुम्हें ले चलूँगा," उसने कहा, "जल्दी क्या है? सही समय आने दो।"

लेकिन 'सही समय' कभी नहीं आया। दरअसल, मेरे अनुरोध के बाद, वह पहले से भी ज़्यादा दूर हो गया। जैसे शादी के बाद औरतें अपने बचपन के दोस्तों के साथ असहज महसूस करती हैं और उनसे दूर रहने की कोशिश करती हैं, वैसे ही निताई बाउरी दीक्षा लेने के बाद मुझसे दूर रहने लगे थे। कम से कम मेरे पंजाबी दोस्त ने मुझे भर्ती करने की कोशिश तो की थी।

118

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

दीक्षा लेने के बाद भी वह अपने मार्ग पर नहीं चल पाए; लेकिन निताई बाउरी ने मेरी ज़रा भी परवाह नहीं की। वह मुझे भी शामिल होने के लिए प्रोत्साहित कर सकते थे, बस इसलिए कि मुझे सभी छत्रों पर आसानी से मधुकरी मिल जाती - लेकिन नहीं; उनका व्यवहार विनम्रता से भरा था, मानो मैं कोई बच्चा हूँ जो अभी वयस्कों की दुनिया के लिए तैयार नहीं हुआ हूँ। यह बात मुझे उसी पहले दिन स्पष्ट हो गई थी जब मैं उन्हें नए गोविंद मंदिर में मिला था। जिस गुप्त तरीके से उन्होंने भेक और अपने मोहनतो के स्थान के बारे में बात की, मानो वह मुझे अपने नए जीवन का बस एक छोटा सा संकेत ही दे रहे हों, उससे मुझे पता चला कि एक-दूसरे के प्रति हमारा पिछला खुलापन अब खत्म हो चुका था।

खैर, जाने दो, उसे गायब ही कर दो - मुझे इसकी क्या ज़रूरत थी? लेकिन एक बात जो मुझे परेशान कर रही थी, वह थी उस कीर्तन के प्रति मेरा लगाव: "मैं अभी-अभी उनसे मिलकर आया हूँ!" मैं उस गीत को भूल नहीं पा रहा था। उन कीर्तनों को सुनने का मेरा आकर्षण बढ़ता ही जा रहा था।

लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि जीवन भर मुझे बार-बार इसी तरह का दुर्भाग्य झेलना पड़ा है, जब भी मैं कीर्तन सुनने की कोशिश करता हूं; ऐसा लगता है जैसे मेरी कुंडली के सभी सितारे इसके खिलाफ हैं।

कलकत्ता प्रवास के दौरान मेरी सौंदर्य-बोध में, कला के प्रति और कीर्तन के प्रति, दोनों ही दृष्टियों से, काफी विकास हुआ। कलकत्ता के कंपनी गार्डन में एक विशेष हॉल था, जहाँ सौ वर्षों से भी अधिक समय से, दिन-रात निरंतर कीर्तन गाए जाते रहे थे। मैंने पाया कि मैं वहाँ कई घंटे बिताता था। मैं यह सब अपने मामा की अनुमति के बिना करता था, जिनके घर मैं रहता था, और परिणामस्वरूप अपनी अवज्ञा के कारण कष्ट सहता था। तमाम निराशाओं के बावजूद, मैं उन सुंदर भक्ति गीतों के प्रति अपने मोह से मुक्त नहीं हो पा रहा था।

मेरे चाचा के घर में रेडियो नहीं था; लेकिन गली से कुछ घर नीचे, ट्राम लाइन के किनारे, एक छोटी सी पान-बीड़ी की दुकान थी, जहाँ लगातार रेडियो बजता रहता था। दूर से भी, जैसे ही मुझे रेडियो पर राधा-कृष्ण के पदावली कीर्तन शुरू होते दिखाई देते, मैं सब कुछ भूल जाता; चार छलांगों में सीढ़ियों से उतरकर, मैं उस दुकान की ओर दौड़ पड़ता। अगर मुझे दूर खड़ा रहना पड़ता, तो मैं उनका पूरा आनंद नहीं ले पाता, इसलिए मैं सड़क पर आती-जाती ट्रामों और बसों के शोर से ऊपर सुनने

के लिए बहुत पास चला जाता। लेकिन जैसे ही दुकानदार मुझे देखता, वह रेडियो बंद कर देता। पहले कुछ बार तो मुझे एहसास ही नहीं हुआ कि वह जानबूझकर ऐसा कर रहा है -

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

119

सोचा होगा कि बिजली चली गई होगी या उसने यूँ ही रेडियो बंद कर दिया होगा। लेकिन एक दिन कोई और भी गाना सुन रहा था; जब वही बात फिर हुई, तो उस आदमी को दुकानदार की चालाकी तुरंत समझ आ गई और उसने उसे गालियाँ देनी शुरू कर दीं:

उपाध्यक्ष

"धिक्कार है तुम्हारे रेडियो पर, बदमाश! मैं संगीत का आनंद ले रहा था, पर तुम्हें यह बर्दाश्त नहीं हुआ - बस रेडियो बंद कर दो!" और इतना कहकर उसने झुंझलाहट में अपनी सिगरेट सड़क पर फेंक दी और तेज़ गति से चला गया। तब मुझे एहसास हुआ, "अरे हाँ! तो रेडियो अपने आप बंद नहीं हुआ - दुकानदार ने उसे जानबूझकर बंद कर दिया था!"

और यह कीर्तन सुनते हुए मेरे साथ घटी कई घटनाओं में से एक थी। इसलिए जब मैंने इस मामले में अपने पूर्व मित्र की भूमिका पर विचार किया, तो मुझे लगा कि मैं इसके लिए अकेले उसे दोषी नहीं ठहरा सकता।

ठीक है - मैंने उसे दोष नहीं दिया - लेकिन मैंने पाया कि मैं किसी न किसी तरह पदावली कीर्तन सुनने के लिए और भी ज़्यादा दृढ़ होती जा रही थी। दरअसल, वृंदावन ही कीर्तन का असली घर है - इसलिए वहाँ उन्हें सुनने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए थी। और दरअसल, कई जगहों पर ऐसी सभाएँ होती हैं जहाँ महिला वैष्णव साल के बारह महीने और तीस दिन इन्हें गाती हैं। मुझे बस यह पता लगाना था कि ये कहाँ और कब होते हैं। इसलिए मैंने ज़रूरी जानकारी इकट्ठा करना शुरू कर दिया।

कुछ ही दिनों में मेरी कोशिशें कामयाब हो गईं। मैं दिल्ली के छत्र में बैठा था, तभी एक सज्जन, जिनसे मेरी थोड़ी-बहुत जान-पहचान थी, एक अजनबी के साथ मेरे पास आए और उस अजनबी के पीछे तीस-चालीस औरतें थीं! मैंने हैरानी से ऊपर देखा और कहा,

"कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?"

मेरे परिचित ने कहा, "कुछ दिन पहले आपने कहा था कि आप कीर्तन सुनना चाहते हैं। क्या अब भी आपकी रुचि है?"

मैं मन ही मन सोच रहा था कि मुझे कीर्तन सत्र में आमंत्रित करने के लिए इतने बड़े समूह की क्या आवश्यकता थी; लेकिन मैंने ऊँची आवाज में केवल इतना कहा, "हाँ, मुझे अभी भी रुचि है। यह कहाँ होगा?"

मेरे परिचित ने अपने बगल में खड़े आदमी की ओर इशारा करते हुए कहा,

"उसके अखरा पर."robo

मैंने पूछा, "वृंदावन में उसका अखरा कहां है?"

"ओह, यह वृंदावन में नहीं है - यह नवद्वीप में है," उन्होंने कहा।

मैंने कहा, "क्या? नवद्वीप में!"

120

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

"हाँ, नवद्वीप में उनका एक बड़ा अखड़ा है," मेरे परिचित ने जवाब दिया। "वे वहाँ के एक प्रसिद्ध संगीतकार हैं। आप जिस भी शैली का कीर्तन सुनना चाहें, वहाँ सुना जा सकता है। आप खुद भी गायन सीख सकते हैं। वे अपनी मंडली के साथ यहाँ आए हैं, और मुझे आपकी बात याद आ गई और मैंने उनसे इस बारे में बात की - वे तुरंत मान गए। तो अब उनके साथ चलिए।"

"आप क्या कह रहे हैं? वृंदावन छोड़ दें? मुझे तो सिर्फ़ कीर्तन सुनने के लिए पश्चिम बंगाल जाना चाहिए?"

नवद्वीप के प्रसिद्ध संगीतकार मेरे प्रश्न का उत्तर देने के लिए आगे आए और मुस्कुराते हुए बोले, "हाँ, क्या कठिनाई है? मेरे साथ आओ! वहाँ तुम

"कीर्तन सुनो - तुम मुझसे हर तरह के कीर्तन सीखोगे! हम कल निकल रहे हैं - मैं तुम्हें भी साथ ले चलूँगा..."

लेकिन जैसे ही मैंने उस मशहूर संगीतकार को देखा, गाने सुनने की मेरी लालसा गायब हो गई। उसने काले शॉर्ट्स और सैंडो साइज़ की काली जर्सी पहनी हुई थी। उस बौने, घने, सांवले रंग के आदमी को देखकर मैं सोच में पड़ गया,

"यह आदमी संगीत का अभ्यास करता है? वह गाने में विशेषज्ञ नहीं हो सकता - वह तो कसाई जैसा दिखता है!"

फिर भी मैंने अपने विचार छिपाते हुए उनसे कहा, "मुझे खेद है, मैं नवद्वीप नहीं जा पाऊँगा। क्या आप मुझे वृंदावन में गीत सुनने में मदद कर सकते हैं?"

प्रसिद्ध संगीतकार इस प्रश्न से उलझन में पड़ गए और बोले, "यह कैसे संभव है? मुझे यहाँ हारमोनियम कहाँ मिलेगा? बाँसुरी और तबला कौन देगा? मैंने कहा था न, मेरे साथ नवद्वीप चलो... वहाँ तुम सुनोगे! यात्रा व्यय की चिंता मत करो; मैं तुम्हारा रेल किराया, भोजन - सभी प्रकार का व्यय वहन करूँगा। और वहाँ तुम मेरे घर में मेरे परिवार के सदस्य की तरह रहोगे..."

मैंने दृढ़ता से आपत्ति जताते हुए कहा, "माफ कीजिए, महोदय... मैं कीर्तन सुनने के लिए नवद्वीप नहीं जाना चाहता।"

जो सज्जन उस संगीतकार को मेरे पास लाए थे, वे मेरे उत्तर से क्रोधित हो गए और मुझसे बोले,

"तो फिर आपने मुझसे यह कहने की हिम्मत कैसे की, 'महाशय, मुझे कीर्तन सुनने की बहुत इच्छा है। क्या आप मुझे बता सकते हैं कि कीर्तन कहाँ होते हैं?"

उन्होंने यह बात इतने हास्यास्पद और हास्यपूर्ण तरीके से कही कि साथ में मौजूद महिलाएं हंसने लगीं।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

121

मैं इनकार नहीं कर सकता था। एक दिन मैंने उनसे जानकारी माँगी थी; तो उपहास सहने के अलावा कोई चारा नहीं था। फिर भी मैंने जवाब दिया,

"तो क्या दंडस्वरूप मुझे कीर्तन सुनने के लिए नवद्वीप तक जाना पड़ेगा?"

लेकिन उस सज्जन ने मेरे प्रश्न पर ध्यान न देते हुए अपना भाषण जारी रखा: "आपके अनुरोध के कारण ही मैंने इन सज्जन और उनके साथियों को आपसे मिलने के लिए यहाँ आने के लिए राजी किया! क्या आपको पता है कि आपको ढूँढ़ने में कितनी परेशानी हुई? न तो आपका कोई घर है और न ही चूल्हा-चौका - आपको ढूँढ़ने के लिए मुझे पूरा वृंदावन उलट-पुलट करना पड़ा। और अब जब हम आपको ढूँढ़ ही लाए हैं, तो आपके पास मेरे मुँह पर मना करने की हिम्मत कैसे हुई!"

"मुझे बहुत खेद है, महोदय। अगर मुझे पता होता कि आपको बिना किसी कारण के इतनी परेशानी उठानी पड़ेगी, तो मैं आपसे कभी मदद नहीं मांगता।"

मेरे क्षमाप्रार्थी स्वर का लाभ उठाते हुए, उन्होंने अपना मामला जारी रखा:

"ज़रा सुनो... मैं यह तुम्हारे भले के लिए कह रहा हूँ: वृंदावन में तो पेट भरने का एकमात्र तरीका भीख माँगना है; लेकिन अगर तुम नवद्वीप जाओ तो राजा की तरह रह सकते हो। इस सुनहरे मौके को हाथ से मत जाने दो... कृपया उसके साथ चलो।"

मेरे पास उसके लिए केवल एक शब्द था:

"नहीं!" मैंने दृढ़ता से कहा, "मैं अब कीर्तन नहीं सुनना चाहता!"

फिर भी उन्होंने जोर देने की कोशिश की, यहां तक कि अपमान भी किया; और जब इससे भी बात नहीं बनी, तो अंततः उन्होंने मुझे पूरी तरह से निराश होकर छोड़ दिया।

जब वे चले गए, तो एक वृद्ध वैष्णव साधु, जो पास में बैठे थे और पूरी बात सुन रहे थे, मेरे पास आए और पूछा:

"आप इन लोगों को कैसे जानते हैं? क्या ये आपके रिश्तेदार हैं?"

"नहीं, सर," मैंने जवाब दिया। "मैं उनसे पहली बार मिला हूँ।"

"वे क्या कह रहे थे? वे तुम्हें नवद्वीप क्यों ले जाना चाहते थे?"

"ओह, बाबाजी," मैंने कहा, "मुझसे मत पूछिए... यह एक लंबी कहानी है।"

"अगर आपको कोई आपत्ति न हो तो मुझे इसके बारे में बताइए," उसने कहा और उसकी जिज्ञासा बढ़ती गई।

"ठीक है, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं बस सुनना चाहता था

122

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

कुछ कीर्तन के बाद यह सारी परेशानी खड़ी हो गई।

और मैंने उसे पूरी कहानी सुनाई।

जब उसने पूरी बात सुनी, तो उसने उस व्यक्ति को दोषी ठहराना शुरू कर दिया जो संगीतकार को मेरे पास लाया था:

"कितनी शर्म की बात है! कीर्तन सुनने के लिए कौन वृंदावन छोड़ेगा? इसके पीछे कोई गुप्त उद्देश्य अवश्य होगा।"

"शायद," मैंने कहा.

"शायद नहीं," उसने जवाब दिया। "यह पक्का है। इस सब के पीछे कोई ग़लत इरादा था। जिस तरह से वे तुम्हें मजबूर कर रहे थे, अगर हम यह सब देखने के लिए मौजूद न होते, तो वे तुम्हें ज़रूर ज़बरदस्ती ले जाते, वे इतने ज़िद्दी थे!"

"लेकिन मुझे वहां ले जाना उनके लिए क्यों फायदेमंद होगा?" मैंने पूछा।

"वे तुम्हें वहीं दीक्षा देते, और उनके समूह का आकार बढ़ जाता।"

"लेकिन अगर मैंने मना कर दिया होता तो क्या होता?" मैंने पूछा।

"ओह, मेरे दोस्त!" उसने कहा, "उनके पास तुम्हें यकीन दिलाने के तरीके हैं। वे बहुत ही दुनियादारी वाले लोग हैं - वे बहुत सी बातें जानते हैं! पहले वे तुम्हारे लिए एक जवान लड़की लाएँगे। क्या तुमने नहीं देखा कि वे औरतों का एक बड़ा झुंड लेकर आए हैं?"

यद्यपि बाबाजी के शब्द सत्य थे, फिर भी उन्हें सुनकर मुझे बहुत बुरा लगा, और मैंने उनकी बात बीच में ही रोक दी:

"हाँ, बहुत कुछ हो सकता था।" मैंने कहा।

"यह स्वीकार करो, भाई!" उन्होंने उत्तर दिया: "यह राधारानी हैं जिन्होंने आज तुम्हारी रक्षा की है! हे राधा, वृंदावन की सुन्दरी! हे तुम्हारी दया के तरीके कितने विविध हैं!"

और ऐसा कहकर बाबाजी छत्र पंक्ति में शामिल होने चले गए, और मैं भी उनके पीछे चला गया।

उस दिन के बाद से ये बाबाजी मेरे प्रति बहुत सहानुभूति रखने लगे। जब भी वे मुझे देखते, कुछ शब्द कहने के लिए रुक जाते।

"जानते हो भाई," वह कहता, "उस दिन की याद आज भी मेरे ज़ेहन में ताज़ा है जब हम पहली बार मिले थे। उस आदमी की कितनी हिम्मत थी, जो तुम्हें वृंदावन छोड़ने पर मजबूर करने की कोशिश कर रहा था! उसने तो तुम्हें अगवा करने की कोशिश की थी! लेकिन कम से कम तुम्हें वहाँ ले जाने के लिए तो

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

123

नवद्वीप... राधारानी के प्रति आभारी रहो कि वह तुम्हें बर्मा या रंगून नहीं भेजना चाहती थीं!

और मैं मज़ाक में जवाब देता, "हाँ, वे ज़रूर ऐसा करते, अगर आपकी उपस्थिति न होती...."

तब बाबाजी मेरे उत्तर पर प्रसन्नता से हंसते और कहते, "ठीक है, ठीक है! क्योंकि हम वहां थे, इसलिए उन्हें उससे पहले ही रुकना पड़ा!"

कुछ सप्ताह बाद, बाबाजी ने पुनः मेरा अभिवादन किया और पूछा,

"तो कीर्तन सुनने की लालसा ही तुम्हें इतनी परेशानी में डाल रही थी! पर क्या तुम्हें अंततः कीर्तन सुनने को मिला?"

"नहीं बाबाजी। उसके बाद मैंने यह सारा विचार त्याग दिया।"

"यह विचार क्यों छोड़ रहे हो? यहाँ वृंदावन में कीर्तन सुनने के लिए बहुत सी जगहें हैं। दरअसल, मेरे अखड़े में भी हम कभी-कभी कीर्तन गाने के लिए इकट्ठा होते हैं। मेरी वैष्णवी भी कीर्तन गाती है। क्या तुम उसे सुनना चाहोगे?"

सच कहूँ तो, कीर्तन सुनने की मेरी चाहत मेरे अंदर ही रही। इतनी सारी मुश्किलों का सामना करने के बाद ही मैंने कभी ऐसा करने की उम्मीद छोड़ दी थी। इसलिए जब उन्होंने मुझे आमंत्रित किया, तो मैंने तुरंत प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

मैंने उससे पूछा, "तुम्हारा अखरा कितनी दूर है?"

"ओह, वो तो पास ही है," उसने जवाब दिया। "आओ, मैं तुम्हें आज दिखाता हूँ कि वो कहाँ है। जल्द ही हमारी एक और मीटिंग होने वाली है और मैं तुम्हें पहले ही बता दूँगा, ताकि तुम आ सको।"

तो मैं बाबाजी के साथ उनका अखाड़ा ढूँढ़ने निकल पड़ा। उन्होंने न सिर्फ़ मुझे अखाड़ा दिखाया, बल्कि मुझे अंदर भी बुलाया:

"अंदर आ जाओ, जाने की इतनी जल्दी मत करो।"

और इसलिए मुझे अंदर जाने का मन हुआ।

बाबाजी का अखड़ा वाकई बहुत मनमोहक था। अगर मैंने खुद लाल मिट्टी से बना उसका सुंदर, सुव्यवस्थित आँगन न देखा होता, तो मुझे यकीन ही नहीं होता कि वृंदावन में भी ऐसी कोई जगह है। हालाँकि यह एक साधारण सा घर था, फिर भी यहाँ एक सुकून भरा माहौल था। जैसे ही मैं आँगन में दाखिल हुआ, चमेली, मोगरा और मालती की खुशबू ने मेरा मन मोह लिया। छायादार पेड़ों और मनमोहक सुगंधों के मेल ने एक शांत, शीतल और अद्भुत वातावरण का निर्माण किया। आँगन के बीचों-बीच एक ऊँचे चबूतरे पर तुलसी का एक पौधा उगा हुआ था। दाहिनी ओर गेंदे के फूलों के गुच्छे थे, जो एक-दूसरे से सटे हुए थे।

124

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

रंग-बिरंगे, हर समूह एक बाँस के परदे में बंद था। पीले गेंदे के फूल खास तौर पर बहुतायत में थे, जो अपनी समृद्धि के भार से एक-दूसरे पर झुके हुए थे। आँगन के दूसरे छोर पर बैंगन, शिमला मिर्च, मिर्च और भिंडी की कतारें उगी थीं, जो उस समय अपने खिलने के मौसम में थीं। मिट्टी के घरों के एक समूह की छतों के ऊपर, चार-पाँच भारी लदे आम के पेड़ों की चोटियाँ अपने फूलों के भार से झुकी हुई लग रही थीं।

इस घेरे के भीतर मिट्टी से बने कई घर थे। उनके फर्श, अंदर और बाहर, बिल्कुल साफ़ और चिकने थे: दरअसल, पूरे परिसर में कहीं भी बिना चटाई बिछाए ज़मीन पर बैठा जा सकता था।

मैं उस ओर बैठने ही वाला था कि बाबाजी ने मुझे रोक दिया, "रुको, रुको... मुझे एक चटाई बिछाने दो। यह एक साधारण सा घर हो सकता है, लेकिन राधारानी ने हमारे दैनिक जीवन के लिए आवश्यक सभी चीजें प्रदान करने में कामयाबी हासिल की है।"

उन्होंने मुझे बैठने के लिए एक चटाई दी और छत्रों से लाए गए भोजन और अन्य सामान को उतारने के लिए एक झोपड़ी में चले गए।

जब मैंने अपने चारों ओर सुंदर दृश्य देखा, तो मैंने सोचा कि ऐसी जगह पर रहना कितना अच्छा होगा!

तभी मैंने पास के एक अन्य घर के बरामदे में एक अधेड़ उम्र की वैष्णवी को देखा; वह एक खंभे के सहारे टिकी हुई थी और जप (भगवान के नाम का दोहराव) कर रही थी, तथा एक छोटे से थैले में रखी माला को उंगलियों से गिन रही थी।

मुझे एहसास हुआ कि वह बाबाजी की वही महिला साथी होगी जिसके बारे में उन्होंने कहा था - जो कीर्तन गाती थी।

यह लगभग दिन का वह समय था जब मेरे घर की सभी महिलाएं दोपहर का भोजन तैयार करना शुरू कर देती हैं; इसलिए मुझे उस समय एक महिला को ऐसे काम में कार्यरत देखकर आश्चर्य हुआ - यह मेरे लिए काफी असामान्य बात थी।
"हाँ, अजीब है—लेकिन मुझे इससे क्या परेशानी होनी चाहिए?" मैंने मन ही मन सोचा। "हो सकता है यहाँ वृंदावन में कोई अलग व्यवस्था हो। यहाँ खाना बनाने की ज़िम्मेदारी छत्रों के पास होती है, और बाबाजी खुद खाना बनाते हैं। इसीलिए उनके पास इस समय जप के लिए समय होता होगा।"
लेकिन वह अपने जप पर इतनी केंद्रित नहीं थी कि वह

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार
125
उसे पता था कि उसके आस-पास क्या हो रहा है। वह मेरी उपस्थिति से वाकिफ़ थी, और जब हमारी नज़रें मिलीं तो मैंने उसे प्रणाम किया; तभी वह मेरे पास आई, मेरे पास बैठ गई और बातें करने लगी। उसका व्यवहार बहुत खुला और स्पष्ट था - उसमें ज़रा भी शर्म नहीं थी। उसने शुरुआत में मुझे 'मेरा बेटा' कहकर संबोधित किया।
उसने पूछा:
"तुम कहाँ से आये हो, और इस जगह पर कहाँ रहते हो, मेरे बेटे?"
मैंने उससे कहा, "पश्चिम बंगाल", और फिर उस गुफा के बारे में बताया जहां मैं रुका था।
"आप मोहनतो से कैसे मिले - मेरा मतलब बाबाजी से है?" उसने पूछा।
मैंने जवाब दिया, "मैं उनसे एक छत्र में मिला था।"
"मैं समझ गई। आप वृंदावन क्यों आए हैं? सिर्फ़ घूमने के लिए?" उसने पूछा। "नहीं मैडम... मैं यहाँ बसने आया हूँ।"
"क्या आपका मतलब स्थायी रूप से बस जाना है?" उसने पूछा।
"हाँ," मैंने उत्तर दिया, "यही मेरा इरादा है।"
"तुम्हारे साथ कौन आया था?"
"मैं अकेला आया हूँ।"
"मुझे बताओ कि तुमने यहाँ बसने का फैसला क्यों किया," उसने जिज्ञासा से पूछा। "तुम घर पर किसे छोड़ आए?"

"ओह, घर पर? मैंने किसी को नहीं छोड़ा। मेरा कोई पिता, माँ या कोई सगा परिवार नहीं है।" मैंने जवाब दिया।

"ओह...," उसने जवाब दिया। "अब समझ आया। इसीलिए तो तुम संन्यासी हो गए हो! पर तुम तो बस यूँ ही आ गए हो, और जब इसका आकर्षण खत्म हो जाएगा, तो तुम दुनिया में लौट जाओगे न?"

मैं कई महीनों से वृंदावन में थी, और इतने समय में किसी ने भी मुझसे इस तरह जिरह नहीं की थी जैसी यह महिला कर रही थी। मुझे इससे पहले भारत सेवाश्रम में स्वामीजी ही एकमात्र परीक्षक मिले थे। लेकिन चूँकि उन्होंने एक माँ की तरह प्रश्न पूछे थे, इसलिए हालाँकि मैंने इतने लंबे समय तक यह सब अपने तक ही रखा था, उनके प्रश्नों ने मेरे भीतर की गहराई से सब कुछ उजागर कर दिया। मैंने उन्हें अपना असली इरादा बताया:

"नहीं, मैं यूँ ही नहीं आ गया। मैं तो सचमुच वृंदावन में हमेशा के लिए रहने आया हूँ। मैं गया, काशी, प्रयाग वगैरह कई जगहों पर घूमा हूँ, लेकिन मुझे कहीं भी ऐसी जगह नहीं मिली जहाँ मुझे सबसे ज़्यादा घर जैसा महसूस हो। आसमान, हवा और रेत का हर कण एक ख़ास आनंद से सराबोर है। यह हर जगह है। चूँकि

126

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

यहाँ आने के बाद से, मैंने कभी भी पेट भर खाना नहीं खाया और मेरा आवास भी इतना उपयुक्त नहीं रहा - फिर भी मैं कभी भी इससे अभिभूत नहीं हुआ। यहाँ का वातावरण अद्भुत है, यहाँ मुझे एक अद्भुत आनंद मिलता है...।"

वैष्णवी तुरन्त चिल्लाई,

"हाँ, बिल्कुल, मेरे बेटे! वृंदावन सचमुच असाधारण है। यहाँ एक विशेष आनंद है। राधारानी के वृंदावन में कोई भी दुखी नहीं रहता। वह हम सबका ध्यान रखती है और हमें ऐसी खुशियाँ प्रदान करती है! राधा की जय! गोविंद की जय!"

अपने दोनों हाथ माथे पर रखकर उन्होंने राधा और कृष्ण के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की।

कुछ क्षण की चुप्पी के बाद उसने फिर पूछा,

"बेटा, वृंदावन में भोजन उपलब्ध कराने वाले इतने सारे छत्र और आवास के लिए इतने सारे आश्रम-मठ हैं; तो फिर तुम ऐसा क्यों कहते हो कि तुम्हारी ज़रूरतें पूरी नहीं हुई हैं?"

"मैं उन्हें कैसे प्राप्त कर सकता हूँ? मैं कोई वैष्णव या साधु नहीं हूँ," मैंने उत्तर दिया, "और ये सुविधाएँ मुख्यतः उनके लिए हैं।"

वह मुझसे सहमत थी:

"हाँ, यह सच है। सच तो यह है कि आजकल इतने बाहरी लोग आ गए हैं कि साधुओं और वैष्णवों को भी पेट भरने में दिक्कत हो रही है।"

"वैसे भी, वृंदावन में साधुओं को कोई कठिनाई नहीं होगी - कठिनाई तो मेरे जैसे लोगों के लिए है।" मैंने उत्तर दिया।

इस पूरी बातचीत के दौरान वह अपनी थैली में रखी माला के मनके गिनती रही। फिर कुछ पलों के लिए वह चुप हो गई, और फिर ज़ोर से सोचने लगी:

"बेचारे! तुम इतने छोटे हो। क्या यही तुम्हारी दीक्षा लेने की सही उम्र है? और अगर तुम शिष्य नहीं बनोगे, तो तुम्हें यहाँ ठीक से खाना नहीं मिलेगा। अभी तो तुम्हें जीवन के अनुभवों का असली स्वाद भी नहीं मिला है। तुम्हारी उम्र क्या हो सकती है? 17 या 18 से ज़्यादा नहीं..."

शुरू से ही उन्होंने मुझे बहुत छोटा देखा था। इसीलिए उन्होंने मुझे 'मेरा बेटा' कहकर संबोधित किया था। बेशक मैंने ऐसा नहीं कहा, लेकिन चूँकि उन्होंने मुझे एक बच्चे के रूप में देखा था, मुझे चिंता हुई कि शायद वे इतने छोटे बच्चे के लिए कीर्तन गाने को राज़ी न हों। इसलिए यह साबित करने के लिए कि मैं कोई साधारण लड़का नहीं हूँ, मैंने ज़ोर देकर कहा,

"ओह, मैं उतना युवा नहीं हूँ जितना आप सोचते हैं। मैं तो बस बीस साल का हूँ।"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

127

आयु।"

लेकिन मेरे विरोध पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। वैष्णवी बोली, "लेकिन मैं देख रही हूँ कि तुम अभी भी बहुत नासमझ हो...।"

तभी बाबाजी कमरे से बाहर आए और वैष्णवी से पूछा, "अभी कौन नादान है? तुम किसके बारे में बात कर रही हो?" वैष्णवी तुरन्त मेरी ओर से मुँह मोड़कर उनके प्रश्न को अनसुना करते हुए बोली,

"ओह, मोहन्टो, क्या तुम सचमुच इतने छोटे लड़के को दीक्षा देने जा रहे हो?"

"तुम किस जवान लड़के की बात कर रहे हो? क्या तुम इस नौ इंच लंबी दाढ़ी-मूँछ वाले आदमी की बात कर रहे हो?" उसने पूछा। "क्या तुम्हें पता है कि उसे नवद्वीप ले जाकर शादी करवानी थी, और तुम उसे जवान लड़का कह रहे हो? क्या बकवास कर रहे हो?"

जब वह बोल रहे थे, बाबाजी ने एक चटाई खींच ली और हमारे बीच ज़मीन पर बैठ गये।

"लेकिन आपने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया," वैष्णवी ने ज़िद की। "क्या आप उसे दीक्षा देने के लिए यहाँ लाए हैं?"

बाबाजी नाराज़ हो गए, "मुझसे क्यों पूछ रहे हो? इस सवाल का जवाब तो उन्हें ही देना चाहिए।"

वैष्णवी बोली, "इस सवाल का जवाब कोई भी दे, मैं ऐसा नहीं होने दूँगी। वह तो बस एक लड़का है। उसकी पूरी ज़िंदगी उसके सामने है। अगर वह कभी घर लौटना चाहे और शादी करना चाहे, तो क्या उसे ऐसा करने की इजाज़त नहीं होनी चाहिए? नहीं, नहीं मोहन्टो, यहाँ सिर्फ़ दो-चार रोटी के टुकड़े पाने के लिए, तुम उसका भविष्य बर्बाद मत करो, प्लीज़!"

अब बाबाजी का धैर्य जवाब दे गया।

"आह! क्या उपद्रव है!" उसने कड़वाहट से कहा। "तुम्हें इस बारे में कुछ नहीं पता, फिर भी तुम ऐसे बातें कर रहे हो जैसे तुम्हें पता ही हो! क्या तुम्हें लगता है कि मैंने उसे दीक्षा देने के लिए उसकी मर्ज़ी के खिलाफ यहाँ खींच लाया हूँ?"

यह सुनकर वैष्णवी तुरन्त शांत हो गई, अपने को सँभालते हुए बोली,

"मेरा यह मतलब नहीं था, मोहन्तो। तुम उसे यहाँ क्यों खींच रहे हो? पर मैं देख सकता हूँ कि उसे स्वयं मदद की ज़रूरत है। शायद वह स्वयं ही वृंदावन में अपना पेट पालने के लिए दीक्षा ले लेगा।"

अचानक मुझे एक झटका सा लगा - मानो किसी ने मेरे गाल पर ज़ोरदार थप्पड़ मारा हो और कहा हो, "देखा? तुझे अभी भी समझ नहीं आया कि क्या हो रहा है? क्या तू शर्म से लकड़ी के टुकड़े की तरह बैठा रहेगा?"

128

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

आपकी नौ इंच लंबी दाढ़ी और मूंछों का ज़िक्र? यहाँ आप शर्मिंदा और शर्मिंदा बैठे हैं जबकि वे आपके भविष्य की योजना बना रहे हैं।

उठो, नौजवान, और यहाँ से चले जाओ!

सच में, दाढ़ी वगैरह की इतनी सारी बातों ने मुझे इतना शर्मिंदा कर दिया था कि मैं वहीं स्तब्ध सा बैठा रहा, कुछ बोल नहीं पाया। लेकिन इस अचानक झटके के साथ, मैं तुरंत उनका सामना करने के लिए खड़ा हो गया:

"न-नहीं! नहीं! आप क्या कह रहे हैं? मैं यहाँ दीक्षा लेने नहीं आया हूँ... मैं यहाँ कीर्तन सुनने आया हूँ!"

मैं अचानक हकलाने लगा: मैं ठीक से बोल नहीं पा रहा था। खुद को बचाने के लिए, मैं जितनी तेज़ी से चल सकता था, वहाँ से भाग गया।

यदि मैं वहीं रुक जाता और उनसे संपर्क जारी रखता तो कौन जानता कि मेरे साथ क्या होता?

मुझे नहीं पता कि वह दयालु वैष्णव महिला कौन थी जिसने मुझे, एक बिल्कुल अजनबी को, इतने भयानक परिणामों से बचाने के लिए अपनी ही जाति के विरुद्ध जाकर काम किया। ज़रूर कोई मुझ पर नज़र रख रहा था!

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

129

नोट्स और संदर्भ

1. वह जल जिसमें देवता के पैर धोए गए हों - चरणामृत।

2. शरतचंद्र ने अपने उपन्यास में एक वैष्णव मठ का वर्णन किया है जिसमें कई महिला भक्त हैं, जिनमें से एक का नाम 'कमलता' है। इस नाम का अर्थ है कमल, या कमल-लता। इसलिए यहाँ लेखक एक व्यंग्यात्मक प्रयोग कर रहे हैं, जहाँ वे महिला वैष्णवों से भरे मठ को कमलों से भरे वन के रूप में वर्णित कर रहे हैं।

3. भेक का अर्थ है वैष्णव पंथ में दीक्षा।

4. मोहन्तो - यह शब्द वैष्णव गुरु या वैष्णव मठ के प्रमुख को इंगित करता है।

5. कुंज का शाब्दिक अर्थ है उपवन या बगीचा; लेकिन यह वैष्णव आश्रम या मठ को भी संदर्भित करता है।

6. राधा अपनी सहेली से कह रही है कि वह अभी-अभी कृष्ण के दर्शन करके आई है, शायद राधा को पहली नजर में ही कृष्ण से प्यार हो गया है... इसीलिए वह अपनी सहेली के सामने अपनी सारी भावनाएं प्रकट करने से खुद को नहीं रोक पा रही है!

7. पदावली का अर्थ है छंदों का समूह... राधा-कृष्ण की स्तुति में वैष्णव कविताओं का एक समूह; पदावली कीर्तन उन कविताओं का गाया हुआ रूप है।

8. अखरा - वैष्णव धार्मिक प्रदर्शन के लिए एक स्थान।

9. नवद्वीप: श्री चैतन्य का जन्मस्थान, पश्चिम बंगाल में स्थित - वृंदावन से 1500 या 2000 मील दूर!

10. बान्या और तबला: गायन में लय को चिह्नित करने के लिए प्रयुक्त संगीत वाद्ययंत्र।

11. महिला साथी.

खराब

अध्याय नौ

एस

इस प्रकार इतिहास ने एक बार फिर अपने आप को दोहराया - जैसे कलकत्ता में, कीर्तन सुनने में मेरी कठिनाइयां यहां वृंदावन में भी प्रकट हुईं; पदावली कीर्तन का आनंद लेने से एक बार फिर मुझे वंचित कर दिया गया।

मुझे पता चला कि मैं कीर्तन के बिना तो ज़िंदा रह सकता हूँ। लेकिन रोटी के बिना, मैं नहीं रह सकता था। एक-एक करके वृंदावन के छत्रों के दरवाज़े मेरे लिए बंद होते गए। ऐसा इसलिए था क्योंकि मैं किसी पहचान योग्य श्रेणी में नहीं आता था: न तो मैं गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी था, न ही वैष्णव - और न ही कोई मुझे पेशेवर भिखारी समझता था। मैं कमर तक मुड़ी हुई धोती, बनियान या बनियान पहनता था, और उसके ऊपर एक नया भगवा रंग का हथकरघा शॉल ओढ़ता था। मेरे स्वस्थ शरीर के कारण मुझे अपने गाँव में 'चंकी' उपनाम मिला था, और यह नाम अब भी बिलकुल सही था, क्योंकि मथुरा जेल में बिताए महीनों के दौरान मुझे मोटी रोटियाँ, साबुत दाल,

कच्ची पत्तागोभी और दूसरे 'व्यंजन' खिलाए गए थे, जिससे मेरा पहले से ही चुस्त स्वास्थ्य और भी बेहतर हो गया था - तो मुझे भिखारी समझने की भूल कौन कर सकता था?

खैर, शायद मैं कोई भिखारी नहीं था, लेकिन क्या लोग मुझे कोई साधु-संत नहीं समझ सकते थे? क्या यह बात कि मैंने भगवा रंग का शॉल ओढ़ा था, यह बताने के लिए काफ़ी नहीं थी कि मैं कहाँ जा रहा हूँ? लेकिन नहीं! किसी ने मेरे भगवा शॉल को संन्यासी का शॉल नहीं समझा। ऐसा इसलिए था क्योंकि कुछ महीने पहले प्रयाग में रहते हुए मैंने एक बहुत बड़ी गलती की थी। सिर्फ़ इसी वजह से कोई भी मुझे भूलकर भी साधु- संन्यासियों को मिलने वाली सुविधाएँ नहीं देता था। अगर मुझे पहले से पता होता कि इससे मुझे बाद में कितनी परेशानी होगी, तो मैं ऐसा कभी नहीं करता।

और असल में, मैंने ये अपनी मर्ज़ी से नहीं किया। मेरी गलती ये थी कि मैं अपने आस-पास के लोगों को खुश करने की कोशिश कर रहा था, उनके जैसा ही व्यवहार कर रहा था।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

131

कर रहा है।

प्रयाग पहुंचते ही मैंने वहां तीर्थयात्रियों और आगंतुकों को यह कहते सुना था:

"यह माँ गंगा की कृपा है कि हमें इस पवित्र स्थान पर आने की अनुमति मिली है। इसलिए यह हमारा पहला और सबसे बड़ा कर्तव्य होना चाहिए कि हम अपने सिर मुंडवाएँ और उन्हें अपने बाल अर्पित करें। यह जीवन का सबसे बड़ा अवसर है। हम परिवार के लोगों को शायद फिर कभी यहाँ आने की अनुमति न मिले। इसलिए जाने से पहले, आइए हम अपने सिर मुंडवा लें।"

तभी किसी ने शास्त्रों से एक अचूक बात निकाली और कहा,

इसमें कहा गया है कि गंगा और यमुना के संगम पर पहुंचकर सिर मुंडवाने से तीर्थयात्रा को पूर्ण अर्थ प्राप्त होता है और व्यक्ति की इच्छा पूरी होती है। इससे तीर्थयात्रा पवित्र होती है। इसलिए इसमें तीर्थयात्रियों को सलाह दी गई है:

. "पहले प्रयाग में अपना सिर मुंडवाओ,

तो फिर, तीर्थयात्री, जहाँ चाहो वहाँ जाओ।”

इसके बाद, व्यक्तिगत प्राथमिकताएं प्रश्न से परे हो गईं।

जो लोग अभी भी नाई को अपना सिर देने में हिचकिचा रहे थे, वे भी शास्त्रों की इस बात पर बहुत उत्साहित हो गए। जब हमारे समूह की सुंदर युवतियाँ भी अपने रेशमी काले बाल कसाई-नाई के हाथों में सौंप रही थीं, तो मैं कैसे मना कर सकता था? मैंने भी अपने नाज़ुक बालों को नाई के हाथों में सौंप दिया।

लेकिन जब मैं वृंदावन पहुंचा तो मुझे पश्चाताप करना पड़ा:

"ओह, उस दिन मैंने कितनी बड़ी भूल कर दी! काश मैंने अपने बाल बचा लिए होते - भले ही मुझे इसके लिए नाई को पैसे देने पड़ते - आज वृंदावन की छत्र-पंक्ति में ये मेरे बहुत काम आते!"

क्योंकि मैंने वहाँ कतार में कई ऐसे लोगों को देखा जो संत नहीं थे - वे बिल्कुल मेरी तरह ही कपड़े पहने हुए थे; लेकिन सिर्फ़ इसलिए कि उनके लंबे बाल और दाढ़ी थीं, वे बिल्कुल प्राकृतिक संतों जैसे लग रहे थे - और उनके साथ संतों जैसा ही व्यवहार किया गया! मुझे भी वैसा ही व्यवहार मिलता और मुझे ब्रजवासियों के घरों में मुगलई पराठे और ऐसे ही अन्य व्यंजनों के लिए आमंत्रित किए जाने से कोई नहीं रोक पाता!

खैर, जाने दो - जो होना था सो हो गया। अब मेरे पास एक ही रास्ता बचा था कि मैं बिना किसी घर में रहे, खाना जुटा सकूँ।

132

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

आश्रम या मठ में, या अपने साथियों की तरह दीक्षित हुए बिना। यह शरणार्थियों की नकल करना था - अपने कपड़ों को खुन-खरपी - केसरिया रंग से रंगना। इसमें ज़्यादा खर्च भी नहीं होता... बस दो-चार पैसों का ही तो मामला है।

लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सका... क्योंकि मुझे पता था कि मेरे गुरु, श्री अरविंद, गेरुआ वस्त्र नहीं पहनते थे। हालाँकि उस समय मैंने पांडिचेरी आश्रम में किसी को नहीं देखा था, हमारे गाँव में एक श्री अरविंद पथमंदिर था और वहाँ के सदस्य और भक्त आम लोगों की तरह कपड़े पहनते थे। इसके अलावा, मैंने किताबों में श्री अरविंद के आदर्शों के बारे में पढ़ा था। पिछली बार जब मैं कलकत्ता आया था, तो मैंने आज़ाद हिंद पार्क के पास दीवार पर लगी पत्रिका में श्री अरविंद के कुछ शब्द पढ़े थे:

"अमृत का भरपूर सेवन करने के बाद भी, हमें सब कुछ एक साधारण मनुष्य की तरह ही करना चाहिए। हमारा लक्ष्य अपनी संपूर्ण प्रकृति का - अतिमानसिक पूर्णता का - रूपांतरण है। हमारा त्याग बाह्य नहीं, आंतरिक है। हम संसार का त्याग नहीं चाहते, हम कामना, अज्ञान और अहंकार का आंतरिक परित्याग चाहते हैं।"

यदि यही लक्ष्य हो तो मैं अपने कपड़े कैसे रंग सकता हूँ?

इसलिए मैंने नौकरी ढूँढ़नी शुरू कर दी। मैं अब बिना काम किए खाना नहीं खाना चाहता था। छत्रों से खाना लेने में मुझे शर्म आती थी। मेरा स्वभाव कर्मयोग की ओर है - कर्म के माध्यम से ईश्वर से मिलन। इसलिए मैं अपने भोजन के लिए काम करना चाहता था।

लेकिन यहाँ मुश्किल यह थी कि मैं वृंदावन में नया था। मुझे कोई जानता नहीं था, तो मुझे नौकरी कौन देता?

"खैर, खैर," मैंने सोचा, "जो भी काम मेरे सामने आएगा, मैं उसे करने की कोशिश करूंगा।"

ठीक उसी समय जब ये विचार मेरे मन में आ रहे थे, मिर्जापुर धर्मशाला के प्रबंधक की नज़र मुझ पर पड़ी, जब मैं साधुओं और भिखारियों के साथ कतार में खड़ा था। उन्होंने न केवल मुझे देखा, बल्कि मुझे एक बंगाली के रूप में पहचान लिया - उन्होंने देखा कि मुझे भीख माँगने में शर्म आ रही थी, हालाँकि मैं बहुत भूखा था।

उन्होंने सत्तर या अस्सी संन्यासियों और भिखारियों के उस पूरे समूह में से मुझे अलग किया और मुझसे हिंदी में पूछा:

"यह क्या है बंगाली? एक जवान आदमी खाना मांग रहा है? आओ, यहाँ कुछ काम क्यों नहीं करते?"

मैं तुरंत आगे बढ़ा और अपना उत्साह दिखाया:

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

133

"हाँ, सर! ज़रूर करूँगा! मुझे कुछ काम दे दीजिए।"

मैनेजर, जिनका नाम शर्माजी था, ने उत्तर दिया,

"ठीक है, मेरे साथ आओ।"

उन्होंने मुझे धर्मशाला के अंदर बुलाया। फिर दीवार पर लगी घड़ी की तरफ़ देखते हुए उन्होंने मुझसे पूछा,

"क्या काम कर सकते हो? अभी तो मार्केटिंग का समय है। क्या तुम बाज़ार जाकर सब्ज़ियाँ खरीद सकते हो?"

"हाँ, मैं कर सकता हूँ," मैंने जवाब दिया, "लेकिन मुझे वर्तमान कीमतें नहीं पता हैं।"

"ठीक है, मेरे साथ आओ। साथ-साथ चलते हैं," उसने कहा।

और हम चल पड़े। मैंने खाली थैले उठाए और मैनेजर ने उनमें सब्ज़ियाँ भर दीं। फिर हम भरे हुए थैलों के साथ छत्र पर लौट आए।

वहाँ मैनेजर ने थैलियाँ खोलीं, अपने इस्तेमाल के लिए कुछ चीज़ें निकालीं और बाकी अगले दिन पकाने के लिए छत्र रसोई में दे दीं। उन्होंने मुझे सब्ज़ियों का एक अलग छोटा थैला दिया और दूसरे कमरे की ओर इशारा किया,

"इसे वहाँ ले जाओ," उसने कहा, "सुमीता जी के पास। उनसे पूछो कि क्या उनके पास तुम्हारे लिए कोई काम है।"

सुमिता जी छत्र के मुख्य द्वार के पास दो बड़े कमरों में रहती थीं। उनके साथ उनकी छह-सात साल की एक बेटी राधा भी थी। उन्होंने अपनी खिड़की से सब कुछ देख लिया था। जैसे ही मैं कमरे में दाखिल हुआ, उन्होंने मुझसे सब्ज़ी का थैला ले लिया और पूछा,

"क्या आप घर का काम कर सकते हैं?"

मैंने उससे कहा, "मुझे इसके बारे में थोड़ा बहुत पता है।"

"अच्छा। पहले सब्ज़ियाँ काट लो। तुम्हें बाज़ार से आने में इतनी देर हो गई है - मुझे खाना बनाने का समय कैसे मिलेगा?"

जब मैं पालक के पत्ते काटने लगा, तो छोटी राधा देख रही थी। उसने अपनी माँ से कहा,

"देखो मम्मी, मुझे भी ऐसी ही कुछ सब्ज़ियाँ काटने दो।"

"अरे नहीं," उसकी माँ ने जवाब दिया। "राधा, मेरे साथ यहाँ आओ।" और वह कमरे से बाहर चली गईं।

लेकिन राधा अपनी माँ के साथ नहीं गई। वह वहीं रुकी और मेरे साथ सब्ज़ियाँ काटने लगी। हालाँकि मैं उसके लिए अजनबी था, फिर भी वह शरमाई नहीं और मुझसे सवाल पूछने लगी:

"आप कहां रह रहे हैं?" उसने पूछा।

मैंने उससे कहा, "मैं यहीं धर्मशाला में रह रहा हूं।"

134

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

"लेकिन मैंने तुम्हें पहले कभी नहीं देखा," उसने टिप्पणी remarked.do।

मैं उसे बताने ही वाला था कि मैंने उसे पहले कभी नहीं देखा, तभी उसकी माँ कमरे में वापस आ गईं। उन्होंने देखा कि मैं कैसे सब्ज़ियाँ काट रहा हूँ और बोलीं, "म..."

"अरे नहीं, इस तरह नहीं। यह सही नहीं है।" और उसने आलू मुझसे छीन लिए। "क्या तुम्हें इन आलूओं को छीलना आता है?"

"हाँ," मैंने जवाब दिया, "मैं करता हूँ।"

उसने मुझे आलू दिए और रसोई में चली गई। और मैं उन्हें छीलने लगी। नन्ही राधा भी मेरी मदद कर रही थी, अपने नन्हे नाखूनों से उन्हें छील रही थी। वह देख रही थी कि मैं क्या कर रही हूँ। "अरे नहीं," उसने कहा, "जैसे मैं करती हूँ, वैसे ही करो" - और उसने मेरा हाथ कटर से खींच लिया; इस प्रक्रिया में मेरा हाथ कट गया!
राधा ने आवाज़ लगाई, "मम्मी, मम्मी, जल्दी आओ! आलू की जगह हाथ कट गया है!"
"किसका हाथ कटा है? तुम वहाँ क्यों हो?" सुमिताजी रसोई से जल्दी से आती हुई चिल्लाईं।
"ओह, कुछ नहीं," मैंने जवाब दिया, "बस थोड़ा सा कट गया है।"
"नहीं, बस रहने दो! और क्या ये तुम्हारा आलू छीलना है?"
तुम किसी काम के नहीं हो। मैं शर्माजी से कह दूँगा कि तुम्हारी मदद की कोई ज़रूरत नहीं है।"
मैं भयभीत हो गया और बोला,
"नहीं, नहीं, शर्माजी को मत बताना। फिर तो वह मेरी सेवाएँ तुरन्त ही समाप्त कर देंगे!"
"नहीं! मुझे उससे कहना होगा कि वह तुम्हें नौकरी से निकाल दे - तुम मेरा क्या काम करोगे?"
लेकिन बोलते हुए, वह खुद को हँसने से रोकने की कोशिश कर रही थी। पहले तो मुझे डर लगा; लेकिन जब मैंने उसकी मुस्कान देखी जिसे वह छुपाने की कोशिश कर रही थी, तो मुझे लगा कि वह जो हुआ उसके बारे में कुछ नहीं कहेगी।
"तो फिर मुझे कोई और काम दे दो," मैंने कहा।
"कैसा काम? क्या तुम खाना बनाना जानते हो?" उसने पूछा।
"हाँ, मैं आलू और साग भून सकती हूँ - और हाँ, मैं पटोल सूप भी बना सकती हूँ।" "क्या कहा तुमने? पटोल सूप?"
"हाँ, यह हमारे बंगाल में बहुत लोकप्रिय है। मैं इलायची, लौंग और दालचीनी के साथ बढ़िया पटोल सूप बना सकती हूँ। मैंने यह यहाँ आते समय, कलकत्ता मेस में सीखा।"
"लेकिन मैं वृंदावन में आपके लिए पटोल कहां से लाऊं? मुझे राहत दीजिए,

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार
135

तुम्हें मेरे लिए खाना बनाने की ज़रूरत नहीं है! बेहतर होगा कि तुम जो कर सकते हो, करो...."

यह कहकर उसने एक थाली में दो रोटियाँ और एक टुकड़ा गुड़ निकाला और मेरे सामने रख दिया। उसने कहा,

"छत्र की रसोई में तुम्हें खाना मिलेगा; यह तुम्हारे जलपान के लिए है। इसे ले लो और फिर शर्माजी से कहो कि तुमने सुमिताजी का काम निपटा दिया है।"

अपना काम पूरा करके मैं इतना निश्चिंत था कि मेरे अंदर एक गहरी खुशी उमड़ पड़ी। उस समय कुछ खा पाने में असमर्थ होने के कारण, मैंने खाना उठाया और जाने लगा।

"रुको," उसने मुझे आवाज़ दी। "सुनो, सिर्फ़ इसलिए कि मैंने तुम्हें अभी जाने दिया है, इसका मतलब ये नहीं कि सारा काम ख़त्म हो गया। शाम से पहले आ जाना - तब मेरे पास तुम्हारे लिए एक ख़ास काम है।"

"ठीक है" मैंने उत्तर दिया और छत्र के रसोईघर में चला गया।

छत्र के दो कर्मचारी तो बस इसी पल का इंतज़ार कर रहे थे। जैसे ही मैं रसोई में दाखिल हुआ, वे दौड़कर आए और मुझे बधाई दी, मानो मैं कोई बड़ी लड़ाई जीतकर लौटा हूँ। वे चिल्लाए,

"आओ, अरे आओ, बंगाली! हमसे हाथ मिलाओ!"

मैंने जवाब दिया, "मैं अनावश्यक रूप से हाथ क्यों मिलाऊं?"

उन्होंने कहा, "क्योंकि तुम्हारा भाग्य बहुत अच्छा है, भाई!"

फिर भी मैं अनिच्छुक था, और उनसे हाथ मिलाने में देरी कर रहा था:

"यह सब शोर-शराबा क्यों है? तुम्हें मेरी किस्मत अच्छी क्यों लगती है? तुम मुझसे हाथ क्यों मिलाना चाहते हो?"

तभी उनमें से एक ने मेरा हाथ पकड़ लिया और इतनी जोर से मरोड़ा कि मैं दर्द से चिल्ला उठा।

"आउच! कृपया मेरा हाथ छोड़ दो! तुम इसे तोड़ दोगे!"

"क्या?" उसने मुझे ताना मारा, "बंगाली का हाथ इतना मुलायम है कि ज़रा सा दबाने से टूट जाएगा?"

इस समय तक दूसरे साथी ने मेरा दूसरा हाथ पकड़ लिया था और वह चिल्लाया:

अरे देखो! इसे तो रोटी भी मिल रही है! अरे, अरे, अरे! इसीलिए तो हाथ छुपा रहा है!"

अपनी शर्मिंदगी छुपाने के लिए मैंने गुस्सा होने का नाटक किया:

"इसमें क्या ग़लत है? मैंने शर्माजी के लिए कुछ काम किया है - क्या वह इसके बदले मुझे दो ब्रेड के टुकड़े नहीं दे सकते?"

136

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

"लेकिन ये आपको शर्माजी ने नहीं दिए। किसी और ने दिए हैं - क्या यह सच नहीं है?"

"सब एक ही है - क्या अंतर है?" मैंने पूछा।

"आओ, आओ, परेशान मत हो," उन्होंने मुझे चिढ़ाते हुए कहा। बस पूछ रहे थे। ठीक है। काम के लिए रोटी तो समझ में आती है - लेकिन सुमिताजी ने तुम्हें शाम को फिर मिलने के लिए नहीं कहा था?"

"हाँ," मैंने स्वीकार किया। "मुझे आज शाम उससे मिलने के लिए कहा गया है। लेकिन क्यों? वह मुझे क्या काम देगी?"

"अरे, काम की चिंता करने की कोई ज़रूरत नहीं! वो जो भी काम देगी, तुम बहुत अच्छे से करोगे।"

"तो फिर तुम क्यों हंस रहे हो?"

"हम तुम्हारी किस्मत पर हँस रहे हैं!" उन्होंने समझाया। "जब से तुम आए हो, शर्माजी तुम्हें खास तवज्जो दे रहे हैं। तुम उनके चहेते, उनके लाडले बन गए हो। उन्होंने फौरन तुम्हें अपने निजी कमरों में काम करने को दे दिया। हमें कभी छोटे-मोटे काम के लिए भी वहाँ नहीं भेजा गया। बल्कि वो हम पर बहुत कड़ी नज़र रखते हैं।"

मैंने पूछा, "वह तुम्हें इतनी सावधानी से क्यों देखता है?"

"क्योंकि वह अपनी तीसरी पत्नी को वहाँ रखता है।"

"यह तो बेतुका है! क्या बात कर रहे हो? तुम्हारा मतलब है कि सुमिता जी, जिनका काम मैंने किया था, शर्मा जी की पत्नी हैं? उनकी उम्र और शर्मा जी की उम्र में कम से कम चालीस साल का फ़र्क़ है!"

"सच है भाई। सुमिता जी शर्मा जी की पत्नी हैं। ज़रा यहाँ मुंशी जी से पूछ लो कि सच है या झूठ....."

दूसरे व्यक्ति, मुंशी ने पूरी बात की पुष्टि की:

"हाँ, बंगाली!" इसीलिए शर्माजी उसका इतना ध्यान रखते हैं। मैं हमारे मैनेजर, शर्माजी के बॉस, का निजी सचिव हूँ और अक्सर उनके घर जाता हूँ जहाँ उनकी पत्नी मुझसे बात करती हैं और कई फैसलों पर चर्चा करती हैं। लेकिन शर्माजी को मुझ पर

भी भरोसा नहीं है। फिर भी, उन्होंने मुझे अगले महीने से अपनी बेटी राधा को ट्यूशन पढ़ाने के लिए कहा है। क्या यह थोड़ा अजीब नहीं है?"

"अजीब क्यों है?" मैंने पूछा.

"अजीब बात है, बंगाली," उसने जवाब दिया, "क्योंकि पिछले दो सालों से वह मुझसे कह रहा है: 'राधा को थोड़ा बड़ा हो जाने दो, फिर तुम उसके प्राइवेट ट्यूटर बनोगे। तुमने मिडिल स्कूल का कोर्स पूरा करने के बाद अपनी पढ़ाई क्यों छोड़ दी? फिर से पढ़ाई शुरू करो, मैं तुम्हारी मदद करूँगा - तुम्हारे लिए मुफ़्त बोर्डिंग का इंतज़ाम करूँगा।'

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

137

छत्र में, संस्कृत अकादमियों के छात्रों की तरह। मैं तुम्हारा कुछ खर्च भी दूँगा। अपनी पढ़ाई फिर से शुरू करो। क्या तुम बूढ़े हो गए हो? क्या फ़र्क़ पड़ता है? सीखने की कोई उम्र सीमा होती है? निजी तौर पर पढ़ाई करो और कम से कम स्कूल की अंतिम परीक्षा पास करो। क्या तुम्हें अपनी माँ की कठिन परिस्थितियों का अंदाज़ा नहीं है?"......"

"लेकिन शर्माजी तुम्हारे भले के बारे में सोच रहे हैं। तुम फिर से पढ़ाई शुरू कर दो - यह तुम्हारे लिए अच्छा होगा," मैंने कहा।

"अरे नहीं! बिल्कुल नहीं!" उसने पलटकर जवाब दिया, "वो बस बातें कर रहा है। उसका ऐसा कोई इरादा नहीं है। ये बस मेरा चरित्र सुधारने और मुझे काबू में रखने की एक चाल है ताकि मैं उसके निजी क्वार्टर में घुसकर उसे परेशान न करूँ! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इसके पीछे क्या है। मैं बेवकूफ़ नहीं हूँ। रुको और खुद ही देख लो। वैसे, तुम तो सुमिता जी के पास काफ़ी समय तक काम कर चुके हो... लेकिन क्या शर्मा जी तुम्हारे साथ थे?" उसने पूछा।

"नहीं," मैंने जवाब दिया। "वह वहाँ नहीं था। वह किसी और काम से गया है।"

"तो आप मेरे केस को समझ सकते हैं," उसने जवाब दिया। "जब हम अंदर जाएँगे, तो शर्माजी हमारे साथ ही रहेंगे। सोचिए, कितना अजीब होगा? कितने बदतमीज़ होंगे वो?"

मुझे उसे सांत्वना देने के लिए कुछ भी नहीं सूझा। मैंने सोचा कि शायद उसकी शिकायत बेबुनियाद न हो। अगर वह शर्माजी की तीसरी पत्नी थी, तो उसे इन मामलों में थोड़ा सतर्क रहने की ज़रूरत होगी।

"भाई, तुम्हारा मैनेजर कौन है? वह कहाँ रहता है?" मैंने मुंशी से पूछा।

"तुम बहुत दिनों से इस छत्र पर आ रहे हो - क्या तुम्हें पता नहीं असली मैनेजर कौन है?" उसने पूछा। "शर्माजी नहीं हैं। वो मैनेजर के असिस्टेंट हैं। वो भी हमारी तरह तनख्वाह पर हैं। असली मैनेजर ऊपर अपनी पत्नी के साथ रहते हैं, और हम उन्हें बहुत कम देखते हैं। उनसे मिलना बहुत मुश्किल है।"

"तो फिर आप दोनों असल में मैनेजर के लिए काम कर रहे हैं, शर्माजी के लिए नहीं?" मैंने उनसे पूछा।

मुंशी ने कहा, "नहीं। मैं तो मैनेजर के यहाँ काम करता हूँ, और यह देवधर शर्माजी के छत्र में काम करता है। एक और आदमी था - बंदर के काटने से उसका हाथ सड़ गया था। वह बेचारा घर चला गया है, और उसकी जगह तुम्हें नियुक्त कर दिया गया है।"

तब देवधर ने मुझसे पूछा, "क्या आप स्थायी रूप से यहीं रहेंगे, या

138

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

बस कुछ दिनों के लिए?"

"अरे नहीं, मैं यहीं रहूँगा। मैं यहाँ से जाने की योजना नहीं बना रहा हूँ," मैंने जवाब दिया।

"सच में, क्या तुम यही कह रहे हो? अपनी बात रखो!" उसने कहा।

"हाँ," मैंने जवाब दिया, मैं अपनी बात रखूँगा। लेकिन अगर वह पुराना कर्मचारी वापस आ गया, तो क्या मुझे जाना नहीं पड़ेगा?"

"वह वापस नहीं आएगा। तुम्हें चिंता करने की ज़रूरत नहीं है।"

मैंने कहा, "वैसे भी कोई सुरक्षा नहीं है। मैंने शर्माजी के साथ कोई स्थायी काम का अनुबंध नहीं किया है। खैर, हमने यहाँ इतनी देर तक बातें कीं... शर्माजी मुझे और काम देने क्यों नहीं आए?"

मुंशी जी को किसी काम से बुला लिया गया और वे हमें छोड़कर चले गए। देवधर ने मेरे प्रश्न का उत्तर दिया:

"शर्माजी ने मुझसे कहा था कि तुम मेरे साथ काम करोगे। अब तुम पूरी धर्मशाला और उसके आँगन को अच्छी तरह साफ़ कर दो। क्या तुम बगीचे में रखे टब से पानी खींचकर यहाँ ला सकोगे?"

मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि मुझे पूरी धर्मशाला साफ़ करनी थी। वह वाकई बहुत बड़ी जगह थी और उसे पानी की ज़रूरत होगी।

धर्मशाला का कोर्ड कर्मचारी जिम्मेदार नहीं होगा

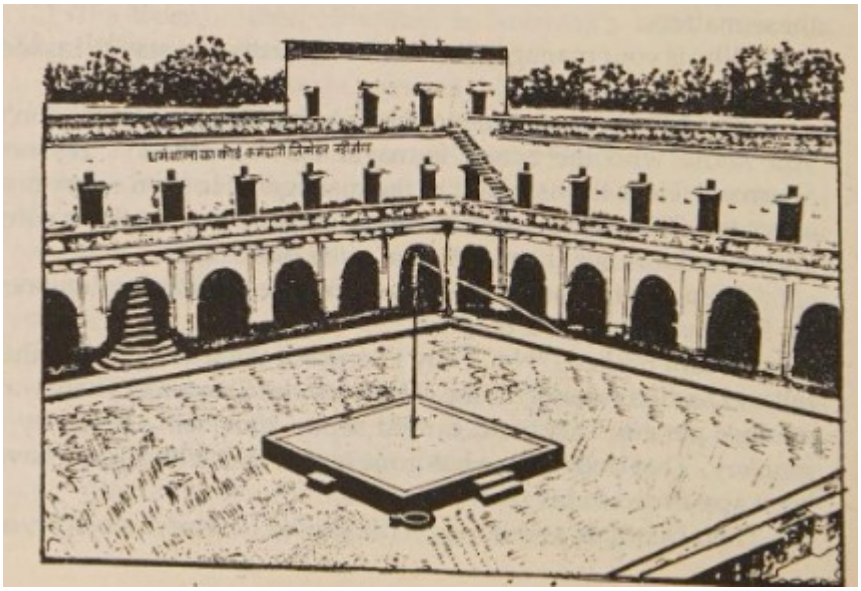

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

139

पूरे तालाब को साफ़ करने के लिए पानी की एक बूँद भी नहीं डाली गई। घर के बीचों- बीच आँगन दो फुटबॉल मैदानों जितना बड़ा था। और उस आँगन के चारों ओर दो मंज़िला इमारतें थीं। ऊपर और नीचे दोनों तरफ़ एक विशाल लंबा बरामदा था। तो क्या थोड़ा सा पानी इतने सारे कमरों और इमारतों के साथ-साथ आँगन को भी धोने के लिए काफ़ी होगा?

सच तो यह है कि जब तक कोई अपनी आँखों से न देखे, कोई भी इस वर्णन को पढ़कर या किसी किताब के पन्ने पर उसकी तस्वीर देखकर, मिर्ज़ापुर धर्मशाला के विशाल आकार और स्वरूप का सौवाँ हिस्सा भी अंदाज़ा नहीं लगा सकता। लेकिन क्या हर कोई वृंदावन जा सकता है - या तो अपना पैसा खर्च करके या मेरी तरह बिना टिकट यात्रा करके? बस इसीलिए, मैं अपने हर पाठक को वृंदावन जाने के लिए पैसे देना चाहता हूँ! वे उस धर्मशाला के विशाल आकार को अपनी आँखों से देखें। उस धर्मशाला का आकार देखने के लिए वृंदावन की यात्रा वाकई सार्थक है!

लेकिन कृपया यह न सोचें कि मैं आप सभी को अपने खर्चे पर वृंदावन सिर्फ़ इसलिए भेजना चाहता हूँ ताकि आपको दिखा सकूँ कि उस दिन उस विशाल धर्मशाला की सफ़ाई में मुझे कितनी मेहनत करनी पड़ी थी! नहीं, महोदय! यह कारण नहीं है। लेकिन ज़रा सोचिए, बहुत से अमीर लोग हैं... लेकिन कितने लोग कलकत्ता के एस्प्लेनेड के चारों ओर एक महल बनवा सकते हैं? तो इस आधुनिक, कंजूस और कंजूस कल्पना के युग में, इतना विशाल और गगनचुंबी भवन देखकर सचमुच आश्चर्य होता है - कोई भी इसे दूसरों को ज़रूर दिखाना चाहेगा! इसीलिए मैं इस पर इतना ज़ोर देता हूँ।

लेकिन कारण जो भी हो, जब मैंने सुना कि मुझे इतना कुछ धोना पड़ेगा, तो मैंने देवधर से कहा,

"अच्छा, क्या आपके पास सभी कमरों और आँगन को धोने के लिए पर्याप्त पानी है? क्या एक टब पानी पर्याप्त होगा?"

देवधर ने कहा, "हाँ, यह पर्याप्त होगा। और यदि यह पर्याप्त नहीं है, तो मैं पंप चालू कर दूँगा; जमीन के नीचे से बहुत सारा पानी निकल आएगा।"

लेकिन जब मैंने सुना कि पानी की कोई समस्या नहीं है, तब भी मुझमें कोई उत्साह नहीं था।

मैंने देवधर से कहा, "इतनी जल्दी क्यों है? क्या कोई ज़रूरत है?"

140

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

इतनी जल्दी क्यों? आधा काम आज और आधा कल करने के बारे में क्या ख्याल है?

"नहीं भाई," देवधर ने कहा, "ऐसा नहीं चलेगा। शर्माजी का हुक्म है कि आज ही सारा इलाका साफ़ कर दिया जाए, क्योंकि यहाँ एक मीटिंग है। दो-तीन दिन में बहुत से लोग आने लगेंगे।"

"कैसी मीटिंग?" मैंने उससे पूछा। "और ये सब कहाँ से आएंगे?"

"यह जनसंघ की बैठक है," उन्होंने कहा। "उत्तर भारत से - पंजाब, दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि - सभी सदस्य पैदल मार्च करते हुए इसी धर्मशाला में आएंगे।"

मैंने पूछा, "क्या बंगाल से भी कोई सदस्य आएगा?"

देवधर ने आश्चर्य से मेरी ओर देखा, "वे कैसे आ सकते हैं? यह उत्तर भारतीयों की बैठक है। बंगाल इसमें शामिल नहीं है।"

"ओह, सचमुच?" मैंने पूछा।

"अगर बंगाली सदस्य आएँ, तो वे कहाँ ठहरेंगे? यहाँ सबके लिए पर्याप्त कमरे नहीं हैं," उन्होंने कहा। "अकेले उत्तर भारतीय समूह में ही आठ-दस हज़ार सदस्य हैं - तो आप समझ सकते हैं कि उन्हें क्यों शामिल नहीं किया गया है। और इन नए लोगों के आने की वजह से, इस इलाके की सफ़ाई आज ही करनी होगी। तो चलो, जैसे भी हो, काम निपटाते हैं। तुम पानी लाओ, मैं डाल दूँगा।"

तो दोपहर के भोजन के बाद हम शुरू हुए।

मैंने धर्मशाला के तालाब से पानी की दो बड़ी बाल्टियाँ भरीं और उन्हें दोनों हाथों में लेकर देवधर के पास ले गया; उसने भरी हुई बाल्टियाँ अपने सिर के ऊपर

उठाईं और पल भर में सारा पानी चारों ओर छिड़क दिया और दोनों बाल्टियाँ खाली कर दीं। उसने दो सेकंड में अपना काम पूरा कर लिया। फिर वह बैठ गया और मेरे दोबारा पानी लाने का इंतज़ार करने लगा।

देवधर महाराष्ट्रीयन था; उसका शरीर बिल्कुल पहलवान जैसा था: चौड़ी छाती, गठीली जांघें और मांसपेशियाँ - उसके बाइसेप्स और ट्राइसेप्स देखने लायक थे! इस तरह का काम उसके लिए किसी खेल जैसा था। और, इसके अलावा, उसने सही काम चुना था। मुझे जो पानी लाने में दस-पंद्रह मिनट लगते थे, वह दो सेकंड में ही खाली कर देता था - उसके बाद उसे बस बैठकर इंतज़ार करना होता था। मैं उसके साथ कदमताल नहीं कर पा रहा था - और जल्द ही मैं थक गया। मेरे हाथ-पैर भारी लग रहे थे और कीचड़ में फँसे हुए थे। पर मैंने कुछ नहीं कहा। बाद में

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

141

खैर, यह नौकरी पर मेरा पहला दिन था - वे क्या सोचेंगे? कि मैं काम के लायक नहीं हूँ?

लग रहा था कि काम कभी खत्म ही नहीं होगा। पूरी दोपहर काम करने के बाद, हमने सिर्फ़ आँगन और एक बरामदा साफ़ किया था। चाँदनी रात थी; ऊपर से बिजली की रोशनी भी थी... देवधर ने देर रात तक काम करने की बात कही थी। मेरे हाथ-पैर इतने दर्द कर रहे थे कि मैं हिल भी नहीं पा रहा था, फिर भी मैं मना नहीं कर सका। मैंने बस भगवान से यही प्रार्थना की कि कोई तो हो जो मुझे बचा ले।

और तभी अचानक सुमिताजी साक्षात कृपा की तरह प्रकट हुईं!

"बंगाली!" उसने पुकारा, "क्या तुम्हें याद नहीं कि मैंने तुम्हें दोपहर में फिर आने को कहा था? क्या तुम भूल गए?"

"नहीं मैडम," मैंने जवाब दिया, 'लेकिन मैं क्या कर सकता था? मैं इस सफ़ाई में इतना व्यस्त था कि जा ही नहीं सकता था। जब तक पूरी धर्मशाला धुल न जाए, मैं यहाँ से नहीं जा सकता।"

"यह सब छोड़ो," उसने आज्ञाकारी स्वर में कहा, "और मेरे साथ आओ!"

मैं तुरंत वहाँ गया। देवधर आपत्ति करने ही वाला था कि तभी उसने सुमिताजी का आदेश सुना। दूसरा युवक, मुंशी, भी बरामदे में खड़ा होकर यह तमाशा देखने नीचे आ गया था। हम उन दोनों के पास से सीधे आगे बढ़े और धर्मशाला के पीछे वाले बगीचे की ओर बढ़ गए।

जैसे ही हम आगे बढ़े, सुमिताजी ने मुझे मधुर स्वर में संबोधित करना शुरू किया:

"क्या वे तुम्हें कड़ी मेहनत करवा रहे हैं?" उसने पूछा। "जब कोई नया आदमी आता है, तो उससे हमेशा इसी तरह काम करवाया जाता है। शर्माजी ने उन्हें सारा काम तुम्हें देने के लिए नहीं कहा था। मैंने उन्हें यह कहते सुना था कि सारा काम करवाने के लिए बाहर से कुछ और लोगों को लगा दो।"

इससे मेरा हौसला बढ़ा और मैं बोला, "मुझे नहीं पता था। उन्होंने तो बताया था कि शर्माजी ने मुझे ये सब करने को कहा है।"
"यही देवधर की चाल है," उसने कहा। "यदि आप बैठक के दौरान केवल दो दिन तक इसे सहन कर सकें, तो यह सब अपने आप हल हो जाएगा - बैठक के बाद करने के लिए कुछ नहीं बचेगा।"
"सुनो, मुझे काम से डर नहीं लगता," मैंने उससे कहा। "मैंने कुछ भी करने का मन बना लिया है - बस मुझे अकेले काम करना है। प्लीज़ बताओ।"
142
वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार
शर्माजी से कहा कि मैं यहीं रहूंगा और चाहूंगा कि मुझे अस्थायी काम नहीं, बल्कि निरंतर काम दिया जाए।
"मैं कोशिश करूंगी," उसने संक्षेप में कहा, और फिर मुझसे पूछने लगी:
"क्या आप जानते हैं कि हम कहाँ जा रहे हैं?"
"हाँ" मैंने उत्तर दिया।
"कहाँ?" उसने पूछा.
"मंदिर में," मैंने कहा।

"आप कैसे जानते हो?"

"पूजा की सामग्री - शंख, घंटी, बर्तन आदि के कारण,

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

143

"आप जो ले जा रहे हैं," मैंने जवाब दिया। "मैंने तो बस यही सोचा था कि आप किसी मंदिर में पूजा करने जा रहे हैं।"

"हाँ, तुमने सही अनुमान लगाया," उसने कहा। "यहाँ वृंदावन में बहुत सारे बंदर हैं, और वे अक्सर आकर हमारे हाथों से फूल और फल-प्रसाद छीन लेते हैं। इसीलिए मैंने तुमसे मेरे साथ चलने का अनुरोध किया था।"

"आह!" मैंने कहा। "समझ गया। वृंदावन में अपने पहले ही दिन मैं भी स्थानीय बंदरों से मिला था। भारत सेवाश्रम में जब मैं खाना खाने बैठा, तो एक बंदर कहीं से प्रकट हुआ, मेरी थाली से मुट्ठी भर चावल छीनकर पल भर में गायब हो गया! इन बंदरों की बेशर्मी वाकई लाजवाब है!"

"यह कोई साधारण बेशर्मी नहीं है," उसने जवाब दिया। "उन्हें ज़रा भी डर नहीं है। वे आदमियों से लड़ते हैं और उनके हाथ से खाना छीन लेते हैं—छोटे बच्चों को छीन लेते हैं और उन्हें लेकर पेड़ों पर चढ़ जाते हैं। क्या तुमने पहले कभी ऐसा कुछ सुना है? तो क्या तुम मेरे मंदिर के चढ़ावे को उन बदमाशों से बचा पाओगे?" उसने मुझसे पूछा।

"हाँ," मैंने कहा, "मैं आपकी रक्षा कर सकता हूँ।"

"तो फिर एक बड़ी छड़ी ढूँढ़ो और उसे अपने साथ ले जाओ," उसने मुझसे कहा। "यही एक चीज़ है जो उन्हें दूर रखेगी।"

जब वह इंतज़ार कर रही थी, मैं धर्मशाला की रसोई में गया और एक बड़ी छड़ी ढूँढ़कर अपने साथ ले गया। फिर मैं उसके पीछे मंदिर चला गया।

जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते गए, हमने देखा कि कई बंदर पेड़ों से हमारी ओर देख रहे थे, लेकिन बड़ी छड़ी के कारण वे और करीब आने की हिम्मत नहीं कर पा रहे थे।

उस भव्य इमारत में एक उतना ही शानदार बगीचा था... महज़ एक बगीचा नहीं, बल्कि एक पूरा जंगल। मैं उन विशाल वृक्षों और उनके हरे-भरे पत्तों को देखकर दंग रह गया। इन घनी झाड़ियों वाले वृक्षों की छाया इतनी गहरी थी कि दोपहर अचानक शाम में बदल गई। जैसे ही हम उनके बीच से गुज़रे, ऐसा लगा जैसे रास्ता सिर के घने बालों के बीच एक पतली सी दरार हो। हम उसके बीच में डूब गए। आख़िरकार हम एक खुले मैदान में पहुँच गए। हमारे ठीक सामने एक छोटा सा मंदिर था, जिसके एक तरफ़ एक छोटा सा तालाब था। दूसरी तरफ़ रोज़ाना पूजा में इस्तेमाल होने वाले फूलों वाले वृक्षों - बेल, चमेली, तोगर वगैरह - का एक घना उपवन था।

144

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

सुमिता जी अपनी पूजा के लिए फूल लेने वहाँ गईं, जबकि मैं उसी काम के लिए तालाब से पानी भर रहा था। फिर उन्होंने मंदिर का द्वार खोला और अंदर चली गईं। वे एक घंटा और एक लकड़ी का हथौड़ा लेकर वापस आईं और मुझे दे दीं। उन्होंने कहा, "पूजा के दौरान खाली नहीं बैठना चाहिए। जब मैं दीप जलाकर और शंख व घंटी बजाकर देवता का अभिवादन करूँ, तो तुम घंटा बजाना।"

"ठीक है" मैंने उनसे वे चीजें लेते हुए कहा।

"क्या तुम जानते हो कि इसे कैसे हराया जाता है?" सुमिताजी ने मुझसे पूछा।

"क्या इसकी कोई विशेष विधि है?"

"हाँ- अगर आप इसे लापरवाही से पीटेंगे, तो इसकी आवाज़ वैसी नहीं निकलेगी जैसी आनी चाहिए। पहले हथौड़े को घंटे के बाईं ओर, फिर दाईं ओर और आखिर में नीचे की ओर छुएँ। अगर आप ऐसा करेंगे, तो 'राधे श्याम' की ध्वनि निकलेगी।"

"सच में?" मैंने पूछा। "राधेश्याम की आवाज़ आएगी?" "कोशिश करके देखो," उसने कहा। "लेकिन याद रखना, अगर ग़लत तरीक़े से मारा तो नहीं आएगा।"

"अरे नहीं, मैं आपके निर्देशों का पालन करूंगा," मैंने उससे कहा

मैं घंटा लेकर मंदिर के द्वार के बाहर खड़ा हो गया, यह सोचते हुए कि क्या मुझे मनचाहा फल मिल पाएगा। सुमिताजी मंदिर के फर्श पर ध्यान की चटाई पर बैठीं और पुजारियों की तरह कई अनुष्ठान कर रही थीं। ये सभी अनुष्ठान पूरे होने पर उन्होंने पंच प्रदीप जलाया - जिसमें पाँच ज्वालाएँ थीं - और एक हाथ से भगवान के सामने उसकी परिक्रमा की और दूसरे हाथ से घंटी बजाई।

उसी समय मैंने निर्देशानुसार घंटा बजाया, पहले बाईं ओर, फिर दाईं ओर और फिर नीचे; और निश्चित रूप से, बार-बार 'रा-धे-श्याम' की ध्वनि सुनाई दी। बाईं ओर बजाने पर घंटा 'रा', दाईं ओर बजाने पर 'धे' और नीचे बजाने पर 'श्याम' की ध्वनि सुनाई दी।

मुझे अपने कानों पर यकीन ही नहीं हो रहा था। बार-बार वही आवाज़ सुनाई दे रही थी जो उसने कही थी। मैंने तरह-तरह से कोई और आवाज़ सुनने की कोशिश की, कभी संशय से,

कभी बेसुध होकर, अक्सर ध्वनियों का अर्थ समझने वाले दिमाग़ को शांत करते हुए - लेकिन बार-बार सिर्फ़ 'राधे श्याम' ही सुनाई दिया!

और कैसी मनमोहक ध्वनि थी, जिसने दिल और दिमाग को भर दिया! मैं समझ नहीं पा रहा था कि ये कैसे हुआ, पर मैं महसूस कर सकता था कि

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

ध्वनि मेरे दिल के भीतर कुछ गहरी भावना जागृत.

145

मुझे अपने गाँव में काली और दुर्गा पूजा के दौरान बजने वाले एक ऐसे ही घंटे की याद आ गई। लेकिन वहाँ नतीजा बिल्कुल अलग था; माहौल में किसी तरह का फ़र्क़ था... या फिर यह 'उस जगह की शान' थी?

खैर, जब पूजा पूरी हो गई, तो सुमिताजी पूजा का सामान लेकर बाहर आईं और मंदिर का दरवाजा बंद कर दिया।

मैंने उससे पूछा, "क्या तुम्हारे पास मेरे लिए थोड़ा सा प्रसाद नहीं है?"

"जब हम घर पहुंचेंगे तो मैं तुम्हें कुछ दे दूंगी," उसने जवाब दिया।

मैंने उससे कहा, "मैं यहीं आंगन में प्रसाद लेना पसंद करूंगा।"

"ठीक है," उन्होंने कहा और मुझे प्रसाद के रूप में एक दूध वाली मिठाई, संदेश, दी।
जैसे ही मैंने उसे मुँह में डाला, मैंने देखा कि इससे वह किसी तरह बहुत खुश हो गई थीं।

फिर हम वापस चल पड़े। सुमिता जी हमें अंधेरे जंगल से होते हुए रास्ता दिखा रही थीं, उनके हाथ में पूजा की सामग्री थी: शंख, झांझ, घंटी, पंचदीपक और अन्य चीज़ें। मैंने उनसे पूछा,

"तुम ये चीज़ें अपने साथ घर क्यों ले जा रहे हो? क्या तुम कल फिर से इनका इस्तेमाल नहीं करोगे?"

"हाँ," उसने कहा, "लेकिन उन्हें साफ़ करना ज़रूरी है और यहाँ ऐसा करने की कोई सुविधा नहीं है।"

"तो फिर इन्हें मुझे दे दो," मैंने कहा। "मैं इन्हें ले जाऊँगा।"

जैसे ही मैंने बात की, मैंने अपना हाथ बढ़ाया, और वह खुशी-खुशी घंटी मुझे देने ही वाली थी; लेकिन घंटी सीमेंट के रास्ते पर गिर गई, और मेरा दुर्भाग्य ऐसा था कि अंदर का घंटी बजाने वाला उपकरण अलग हो गया।

"अरे नहीं!" वह चिल्लाई। "तुमने इसे तोड़ दिया!"

मैंने जल्दी से घंटी के दो टूटे हुए हिस्सों को उठाया और कहा, "चिंता मत करो, मैं इसे ठीक करवा दूंगा... इसे तार से जोड़ा जा सकता है ताकि यह फिर से काम करने लगे।"

लेकिन सुमिताजी बेचैन थीं, गुस्से से मांग कर रही थीं,

"तुमने इसे मुझसे पहले ही क्यों छीन लिया? मैंने तुम्हें ऐसा करने के लिए नहीं कहा था। तुम इतने दुस्साहसी कैसे हो सकते हो? वह विशालकाय देवधर भी मेरे पास आते समय डर के मारे दुबक जाता है। वह कभी मेरे हाथों से चीजें लेने की हिम्मत नहीं करता। वह तब तक इंतजार करता जब तक मैं उन्हें नीचे नहीं रख देता! और तुमने उन्हें मेरे हाथों से छीन लिया! बस इतना ही है क्या?"

146

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

आपके मन में मेरे लिए सम्मान है?"

"मुझे इन सारी औपचारिकताओं का पालन क्यों करना चाहिए?" मैंने उससे पूछा। "मैं तुम्हें सिर्फ़ एक औरत या शर्माजी की पत्नी के रूप में नहीं देखती। नहीं, मैं तुम्हें एक 'ब्रजांगना' के रूप में देखती हूँ - श्रीकृष्ण की गोपियों में से एक के रूप में!"

"तुमने मुझे क्या कहा? मैं क्या हूँ?"

"एक ब्रजांगना... आप एक ब्रजांगना हैं।"

"सचमुच? मैं ब्रजांगना हूँ?" - और वह जोर से हंसने लगी।

सुमिता जी का मूड समझना मुश्किल था। अभी एक मिनट पहले तो वो बहुत गुस्से में थीं - और अब बेकाबू होकर हँस रही थीं।

"तुम ऐसे क्यों हँस रही हो?" मैंने उससे पूछा। "मैंने अभी-अभी एक किताब में ब्रजांगनाओं के बारे में पढ़ा था... उन प्रेमियों के बारे में जो श्रीकृष्ण के लिए चुपके से अपने निवास स्थान पर पहुँच जाते हैं। पर मुझे नहीं पता था कि असल में वह कैसा होता है। अब मुझे एक असली ब्रजांगना की संगिनी बनने का सौभाग्य मिला है, ताकि मैं खुद यह सब अनुभव कर सकूँ। दुनिया में कोई भी मुझसे ज़्यादा भाग्यशाली नहीं है!"

अगेन सुमिताजी लाफेद.

"क्या?" उसने पूछा, "तुमने क्या कहा? तुम भाग्यशाली हो!" और वह ज़ोर-ज़ोर से हंसती रही।

जैसे-जैसे हम पेड़ों के बीच से गुज़रते गए, ऐसा लगा जैसे पूरा जंगल उसकी हँसी की आवाज़ सुनकर जीवंत हो उठा हो। लेकिन हम अकेले नहीं थे।

शर्माजी ने दूर से ही सुमिताजी की हंसी सुनी और हमसे मिलने आये।

उसने उससे पूछा, "क्या बात है? तुम इतना क्यों हंस रही हो?"

"क्या कहते हो बंगाली?" वह मुस्कुराई, "क्या मैं शर-माजी को बता दूँ?"

अब तक मैंने सोचा भी नहीं था कि आगे क्या होगा - लेकिन अब मुझे डर लगने लगा: उफ़! सब कुछ बर्बाद! "मेरी नौकरी का क्या होगा? काश, अभी उसकी आवाज़ चली जाती!" मैंने सोचा।

लेकिन नहीं! सुमिता जी का जोश और बढ़ गया। उन्होंने शर्मा जी को जवाब दिया, "बहुत गंभीर बात है शर्मा जी! आप तो मुझे राधा की माँ के रूप में ही जानते हैं न?"

"हाँ, क्यों?"

"नहीं.कुछ नहीं हुआ है...पर क्या तुम्हें पता है कि अब मैं

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

147

"क्या कोई और उपाधि है? जानते हो इस बंगाली ने मुझे क्या कहा है?"

शर्माजी ने पूछा, "बंगाली ने क्या कहा?"

मैं यह अनुमान नहीं लगा सका कि उसकी आवाज़ में क्रोध था या केवल जिज्ञासा।

सुमिताजी ने उत्तर दिया, "बंगाली कहती है कि मैं ब्रजांगना हूँ। क्या मैं सचमुच ब्रजांगना हूँ?"

"हाँ," - शर्माजी ने मानो तुरंत शब्द पकड़ लिया, "यह सच है! आप यहाँ ब्रज में रहती हैं - फिर आप ब्रजांगना के अलावा और क्या हैं? बंगाली ने जो कहा है, उसमें कोई नई बात नहीं है।"

"लेकिन मैंने तो यह बात तुम्हारे मुँह से कभी नहीं सुनी! आज भी अगर बंगाली न कहती, तो तुम इसके बारे में सोचते भी नहीं। अब से तुम भी मुझे 'ब्रजांगना' ही कहोगे!"

और वह फिर जोर से हंसने लगी।

जैसे ही हम जंगल से बाहर निकले, मेरे दो दोस्तों ने मुझे शर्माजी और उनकी पत्नी के साथ आते देखा और हम दोनों हँसते हुए चले गए। शायद यह दृश्य उन्हें बहुत परेशान कर रहा था। उस रात खाने पर मुझे इस बात का सबूत मिल गया कि उन्हें ज़रूर गुस्सा आया होगा।

जब हम छत्र रसोई में भोजन के लिए बैठे तो देवधर ने मुझसे कहा,

"बंगाली, आज तो तुम्हारी छुट्टी थी, लेकिन कल देखते हैं तुम कैसे बच पाते हो!"

"क्या?" मैंने पूछा। "कल आप मुझे क्या काम देंगे?"

"तुम जल्द ही खुद देख लोगे!" बस इतना ही उन्होंने कहा।

यद्यपि हमने केवल कुछ शब्दों का आदान-प्रदान किया, फिर भी कुछ अप्रिय भावनाओं का आदान-प्रदान भी हुआ।

और अगला दिन तो बड़ी मुश्किलों भरा था। काश, मुझे एक और 'छुट्टी' मिल जाती! देवधर ने मुझे धर्मशाला में नीचे वाला एक स्टोर रूम साफ़ करने को दिया। दरवाज़ा खोलते ही उसने मुझसे कहा,

"शर्माजी ने कहा कि इस कमरे की आज सफ़ाई करनी होगी।"

मैंने ज़िंदगी में इतना गंदा कमरा कभी नहीं देखा था। जब इमारत बनी थी, तो सारा कचरा वहाँ फेंक दिया गया था। इसके अलावा, वहाँ बहुत अंधेरा और बहुत सीलन थी। ऐसा लग रहा था जैसे कमरे का कभी इस्तेमाल ही नहीं हुआ हो, और मैं सोच रहा था कि देवधर क्या कर रहा है?

148

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

शायद अभी इसकी ज़रूरत हो। खैर, इसका जवाब तो सिर्फ़ वही दे पाएगा।

कमरा?" मैंने कहा, "इतना कबाड़ है! मैं इसे कैसे खाली कर पाऊँगा?"

"ओह, तुम अकेले नहीं रहोगे - मैं तुम्हारी मदद के लिए यहाँ हूँ। तुम शुरू करो... मैं जल्द ही आऊँगा।"

और ये शब्द कहकर वह चला गया।

मैंने कमरा साफ़ करने की पूरी कोशिश की, और मैंने तय किया कि मैं देवधर को खुद पर हावी नहीं होने दूँगी। अगर मैं उसे दिखा सकूँ कि मैं बिना किसी झंझट के ये काम करने को तैयार हूँ, और कर सकती हूँ, तो शायद वो मुझे अकेला छोड़ दे और सब कुछ सामान्य हो जाए।

और ठीक वैसा ही हुआ। जब उन्होंने देखा कि मैं चुपचाप सफ़ाई कर रही हूँ, तो वे खुद आए और भारी सामान कमरे से बाहर निकालने में मेरी मदद करने लगे।

अच्छा। मैंने उस पूरे दिन सुमिताजी को नहीं देखा, और मुझे लगा कि यह बस यूँ ही था।

"अगर मैं पूजा-पाठ छोड़कर यहीं काम करने लगूँ," मैंने सोचा, "देवधर ज़्यादा खुश रहेगा। और फिर, उसे कैसे पता चलेगा कि मैं आज कहाँ हूँ? वो तो अहाते के दूसरी तरफ़ है।"

ज़ाहिर था कि देवधर नहीं चाहते थे कि मैं सुमिताजी के साथ जाऊँ। लेकिन जब पूजा का समय आया, तो सुमिताजी पूरी धर्मशाला छान मारती हुई आखिरकार उस कमरे में पहुँचीं। उन्हें देवधर की चाल तुरंत समझ आ गई; वे हँसते हुए बोलीं,

"ओह, बंगाली! मेरी नज़र से बचने के लिए तुम्हें छिपाया गया है! मैं इस पूरी धर्मशाला की तलाशी लेते-लेते थक गया हूँ!"

"मैं क्या कर सकता था?" मैंने जवाब दिया। "देवधर ने मुझे बताया कि शारमाजी ने मुझे यह सब करने का आदेश दिया था।"

शर्माजी का नाम सुनते ही सुमिताजी चुप हो गईं; फिर एक क्षण बाद उन्होंने मुझसे कहा,

"ठीक है... बस अब मेरे साथ आओ।"

मैं तुरंत उसके पीछे चल पड़ा। उसने पीछे मुड़कर मेरी तरफ देखा और कहा कि जैसे मैंने पिछले दिन किया था, वैसे ही एक छड़ी ढूँढ़ो। मैंने एक छड़ी ढूँढ़ी, उसे उठाया और उसके पीछे चल पड़ा।

सुमिता जी ने पूजा का सारा सामान इकट्ठा किया और फिर बगीचे की ओर चल दीं। उन्होंने उस घंटी के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा जो एक दिन पहले ही टूट गई थी और बाज़ार से नई घंटी ले आई थी। जब हम मंदिर के पास पहुँचे, तो वह रुक गईं।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

149

आस-पास के बाग से फूल तोड़ो, और मैं तालाब से पानी भरूँ, ठीक वैसे ही जैसे हमने पिछले दिन किया था। फिर उसने मुझे पीतल का घंटा और उसका हथौड़ा दिया और इशारा किया कि मैं उसे वैसे ही बजाऊँ जैसे मैंने पिछले दिन बजाया था।

जब तक पूजा पूरी हुई, हमें पता चला कि शाम हो चुकी थी। उसने मंदिर का दरवाज़ा बंद किया और फिर बिना पूछे, अपनी मर्ज़ी से मुझे प्रसाद दे दिया।

मैंने देखा कि पूजा के बाद वह काफ़ी शांत और स्थिर हो जाती थी। ऐसा लग रहा था कि पूजा का असर उसके मन को शांत कर रहा था; और मैं उसके अंदर आए इस आध्यात्मिक बदलाव का सम्मान करती थी। हालाँकि उसके पास कोई मंत्र नहीं था, फिर भी उसकी पूजा से उसकी आँखों में आँसू आ जाते थे; मुझे लगता है कि जब ऐसा होता है, तो देवता ज़रूर सुन रहे होते हैं; और चूँकि उस पर इसका ऐसा प्रभाव पड़ता था, इसलिए मैं उसकी पूजा के बारे में और जानने के लिए उत्सुक हो गई।

जब वह प्रसाद बांट रही थी तो मैंने उससे पूछा,

"आमतौर पर पुजारी पूजा करते समय मंत्र बोलते हैं। आपका मंत्र इतना मौन क्यों है? क्या आपके पास कोई मंत्र नहीं है?"

उसने मुस्कुराते हुए जवाब दिया,

"मेरा मंत्र मेरे भीतर, मेरे मन में गाया जाता है।"

मैंने जवाब दिया, "सिर्फ़ आपके मन में ही नहीं, आपकी आँखों की नमी से भी। सुमिता जी, ऐसी कौन सी मुश्किल है जो आपकी आँखों में आँसू ला देती है?"

उसने उसी मुस्कान के साथ जवाब दिया,

"क्या तुम सच में जानना चाहते हो? क्योंकि मेरी समस्या का कोई हल नहीं है। क्या तुम्हें नहीं पता कि मेरे पति बहुत बुज़ुर्ग हैं? मेरी समस्या बाक़ी सबको दिख रही है। तुमने इस पर ध्यान क्यों नहीं दिया?"

मेरे सवाल का उसका जवाब बिल्कुल अप्रत्याशित था। मैं हक्का-बक्का रह गया... अब वो मुझसे क्या कहेगी? मैंने उसकी तरफ देखा: क्या वो सच में कह रही थी या मज़ाक कर रही थी?

मुझे नहीं पता था कि क्या कहना है, लेकिन मुझे कुछ कहना था; इसलिए मैंने उससे पूछा:

"आप मुझसे यह क्यों उम्मीद करते हैं कि मैं वह सब जानूं जो दूसरे लोग आपके बारे में जानते हैं? आखिरकार, मैं यहां नया हूं!"

"लेकिन," उसने पूछा, "अगर मैं तुमसे एक सवाल पूछूं, तो क्या तुम मेरे साथ सच बोलोगे?"

मैंने झिझकते हुए उसकी शर्त स्वीकार कर ली।

उसने पूछा, "क्या तुम्हें मुझ पर कोई दया आती है?"

"लेकिन," मैंने उसे बीच में टोका, "तुम यह बात मुझसे क्यों कह रही हो?"

150

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

उसने उत्तर दिया, "यह ऐसी बात नहीं है जो मैं हर किसी को बताऊं; केवल आपको बताऊं, क्योंकि मुझे आपकी करुणा महसूस हुई।"

मैं हैरान था... शर्माजी की पत्नी अब मुझसे क्या कहेंगी? मैंने ज़ोर देकर कहा:

"आप मुझसे इस तरह क्यों बात कर रहे हैं? आपके प्रति सहानुभूति के बारे में तो मुझे नहीं पता, लेकिन मैं आपका सम्मान करता हूँ... खासकर कृष्ण के प्रति आपकी भक्ति के लिए। मैं वृंदावन में नया हूँ, और मैंने इससे पहले आपके जैसा कोई नहीं देखा, और मुझे लगता है कि मुझे आपसे बहुत कुछ सीखना है..."

सुमिताजी ने खुद को पीछे खींच लिया।

"मैं तुम्हें क्या सिखा पाऊँगी? लोग तो बस मुझ पर दया की नज़र से देखते हैं। मेरा पति बुज़ुर्ग और बीमार है। किसी भी दिन वह मुझे छोड़कर जा सकता है!"

अब मुझे उसकी बात समझ में आई। मुझे उस पर दया आ गई और मैंने पूछा,

"क्या शर्माजी बीमार हैं? ऐसा तो नहीं लगता।"

"हाँ, मुझे पता है," उसने जवाब दिया। "लेकिन वह दिल का मरीज़ है। उसे पहले ही दो बार दिल का दौरा पड़ चुका है।"

"ओह, दो हमले तो हो ही चुके हैं! कोई आश्चर्य नहीं कि लोग तुम्हारे साथ सहानुभूति रखते हैं। लेकिन मुझे इसके बारे में कुछ नहीं पता था, तो तुम सहानुभूति के लिए मेरे पास क्यों आए?"

उसने मेरे सवाल का जवाब नहीं दिया, बल्कि कहा,

"लेकिन वे नहीं जानते कि मैं उनकी तीसरी पत्नी हूँ। किसी ने मुझ पर दबाव नहीं डाला। यह मेरी अपनी पसंद थी।"

"तुम्हारे माता-पिता ने इसकी व्यवस्था नहीं की - तुमने अपनी इच्छा से शर्माजी से विवाह किया है?"

इस प्रश्न पर, उनके उत्तर तेजी से सामने आये:

"नहीं, यह मेरी अपनी पसंद थी," उसने कहा। "कुछ पारिवारिक दबाव ज़रूर था, लेकिन शादी की मुख्य वजह वह नहीं थी। देखिए, जब मैं बहुत छोटी थी, तभी मेरी माँ का देहांत हो गया और मुझे पालन-पोषण के लिए मेरी मौसी के घर भेज दिया गया। फिर मेरे पिता शराब पीने लगे और परिवार का खर्च नहीं उठाते थे। उनके पास कोई नौकरी नहीं थी। धीरे-धीरे सब कुछ खत्म हो गया। उन्होंने मेरी माँ के सोने के गहने बेच दिए, फिर हमारी सारी संपत्ति। और जब आय के सारे स्रोत खत्म हो गए, तो उन्होंने शर्माजी से पैसे उधार लिए - वे मेरे पिता के दूर के रिश्तेदार थे। दरअसल, उन्होंने इतना उधार लिया था कि अगर वे अपनी पूरी ज़िंदगी शर्माजी का कर्ज चुकाने में लगा दें, तो भी......"

सुमिताजी अपनी बात बीच में ही रोककर बोलीं, और

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

151

तो मैंने पूछा:

"तो क्या कर्ज चुकाने के लिए तुमने उस बूढ़े आदमी से शादी कर ली?"

"अरे नहीं! क्या ऐसा हो सकता है? क्या कोई ऐसा कर सकता है?" उसने कहा। "वैसे भी मैं ऐसा कभी नहीं करती। लेकिन देखो, मुझे श्रीकृष्ण और शर्माजी एक ही लगे। यह

मेरे प्रभु की इच्छा थी। और उन्होंने जो मुझे दिया, मैं खुशी-खुशी मान गई। और श्रीकृष्ण ने मुझसे जो भी करने को कहा, मैंने किया!"

वह कुछ देर चुप रही, फिर बोलने लगी:

"मेरे अंदर क्या हुआ, यह कोई नहीं जानता, और न ही कोई मेरी भगवान कृष्ण की पूजा को समझ पाता है। इसीलिए मैं शर्माजी के कर्मचारियों को अपने साथ चलने के लिए नहीं कहता... मैं हमेशा किसी अजनबी की जगह किसी नए को ढूँढ़ता हूँ। और जब मेरे साथ चलने वाला कोई नहीं होता, तो मैं अकेला ही चला आता हूँ। इसी वजह से मेरे पैर में ज़ख्म हो गया है।"

उसने मुझे अपना बायाँ पैर दिखाया, और मैंने देखा कि उस पर एक बंदर ने हमला किया था। घाव अभी भी खुला था।

सुमिता जी चुप हो गईं। मेरे पास भी जवाब में कहने को कुछ नहीं था। वे बिना अपनी चुप्पी तोड़े अपने अपार्टमेंट में लौट गईं।

अगले दिन मुझे एक नई नौकरी दे दी गई।

उस दिन सुबह-सुबह कुछ लोग सफ़ेद शॉर्ट्स और शर्ट पहने, सिर पर सफ़ेद टोपी पहने, हाथों में झंडे लिए, कतार में मार्च करते हुए पहुँचे।

शर्माजी ने मेरा उनसे परिचय कराया और कहा,

"बंगाली, आज धर्मशाला में काम करने के बजाय, तुम्हें इन लोगों की ज़रूरतों का ध्यान रखना चाहिए। कल धर्मशाला में इनके लिए एक बैठक होनी है।"

उनके नेता, श्री हरिपद पाठक, वृंदावन नगर पालिका के अध्यक्ष, और उनके एक मित्र, उस बैठक के प्रभारी थे और उसमें भाग लेने वाले सभी सदस्यों के भोजन और आवास की देखभाल कर रहे थे।

ये लोग मेरे पास आये और मुझसे अनुरोध किया,

"हाँ, बंगाली, हमें हमारी ज़िम्मेदारियों से मुक्त कर दो! बस दो दिन की बात है। फिर, जब यह मामला निपट जाएगा, तो तुम्हें धर्मशाला में काम करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, हम तुम्हारे लिए कोई अच्छा काम ढूँढ़ लेंगे।"

"अच्छा काम?" ये शब्द सुनकर मुझे प्रोत्साहन मिला।

152

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

"हाँ, क्या आप वृंदावन में कुछ अच्छा काम नहीं करना चाहते?"

"नहीं करता? अगर अच्छा काम नहीं मिलता, तो कोई भी स्थायी नौकरी चल जाएगी। यह धर्मशाला - काम की कोई सुरक्षा नहीं है - किसी भी दिन, किसी भी समय बंद हो सकती है। क्या तुम सचमुच मुझे कुछ काम दोगे?"

चेयरमैन और उनके मित्र ने मुझे पुनः आश्वासन दिया:

"ज़रूर। तुम्हें एक अच्छी और स्थायी नौकरी मिलनी चाहिए!"

अन्य सदस्यों ने भी इसका समर्थन किया:

"हाँ, ज़रूर मिलेगी। जैसे ही यह मीटिंग ख़त्म हो, आप हमारे माननीय चेयरमैन के घर चले जाइए। आपको ज़रूर नौकरी मिल जाएगी। अब तो आप संतुष्ट हैं?"

"हाँ, मैं बहुत संतुष्ट हूँ।" मैंने कहा।

"तो फिर अपना काम शुरू करो..."

मैं सहमत हो गया और उनसे पूछा:

"कृपया मुझे बताइये कि मैं क्या काम करूँ?"

"कल तुम्हारे ऊपर एक कठिन काम आ पड़ेगा: दस हज़ार आदमी आएँगे, तुम्हें उनके लिए कल तरह-तरह के काम करने होंगे। लेकिन आज एक ही आसान काम है: तुम्हें सेठों और ब्रजवासियों के घर ठेला लेकर जाना होगा और तरह-तरह के खाना पकाने के बर्तन लाने होंगे: तवे, तवे, बड़े कटोरे, चप्पू, चम्मच, करछुल वगैरह। और फिर बाज़ार से जलावन की लकड़ियाँ ले आना। बस इतना ही - फिर तुम आज़ाद हो जाओगे।"

"क्या यह तुम्हारा आसान काम है? इसमें तो पूरा दिन लग जाएगा! और मैं अकेले इस भरी हुई ठेलागाड़ी को कैसे खींच पाऊँगा?"

"आह! क्या हमने यह सब व्यवस्था नहीं की है? जाकर देखो, एक और आदमी सड़क पर ठेला लेकर तुम्हारा इंतज़ार कर रहा है!"

मैंने जाकर देखा तो पता चला कि बात सच थी। उनके पास मज़दूरों की कोई कमी नहीं थी। मेरी तरह एक और मज़दूर लगा हुआ था, शायद छत्र की कतार से बाहर।

हम सबने मिलकर ठेला को एक स्थान से दूसरे स्थान तक खींचना शुरू कर दिया, और ठेला पर कड़ाही, फ्राइंग पैन, करछुल, चप्पू और अन्य खाना पकाने के बर्तन तथा ईंधन लादकर उसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने लगे।

लेकिन मेरा साथी इस काम का बोझ नहीं झेल सका। एक-दो बार उसने हाथ बढ़ाया, लेकिन फिर आयोजकों को गालियाँ देते हुए कहने लगा:

"शा! अपना अच्छा काम छोड़ो! क्या इस तरह का काम हम जैसे सज्जनों को शोभा देता है? और हम ऐसा क्यों करें? हमें तो बस

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

153

छत्र के द्वार तक - हमें ज़रूर खाना मिलेगा। लेकिन फिर भी वे हमें फुसलाने की कोशिश करते हैं: 'अगर तुम यह काम करोगे, तो तुम्हें अच्छा खाना मिलेगा' - अपना अच्छा खाना ले जाओ!

और उसने गाड़ी को सड़क के किनारे धकेल दिया और भाग गया।

लेकिन मैं ठेला छोड़कर भाग नहीं सकता था। मुझे अच्छे व्यंजनों की कोई लालसा नहीं थी; लेकिन आगे एक अच्छी नौकरी की उम्मीद मुझे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रही थी। चेयरमैन ने कहा था कि वह मुझे एक अच्छी नौकरी दिला देंगे - फिर वृंदावन में मेरा प्रवास चिंतामुक्त हो जाएगा। इसी उम्मीद के साथ मैं उस दिन और अगले दिन सुबह से देर रात तक बिना आराम किए काम करता रहा। खाना पकाने के लिए कुएँ से पानी निकालना, पीने का पानी लाना, ईंधन भरना, सब्ज़ियाँ छीलना, आग जलाना वगैरह, रात के दो बजे तक। मुझे नहीं पता कि जनसंघ के सदस्यों ने धर्मशाला में अपनी बैठक में क्या किया या क्या कहा। अंत में, जब सभी दस हज़ार सदस्य भोजन कर चुके और आराम करने चले गए, तो मैंने भी कुछ मुँह में डाला और सो गया।

लेकिन मुझे बिल्कुल भी नींद नहीं आ रही थी। जैसे ही मैं सोने वाला था, कुछ सदस्य मेरे पास आए और बोले,

"सभापति बाबू पैरों में दर्द के कारण सो नहीं पा रहे हैं, क्योंकि सारा दिन सब कुछ देखने में मेहनत करते रहते हैं। उनके पैरों में तेल की मालिश करनी होगी।"

मैं तब पूरी धरती और उसके समुद्रों का सम्राट नहीं बनना चाहता था! मुझे तो बस थोड़ा आराम चाहिए था, थोड़ा विश्राम! मेरी पलकें थकान से भारी हो गई थीं... मैं उन्हें पूरी तरह खोलकर ठीक से देख भी नहीं पा रहा था। फिर भी उन्होंने मुझे उठने पर मजबूर कर दिया। और हमेशा एक ही बहाना बनाकर:

"चलो, नौजवान! चेयरमैन बाबू तुम्हें अच्छी नौकरी दिला देंगे!"

मैं क्या कर सकता था? ज़रूरत का कोई क़ानून नहीं होता। मेरे पास उसकी सेवा करने और एक घंटे तक उसके पैर मालिश करने के अलावा कोई चारा नहीं था।

दो दिन इसी तरह बीत गए। फिर दस हज़ार आदमी धर्मशाला से उतनी ही तत्परता से चले गए, जितनी तत्परता से आए थे।

उन दो दिनों के बाद, चीजें सामान्य हो गईं।

मैं धर्मशाला में अपने पुराने काम में लग गया। हर दिन वही दिनचर्या चलती रही: सुबह तीन-चार बजे शर्माजी मुझे आवाज़ देकर जगाते, "बंगाली, उठो! उठो! सुबह हो गई है।"

154

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

अब।"

मैं जल्दी से उठा और आँखें मलते हुए ही दरवाज़ा खोला, तो देखा कि चारों तरफ अभी भी घना अँधेरा था, न कोई हलचल, न पक्षियों की आवाज़!

तो मैं विनती करता, "शर्माजी, सुबह कहाँ है? अभी तो रात ही रात है!"

उसने कहा, "नहीं बंगाली, नहीं! मैं चाय पी चुका हूँ। इतनी रात कैसे हो गई? जाओ, जाओ, पास की दुकान से मेरे लिए दो पान तंबाकू के साथ ले आओ।"

"यहाँ आस-पास कोई दुकान कहाँ है?" मैंने फिर भी आपत्ति जताई।

"वह है, वह है। सड़क पर थोड़ा आगे बढ़ो, तुम्हें वह मिल जाएगा।"

भारत सेवाश्रम के ठीक सामने सड़क के किनारे एक पेड़ के नीचे पान और बीड़ी की दुकान है - आपको उनकी रोशनी दिखाई देगी।"

लेकिन भोर से पहले सिर्फ़ एक बनियान और एक शॉल के सहारे बाहर निकलने की हिम्मत कौन करेगा? ठंडी हवा तो मानो निगलने ही आ रही है! और हाँ, मैं तो नंगे पैर था: एक-दो कदम चलने के बाद ही मेरे पैर कमर तक सुन्न हो गए!

लेकिन जैसे ही मैं थोड़ा आगे बढ़ा, मेरी परेशानियाँ दूर हो गईं। वृंदावन की गलियों में एक भी जीव नहीं था। सड़क के किनारे एक पेड़ की छाया में कुछ नीऑन लाइटें रात के उस आखिरी पहर में एक रहस्यमयी माहौल फैला रही थीं। जैसे ही मैं सड़क पर चला, मुझे अचानक लगा कि मैं अब अकेला नहीं था, मेरे बगल में एक उपस्थिति थी। ऐसा लगा जैसे श्री राधा अपनी घनिष्ठ सखियों - वृंदा, ललिता, बिशाखा और बाकी के साथ मेरे साथ आ गई हों। जब मैं पान की दुकान की तलाश कर रहा था, वह श्री कृष्ण को ढूंढ रही थीं। ऐसा लग रहा था जैसे वह हर पेड़ और झाड़ी से, हर रास्ते और स्नान स्थल से, और हर पशु या पक्षी से पूछ रही हों कि क्या उनमें से किसी ने उनके भगवान कृष्ण को देखा है - किस कदम्ब के पेड़ के नीचे उनके जीवनसाथी अपनी बांसुरी बजा रहे थे?

"ओह, कितना मधुर और अत्यंत मधुर

बांसुरी बज रही है, कहाँ, किस कदम्ब वृक्ष के नीचे,

मुझे कौन बता सकता है?...."

मुझे नहीं मालूम कि मैंने वह गीत किस तरह के कानों से सुना था, लेकिन अब भी मुझे वह धुन साफ-साफ याद है और मेरे अंदर की कोई लालसा आज भी उस पर प्रतिक्रिया करती है।

जैसे ही मैंने यह सुना, मुझे पूरी खोज करने की तीव्र इच्छा हुई

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

155

वृंदावन तब तक घूमता रहा जब तक मुझे इसकी मिठास का स्रोत नहीं मिल गया।

लेकिन मैं अभी ऐसा नहीं कर सकता था: नहीं, शर्माजी मेरा इंतज़ार कर रहे थे। मुझे जल्दी से उनके पान लेकर वापस जाना था।

फिर भी, सुबह-सुबह उठकर शर्माजी के लिए पान खरीदने जाना मेरे लिए बहुत ही आनंद का स्रोत बन गया। हर दिन मैं वृंदावन के नए रहस्यों की खोज करता, और इससे मेरा जीवन मधुर होता जाता!

इस प्रकार धर्मशाला में मेरे दिन बहुत सुखपूर्वक बीतते थे।

पान खरीदने और चीनी की जगह गुड़ से मीठी एक गिलास चाय पीने के बाद, मैं छत्र रसोइए के हाथ बँटने के लिए खाना बनाने में मदद करता। उसके तुरंत बाद मैं शर्माजी के साथ बाज़ार जाता; और बाज़ार से लौटने के बाद सुमिताजी के लिए घर के कुछ छोटे-मोटे काम निपटाने होते। दोपहर के भोजन के बाद, मैं थोड़ी देर के लिए खाली होता और धूप सेंकने का समय पाता। फिर सुमिताजी के साथ मंदिर जाने का समय होने तक, छोटे-मोटे कामों में समय बिताता। रात में कोई काम नहीं होता था: शाम और रातें मेरे पास आराम करने, ध्यान करने या जो भी मैं चाहता था, उसके लिए होती थीं।

इसलिए मैं मुश्किल से ही गुजरते दिनों का हिसाब रख पाता था।

लेकिन दुर्भाग्य से मिर्ज़ापुर धर्मशाला में यह सुखी जीवन ज़्यादा दिन नहीं चला। एक दिन पिछला कर्मचारी बंदर के काटने के बाद इलाज के लिए छुट्टी से लौटा; और उसके लौटते ही मेरी सेवाएँ समाप्त कर दी गईं। शर्माजी ने कहा,

"बंगाली, अब तुम जा सकते हो। यह आदमी मेरा पुराना कर्मचारी है, इसे प्राथमिकता देनी होगी - और अब तुम्हें यहाँ और रखने के लिए पर्याप्त काम नहीं है। जैसे पहले कर रहे थे, वैसे ही करते रहो। दस-पंद्रह दिन बाद फिर यहाँ आना... मैं तुम्हारे लिए कोई और काम ढूँढ़ लूँगा।"

मैं मन ही मन जानता था कि एक दिन ऐसा ज़रूर होगा। इसीलिए मैं सुमिता जी से बार-बार कहता रहा था:

"कृपया शर्माजी से कहिए कि वे मेरे काम की व्यवस्था स्थायी कर दें।"

लेकिन इस मामले में वह अपनी शर्म पर काबू नहीं पा सकी। वह हमेशा मुझसे कहती थी,

156

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

"हाँ, मैं ज़रूर बताऊँगी।" लेकिन असल में वह एक बार भी उन्हें बता नहीं पाई। अगर पूछती, तो शर्माजी उसकी बात ठुकरा नहीं सकते थे - पर शायद उन्हें मेरा पक्ष उनके सामने रखने में थोड़ी हिचकिचाहट हो रही थी।

आखिरी दिन जब सुमिता जी को पता चला कि मुझे नौकरी से निकाल दिया गया है तो उन्होंने कहा,

"काम की चिंता क्यों कर रहे हो? चेयरमैन श्री हरिपद पाठक के पास जाओ... क्या उन्होंने तुमसे नहीं कहा था कि वे तुम्हें नौकरी दिला देंगे?"

तभी मुझे याद आया: हां, उन्होंने वादा किया था; मैं तो इसके बारे में सब भूल गया था।

मैं सीधा चेयरमैन के घर गया। वे वृंदावन में एक जाने-माने व्यक्ति थे... मैंने गली में एक आदमी से पूछा, तो उसने घर की ओर इशारा किया। लेकिन मैं चेयरमैन से नहीं मिल सका। उनकी पत्नी ने मुझे बताया,

"वह घर पर नहीं है। पता नहीं कब आएगा।" लगातार तीन-चार दिन, दिन में तीन-चार बार, कई कोशिशों के बाद भी मैं उससे संपर्क नहीं कर पाया। हर बार मुझे एक ही जवाब मिला:

"वह घर पर नहीं है।"

एक दिन निराश होकर मैं चेयरमैन के दोस्त के घर गया। उनका नाम और पता मुझे पता था। उनसे मिलने के बाद, मैं उनके खेत में उनसे मिला। उनके खेत और गौशाला को देखकर अंदाज़ा लगाया जा सकता था कि वे कितने संपन्न व्यक्ति थे। लेकिन वे अपने कमरे में मुँह में तंबाकू की चिलम लिए नहीं बैठे थे! मज़दूर काम पर थे; एक तरफ़ गेहूँ का एक बड़ा ढेर खलिहान में रखा जा रहा था; दूसरी तरफ़, मशीन से भूसा काटा जा रहा था। वे सब देख रहे थे। मुझे देखकर उन्होंने मेरा गर्मजोशी से स्वागत किया:

"आओ, ओ बंगाली, आओ! क्या खबर है?" उसने मुझसे पूछा।

मैं सीधे मुद्दे पर आया:

"मुझे नौकरी चाहिए, सर। क्या आपने नहीं कहा था कि आप मेरे लिए नौकरी का प्रबंध करेंगे?"

उन्होंने तुरंत जवाब दिया, "हाँ, हाँ, ज़रूर! क्यों नहीं?"

"तो फिर कृपया मुझे अभी नौकरी दे दीजिए।"

"बताओ, तुम्हें कैसी नौकरी चाहिए?"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

157

"आप जो भी करवाना चाहें, मैं करूँगा," मैंने जवाब दिया। "हाँ, बात तो सही है: मुझे प्रेस के काम का पुराना अनुभव है। मैंने यहाँ कई प्रिंटिंग प्रेस देखी हैं। मैं लिखित अंग्रेज़ी और बंगाली जानता हूँ, और जल्द ही अपनी हिंदी भी अच्छी कर लूँगा। क्या आप मुझे कहीं किसी प्रेस में नौकरी दिला सकते हैं?"

"आप प्रेस में काम करना चाहते हैं!"

"जी श्रीमान।"

लेकिन यह सुनते ही वह सज्जन जोर-जोर से हंसने लगे।

"क्या बात है? तुम इतना क्यों हँस रहे हो?" मैंने पूछा।

अभी भी हंसते हुए उन्होंने जवाब दिया, "बंगाली, भाई - मैं आपके अनुरोध पर हंस रहा हूं।"

"क्यों? मैंने ऐसा क्या कहा जो इतना मनोरंजक है?"

"क्यों, मज़ाक है ना?" उसने जवाब दिया। "कुछ दिन काम करोगे, फिर एक दिन कुछ कीमती सामान लेकर गायब हो जाओगे!"

मैं इस जवाब से शर्म और आश्चर्य से भर गया। मुझे यकीन नहीं हो रहा था कि वह मेरे सामने ऐसा कहने की हिम्मत कैसे कर सकता है।

लेकिन अगले ही पल, थोड़ा सोचने के बाद, मुझे उसकी बात समझ आ गई: "यह सच है... मैंने इसके उस पहलू के बारे में कभी नहीं सोचा था। मैं यहाँ अजनबी हूँ और प्रेस की नौकरी का मतलब है धातु के सीसे और टाइप के साथ काम करना, जो दोनों ही बहुत कीमती हैं... अगर मैं ये चीज़ें लेकर भाग जाऊँ, तो यह आदमी खुद ज़िम्मेदार होगा।"

लेकिन क्या ऐसे शब्दों का जवाब देने का कोई तरीका है? मुझे उससे कहने के लिए एक भी शब्द नहीं सूझ रहा था; अपनी ईमानदारी की गारंटी देने का कोई तरीका नहीं था। इसलिए शर्म से मुँह झुकाकर मैं तुरंत उसके घर से निकल गया।

दस-पंद्रह दिन बीत गये।

मैं अब भी शर्माजी की धर्मशाला के नीचे उसी गुफा में सो रहा था, फिर भी वहाँ के लोगों से मेरा कोई संपर्क नहीं था। मैं उनके छत्र पर नहीं गया था, और न ही मुझे इसकी कोई खबर मिली थी। मैं सुबह जल्दी गुफा से निकल जाता था और रात के अंधेरे में वहाँ लौटता था... इसलिए मुझे वहाँ कोई बदलाव नज़र नहीं आया।

लेकिन एक दिन जब मैं लाला बाबू की दरगाह की ओर जा रहा था, तो अचानक मेरी नज़र मिर्ज़ापुर धर्मशाला पर पड़ी।

158

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

द्वार के सामने संन्यासियों और भिक्षुकों की विशाल भीड़ थी। उन्हें वहाँ देखकर मैंने सोचा:

"अगर मैं आज मिर्ज़ापुर धर्मशाला छत्र चला जाऊँ तो क्या होगा? शर्माजी ने मुझे दस-पंद्रह दिन बाद वहाँ फिर आने को कहा है। मैं उनसे मिल तो सकता हूँ, और कम से कम छत्र पर भोजन तो कर ही सकता हूँ। इसके अलावा, मिर्ज़ापुर धर्मशाला में नए मेहमानों को भरपेट भोजन मिलता है। मेरे जैसे नियमित मेहमान को रोज़ भरपेट भोजन तो नहीं मिल सकता। लेकिन कुछ दिनों के अंतराल पर वहाँ जाकर फिर से नया मेहमान बनना तो संभव है। आज मैं मिर्ज़ापुर धर्मशाला में फिर से नया मेहमान बन सकता हूँ।"

जैसे ही मैं दरवाजे के पास पहुँचा, मैंने देखा कि साधुओं और भिखारियों को निमंत्रण मिलना शुरू हो गया था। शर्माजी वहाँ नहीं थे। उनकी जगह एक नया आदमी अपना काम कर रहा था, साधुओं और वैष्णवों को एक-एक करके चुनकर छत्र में बुला रहा था।

मैंने लाइन में खड़े एक व्यक्ति से पूछा,

"आज शर्माजी कहाँ हैं? मैं उन्हें क्यों नहीं देख पा रहा हूँ?"

जिस व्यक्ति से मैंने बात की थी, उसने कोई जवाब नहीं दिया। उसके बगल में खड़े एक दूसरे आदमी ने कहा,

"अरे, सुना नहीं? शर्माजी चले गए।"

"वह कहां गया है?"

"आह! वह मर गया!"

"आप क्या कह रहे हैं? क्या आप मज़ाक कर रहे हैं, सर?" मैंने आश्चर्य से कहा।

"अरे नहीं - यह सच है। उसने सचमुच अपना शरीर छोड़ दिया।"

"कब? यह कब हुआ? उसके साथ क्या हुआ?"

"दो-तीन दिन पहले दिल का दौरा पड़ने से उनकी मौत हो गई। लेकिन वो बुला रहे हैं, मुझे अब अंदर जाना होगा।" और वो मुझे छोड़कर चले गए। वहाँ अकेले खड़े होकर, मैंने अपने चारों ओर देखा और सोचा,

"यह कैसी मृत्यु है? जिस आदमी को मैंने कुछ दिन पहले पूर्ण स्वस्थ होकर काम करते देखा था, वह चला गया? लेकिन उसकी मृत्यु के बावजूद काम रुका नहीं है - कोई बाधा नहीं आई है: जैसे पहले साधुओं और वैष्णवों को बुलाया गया था, वैसा ही आज भी चल रहा है... केवल एक आदमी अनुपस्थित है, और उसके स्थान पर दूसरा आ गया है।"

और फिर मुझे शर्माजी की तीसरी पत्नी की बात याद आई:

"आह! उसका क्या होगा? वह तो तबाह हो गई होगी! शरनाजी धर्मशाला के मालिक नहीं थे - वह तो थे ही नहीं…"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

159

"इसके मैनेजर, वो तो बस रसोई संभाल रहे थे, उन्हें यहाँ नौकरी पर रखा गया था। उनके मरते ही उनकी जगह किसी और को रख लिया जाएगा। इसलिए सुमिताजी को अब धर्मशाला में रहने की इजाज़त नहीं मिलेगी। फिर वो अपनी छोटी बेटी के साथ कहाँ जाएँगी? मुझे नहीं पता कि शर्माजी का कोई रिश्तेदार था भी या नहीं जो उनके परिवार की देखभाल कर सके। क्या उन्होंने उन्हें बिना किसी खाने-पीने के छोड़ दिया है? अगर ऐसा है, तो उन्होंने ज़रूर अपने परिवार के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी की अनदेखी की है।"

और तो और, शर्माजी उसे कैसी मुसीबत में छोड़ गए! उसके चारों तरफ लालची लोगों की भीड़ थी। उस माहौल से वह खुद को कैसे बचा पाती? अब कौन उसकी रक्षा कर सकता था? मैंने अपनी आँखों से देखा था कि कैसे देवधर और मुंशी सुमिताजी के घर से निकलते ही मुँह खोले ताक रहे थे - मानो उन्हें निगल जाएँगे। और मैंने उन्हें ऐसी गंदी बातें भी कहते सुना था जो मेरे कानों के लिए भी ठीक नहीं थीं! शायद शर्माजी ने यह सब नोटिस नहीं किया था। कितना भरोसा था उन्हें उन पर! उन्होंने मुंशी से यहाँ तक कह दिया था कि वे उन्हें अपनी बेटी का प्राइवेट ट्यूटर बना देंगे और उसकी पढ़ाई जारी रखने में मदद करेंगे!

कभी-कभी मेरा मन करता था कि शर्माजी से कहूँ:

"अरे शर्माजी! अपनी पत्नी और बेटी को लेकर इस धर्मशाला से भाग जाओ... वरना तुम ज़िंदा नहीं बचोगे, ये तुम्हें निगल जाएँगे! उनकी भूखी साँसें तुम्हें मिटा देंगी!"

अब मैं सोच रहा था कि क्या वाकई उन्होंने उसे खत्म कर दिया था। छत्र के द्वार में प्रवेश करते हुए यही सब मेरे मन में घूम रहा था। उस दिन मुझे छत्र में भरपेट भोजन करने की अनुमति मिली थी; लेकिन अंदर जाते हुए, कुछ याद आते ही मैं रुक गया।

मैंने सोचा, "अगर अभी धर्मशाला के अंदर सुमिता जी से आमना-सामना हो जाए, तो उनसे क्या कहूँगा, उनका सामना कैसे करूँगा? और एक बार अंदर पहुँच गया, तो उनसे बचना नामुमकिन हो जाएगा, क्योंकि वो दरवाज़े के पास ही रहती हैं। नहीं, यहाँ खाने की ज़रूरत नहीं - यहाँ से चले जाना ही बेहतर है!"

लेकिन जैसे ही मैं जाने के लिए मुड़ा, सामने सुमिता जी खड़ी थीं। एक हाथ से अपनी बेटी और दूसरे हाथ में पानी से भरा घड़ा लिए, वे यमुना में स्नान करके लौट रही थीं।

मैंने आँखों से कहा,

"तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई उसकी आँखों पर गिरने की?" और मैं सिहर उठा, मानो मैंने कोई भूत देख लिया हो!

एक आदमी की तरह जिसे सारी गोलियां निगलनी पड़ती हैं, मैं किसी तरह भाग जाना चाहता था और उसकी आँखों से बचना चाहता था... क्योंकि मैं उसे ऐसे में कैसे सांत्वना दे सकता था?

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

एक दुःख?

लेकिन ये क्या था? मुझे उसके चेहरे पर पहचान की एक मीठी, दीप्तिमान मुस्कान दिखाई दी! मैं रुक गया। मैं अपनी नज़रें नीचे करने ही वाला था, लेकिन कर नहीं पाया... वे उसकी नज़रों पर ही टिकी रहीं; और मैंने देखा कि वो सचमुच वही थी।

मुझ पर कृपापूर्वक मुस्कुरा रहे थे।

बेशक, यह बस एक पल के लिए था। अगले ही पल उसने नज़रें झुका लीं और चलते हुए बोली,

"नमस्ते बंगाली! कैसे हो? क्या तुम्हें कोई नौकरी मिल गई है?"

कमाल है! मुझे ही उसका हालचाल पूछना चाहिए था, पर वो तो मेरा हालचाल पूछ रही थी!

लेकिन वो मेरा जवाब सुनने के लिए रुकी नहीं... क्या वो जानबूझकर अपनी शर्म और गम छुपाने के लिए जल्दी से अपने कमरे में जा रही थी? कौन जाने? खैर, हाथ में गमछा लिए, गीले बालों को झटकते हुए, वो अपनी छोटी बेटी का हाथ पकड़कर तेज़ी से चली गई।

मैंने मन में सोचा:

"लेकिन यह क्या है? मुझे तो उसके पति की मृत्यु के शोक की ज़रा भी छाया नहीं दिख रही! और उसने विधवापन की निशानी, बिना किनारा वाला कपड़ा क्यों नहीं पहना है? उसने तो पहले जैसे ही कपड़े पहने हैं!"

लेकिन फिर मुझे समझ आया; मुझे याद आया:

"ओह, क्या मैंने खुद उस दिन सुमिताजी को ब्रजांगना नहीं कहा था? और क्या उन्होंने मुझे नहीं बताया था कि शर्माजी और श्रीकृष्ण उनके लिए एक ही हैं? तो मैं उनके चेहरे पर किसी तरह के शोक के चिह्न क्यों देखूँ? या उन्हें विधवा के रूप में देखना चाहूँ? ब्रजांगनाओं ने तो श्रीकृष्ण के प्रति अवैध प्रेम - विवाहेतर प्रेम - महसूस किया था! जब सांसारिक पति चला जाता है तो शोक करने की क्या बात है। क्योंकि वृंदावन के स्वामी श्रीकृष्ण सदैव अपनी ब्रजांगनाओं के साथ रहते हैं!"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार 161

पूर्वाह्न
नोट्स और संदर्भ

1. पटोल: ट्राइकोसेन्थेस डायोइका - एक हरी सब्जी।

2. 'ब्रजांगना' का अर्थ है व्रज या वृंदावन की महिला और यह विशेष रूप से श्रीकृष्ण की प्रेमिकाओं को संदर्भित करती है।

अध्याय दस

मिर्ज़ापुर धर्मशाला के इस अनुभव के बाद मैंने नौकरी की तलाश नहीं की। मैंने देखा था कि जिसके पास घर-बार नहीं है, उसे कोई काम नहीं देता; अगर काम मिलता भी, तो मजबूरी में और कुछ दिनों के लिए ही। कोई स्थायी और अच्छी नौकरी मिलना नामुमकिन था। इसलिए मैं पहले की तरह ही छत्रों से मिलने वाले पैसों पर गुज़ारा करता रहा।

यमुना में स्नान, गोपीनाथ मंदिर में भागवत पाठ और गोपियों के गीत सुनने में पूरा दिन इतना अच्छा बीतता था कि नौकरी की ओर मेरा ध्यान ही नहीं जाता था, और वास्तव में इसके लिए कोई अतिरिक्त समय ही नहीं बचता था।

लेकिन एक दिन, जब मैं गोपीनाथ मंदिर में भागवत पाठ के लिए सभागार की ओर जा रहा था, तो सड़क के किनारे मेरी मुलाकात मधु सोरकेल से हुई, और इससे मेरे मन में फिर से नौकरी का विचार आया।

मधु, जो लगभग मेरी ही उम्र का था, गोपीनाथ बाज़ार में सड़क किनारे स्टेशनरी की दुकान और पान-बीड़ी की दुकान लगाता था। वह खुद बीड़ी बनाता था, पत्तों को तंबाकू में लपेटकर उनके बंडल बनाता था; फिर उन्हें तार की जाली पर आग में रखकर तड़का लगाता था और ग्राहकों को बेचता था। दुकान अच्छी चल रही थी; बीड़ी बनाने में उसकी मदद के लिए दो और लोग रखे गए थे।

एक दिन जब मैं उसकी दुकान के पास से गुज़र रहा था, तो उसने बीड़ी बाँधने के लिए जो धागा बाँधा था, वह नीचे गिर गया और नाली में गिरने ही वाला था। मैंने उसे जल्दी से उठाया और वापस उसे दे दिया। यहीं से हमारी जान-पहचान शुरू हुई।

मधु ने मुझसे पूछा,

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

163

"रोज़ तुम मेरी दुकान के पास से गुज़रते हो... कहाँ जाते हो? ज़रा बताओ तो?"

"गोपीनाथ मंदिर में," मैंने जवाब दिया। "भागवत पाठ सुनने?" उन्होंने पूछा, "कोई आश्चर्य नहीं कि मैं तुम्हें हमेशा उसी समय देखता हूँ। क्या तुम जानते हो कि

मैं तुम्हें रोज़ देखता हूँ, और मैं तुम्हें कुछ बताने की सोच रहा था? लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। अब जब तुम खुद मेरे पास आए हो, तो कह दूँ..."

"आप कहना क्या चाहते हैं?"

"बेशक, यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है; फिर भी, मैं अब यह कहूँगा: हर दिन मैं तुम्हारे बारे में सोचता रहा हूँ क्योंकि तुम मुझे अमलेश की बहुत याद दिलाती हो। तुम बिल्कुल उसके जैसे दिखते हो!"

मैंने पूछा, "अमलेश कौन है?"

"अमलेश मेरा छोटा भाई है। वो मथुरा कॉलेज में इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा है। उसकी परीक्षाएँ जल्द ही आने वाली हैं, इसलिए वो हमसे मिलने घर कम ही आता है... वरना मैं चाहता हूँ कि तुम दोनों मिलो।"

"सचमुच? लाखों लोगों में, ऐसे कई लोग हैं जो एक जैसे दिखते हैं।" मैंने जवाब दिया।

"हो सकता है- लेकिन यह ख़ास समानता वाकई उल्लेखनीय है," उन्होंने कहा। "आपके चेहरे के नज़ारे, आपका आकार और बनावट - यहाँ तक कि आपके चलने का तरीका भी एक जैसा है। मैं आपको अपने घर आकर मेरी माँ से मिलने के लिए आमंत्रित करना चाहता हूँ," उन्होंने कहा।

"क्यों?" मैंने पूछा। "क्या मैं बिना किसी कारण के तुम्हारे घर जाऊँ?"

मधु ने उत्तर दिया, "अरे! बिना किसी कारण के क्यों? क्या कोई परिचित अपने परिचित के घर नहीं जाता?"

मैं हँसा, "पहचान से क्या मतलब है? पाँच मिनट में तो किसी को जान लिया जाता है?"

मधु ने कहा, "मुझे पता है कि समय कम रह गया है, लेकिन मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मैं तुम्हें बहुत लंबे समय से जानती हूँ। मुझे नहीं पता क्यों।"

"ठीक है," मैंने जवाब दिया, "कभी-कभी ऐसा होता है कि पहली मुलाक़ात से ही एक परिचय और नज़दीकी हो जाती है। लेकिन मुझे आपके परिवार से किसी और समय मिलना है - आज नहीं..."

उस दिन के बाद से, जब भी मैं भागवत कथा सुनने जाता, तो सबसे पहले मधु की दुकान पर कुछ मिनट रुकता। वह मुझे वृंदावन और मथुरा की कहानियाँ सुनाता और…

164

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

अपनी मातृभूमि और अपने घर। वह भी पूर्वी बंगाल से था। उसने मुझे बताया कि जब वह बहुत छोटा था, तब वह अपने माता-पिता और भाई के साथ पूर्वी बंगाल के जेसोर जिले से यहाँ आया था। उनके आने के कुछ दिनों बाद ही उसके पिता का देहांत हो गया और

परिवार पर कठिन समय आ गया। मधु को कई कठिनाइयों और कष्टों का सामना करना पड़ा, इसलिए वह अपनी पढ़ाई जारी नहीं रख सका।

मधु ने कहा, "मुझे ज़रा भी अफ़सोस नहीं है कि मुझे उच्च शिक्षा का मौक़ा नहीं मिला। आज मैं अपने पैरों पर खड़ी हूँ। ख़ुद तो पढ़ नहीं पाई, पर अपने भाई को मथुरा के इंजीनियरिंग कॉलेज में पढ़ा रही हूँ। कुछ समय बाद वह परीक्षा पास करके कोई वर्कशॉप खोल लेगा। तब मुझे कोई चिंता नहीं रहेगी। हाँ, अभी भी मुझे किसी बात की चिंता नहीं है! मैं अपनी स्थिति से पूरी तरह संतुष्ट हूँ। मुझे न तो परिवार के लिए खाने-पहनने की चिंता है, न ही किराए के मकान में रहना पड़ता है। इस दुकान से होने वाली कमाई के अलावा मेरे पास कुछ पैसे थे; मैंने मदन मोहन के मोहल्ले में ज़मीन का एक टुकड़ा ख़रीदकर एक मंज़िला ईंट का मकान बनवा लिया है।"

"आप किस मदन मोहन की बात कर रहे हैं? मदन मोहन ब्रजबासी?" मैंने जानना चाहा।

"क्या तुम्हें मदन मोहन का आकाश चूमता मंदिर नहीं दिख रहा?" उसने जवाब दिया। "उधर देखो - मेरा घर वहीं पास है।"

मैं उसकी निगाहों की दिशा का अनुसरण करता रहा, जब तक कि मेरी नजर एक विशाल मंदिर पर नहीं पड़ी, जिसके पास से मैं अक्सर गुजरता था, लेकिन कभी अंदर नहीं गया था।

"ओह! मतलब वो मदन मोहन का मंदिर है? मैंने तो कई बार देखा है, बस मुझे उसका नाम नहीं पता था।"

मधु ने आगे कहा, "जानते हो, मदन मोहन साक्षात देवता हैं। उनसे जो भी प्रार्थना करता है, वह पूरी हो जाती है। भक्तगण दूर-दूर से उन्हें धन भेजते हैं। दरअसल, उन्हीं की कृपा से मैं संकट से उबर पाई हूँ!"

मैंने पूछा, "अगर मदन मोहन इतने महत्वपूर्ण देवता हैं, तो उनकी अपनी हालत ऐसी क्यों है?"

"ऐसी से क्या मतलब है तुम्हारा? कैसी शर्त?" मधु नाराज़ हो गई।

"मेरा मतलब है, मदन मोहन का आकाश चूमता मंदिर इतनी जर्जर हालत में क्यों है? यह एक भव्य इमारत है, यह इतनी जर्जर क्यों है? क्या वह इसकी मरम्मत नहीं करा सकते?"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

165

मधु मेरी आलोचना से आश्चर्यचकित हो गया; लेकिन वह मेरे तर्क को स्वीकार करने से खुद को नहीं रोक सका।

मधु ने कहा;

"हाँ, आप जो कहते हैं वह सही है। लेकिन क्या मंदिर का स्वामी अपने घर की मरम्मत अपने हाथों से करेगा? उसे यह काम करवाना ही होगा।"

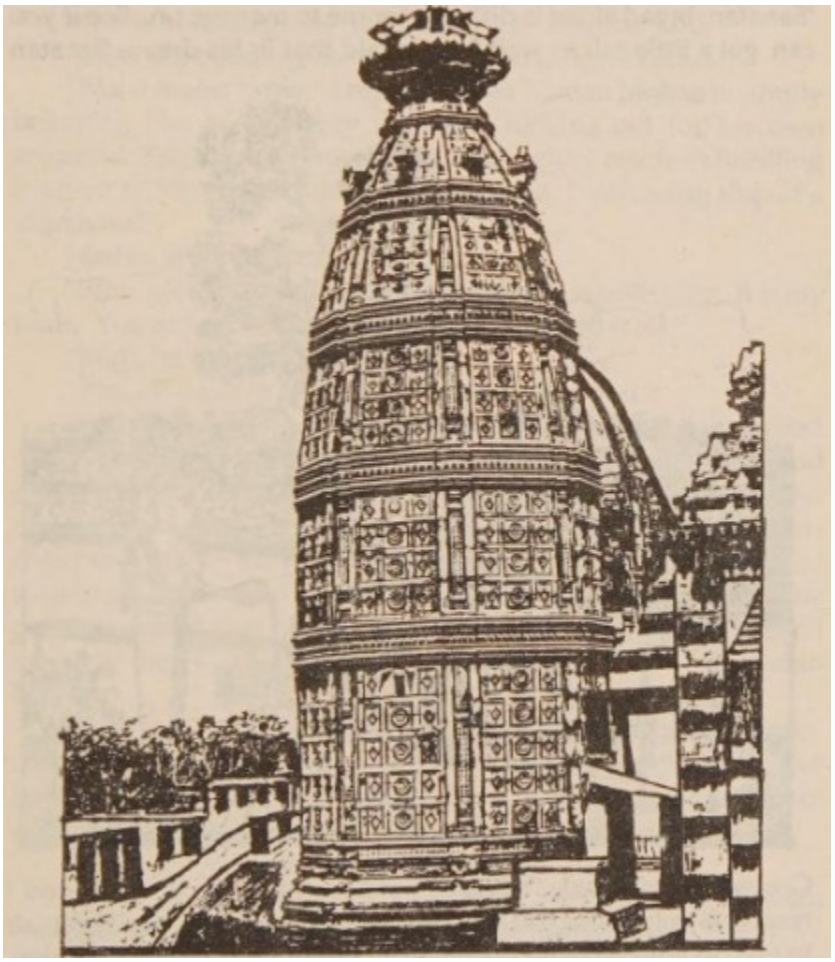

कोई तो है। पर ऐसा भक्त कहाँ है? अगर उन्हें सनातन गोस्वामी जैसा कोई और भक्त मिल जाए, तो यह मदन मोहन के लिए एक और स्वर्ण मंदिर बन सकता है! जब सनातन गोस्वामी ने मदन मोहन की इस प्रतिमा की स्थापना की थी, तब चावल और केले भी
166

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

देवता को अर्पित नहीं किया जा रहा था। मदन मोहन यमुना तट पर पत्तों की एक ही कुटिया में गोस्वामी के साथ रहते थे, और छत्रों में मद-हुकारी द्वारा गोस्वामी को दी जाने वाली सूखी रोटी ग्रहण करते थे। लेकिन आगे चलकर, यह मदन मोहन के लिए असहनीय हो गया। इसलिए एक दिन उन्होंने सनातन गोस्वामी से स्वप्न में कहा, 'सनातन, मेरे लिए केवल रोटी का प्रबंध करना कठिन है। देखो, क्या तुम्हें थोड़ा नमक भी मिल सकता है!' ऐसा कहा जाता है कि स्वप्न में सनातन

गोस्वामी ने उत्तर दिया, "आप मुझसे ऐसा करने की अपेक्षा नहीं कर सकते। मुझे जो भोजन मिलता है, वह केवल इस शरीर को जीवित रखने के लिए पर्याप्त है; मैं आपको देने के लिए नमक कहाँ से लाऊँ? मधुकरी से जो कुछ भी मिलता है, वह मैं आपके साथ बाँटता हूँ। यदि आप नमक खाना चाहते हैं, तो स्वयं कमाएँ।"

"और ऐसा कहा जाता है कि उसके बाद मदन मोहन ने अपनी ज़रूरतें पूरी कीं। उन्होंने एक अमीर व्यापारी का जहाज़ बंदी बना लिया और उससे हर दिन भोजन लेने की व्यवस्था की; और यहाँ तक कि

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

167

यह आकाश चूमने वाला मंदिर उसी व्यापारी द्वारा बनाया गया था।"

यह सब सुनकर मैंने कहा मधु:

और

"मैं इस कहानी से बहुत प्रभावित नहीं हूँ। आपके देवता की महिमा किसी भी अन्य वस्तु में हो सकती है, भाई - लेकिन इस घटना में, जिसके बारे में आपने मुझे अभी बताया है, कोई महिमा प्रकट नहीं हुई है!"

मधु मेरा उत्तर सुनकर आश्चर्यचकित हुई और बोली, "तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई ऐसा कहने की? क्या कोई महिमा प्रकट नहीं होती?"

"नहीं; मुझे तो ऐसा लगता है," मैंने कहा, "मदन मोहन तो बस एक साधारण आदमी की तरह अपना स्वार्थ साध रहा है! बताओ, तुम्हारे देवता की महिमा एक व्यापारी के अच्छे, चलते जहाज को रोककर अपना स्वार्थ पूरा करने में कैसे है?"

मधु ने मुझे रोकते हुए कहा,

"रुको, प्लीज़ रुको! मैंने तुम्हें पूरी बात नहीं बताई। यह मेरी गलती है। अगर तुमने सब कुछ सुना होता तो तुम ऐसा नहीं कहते।"

"ठीक है, तो फिर मुझे सब कुछ सुनने दो।"

"हाँ, मुझे तुम्हें सब कुछ फिर से समझाना पड़ेगा।"

मधु ने आगे कहा, "ऐसा लगता है कि व्यापारी सामान से भरा अपना जहाज लेकर यमुना नदी में चला गया था, और मदन मोहन ने वास्तव में गुप्त शक्ति से उसका जहाज रोक दिया, ताकि व्यापारी को दिखा सके कि वह कौन है; फिर उसने व्यापारी को अपनी पूजा करने का आदेश दिया, और कहा कि केवल तभी वह जहाज को आगे बढ़ने देगा। और यदि व्यापारी ने उसकी आज्ञा का पालन किया, तो देवता ने वादा किया कि उसका लाभ बहुत बढ़ जाएगा, और कहा कि तब उसे मदन मोहन के सम्मान में एक मंदिर का निर्माण करना चाहिए।

"और ऐसा ही हुआ। व्यापारी का मुनाफ़ा बहुत ज़्यादा हो गया। वह बहुत खुश हुआ और उसने खुशी-खुशी मंदिर बनवाया, जैसा उसे करने को कहा गया था। उसने सभी पूजा- अर्चना और अन्य अनुष्ठानों का खर्च भी वहन किया।...

"अब बताओ - इसमें स्वार्थ की क्या बात है?"

"ठीक है, शायद कुछ नहीं," मैंने जवाब दिया। "लेकिन अगर मदन मोहन मंदिर बनवाने का इंतज़ाम कर सकता है, तो फिर उसकी मरम्मत के लिए किसी दूसरे व्यापारी का इंतज़ाम क्यों नहीं कर सकता?"

"जैसा कि मैंने पहले कहा, शायद हाल ही में उन्हें ऐसा समर्पित अनुयायी नहीं मिल पाया है। इसके अलावा, हमने स्वयं भी बहुत प्रयास किया है—चंदा इकट्ठा करके, वार्षिक योगदान देकर, तीर्थयात्रा करके-

168

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

तीर्थयात्रियों से मिलने वाली उम्र-दर-साल की बचत - और हमने मंदिर की कई बार मरम्मत भी की है। लेकिन आखिर हम कितना कुछ कर सकते हैं? और मैं देश की सरकार पर आरोप लगाता हूँ। क्या देवता अपने मंदिर की रक्षा स्वयं करेंगे? क्या हमारी सरकार को इतने अच्छे मंदिर के रखरखाव में मदद नहीं करनी चाहिए? फिर सरकार है ही क्यों?"

मैंने उनकी बात का समर्थन किया: "यह सच है। मंदिर देश की संपत्ति और गौरव हैं। क्या उन्हें इस तरह से नष्ट किया जाना चाहिए? हमारे पूर्व सम्राट और राजा शाही खजाने से मंदिर, मस्जिद और स्मारक बनवाते थे और उनकी सुरक्षा का प्रबंध भी करते थे। वे समझते थे कि ये चीज़ें हमारे देश की संपत्ति का हिस्सा हैं। और अब राज्य की स्वतंत्र सरकार इस मामले में इतनी उदासीन है!"

जब भी मुझे मधु से मिलने का मौका मिलता, वे किसी न किसी कहानी से शुरुआत करते, मंदिरों, प्रतिमाओं, संतों, संन्यासियों और वृंदावन की घटनाओं के बारे में बताते और हमेशा देश की सरकार पर चर्चा करके अपनी बात समाप्त करते।

एक दिन उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या तुमने कभी किसी नाटक में अभिनय किया है?"

मैंने कहा, "नहीं। मैंने कभी नहीं पूछा। लेकिन आप ऐसा क्यों पूछ रहे हैं?"

"देखिए, हम एक नाटक का आयोजन कर रहे हैं। और हमारे पास एक अभिनेता कम है... क्योंकि हमारे ग्रुप का एक सदस्य शहर छोड़कर जा रहा है। अगर आप उसकी जगह ले सकें, तो हम बहुत आभारी होंगे। यह कोई बहुत बड़ा किरदार नहीं है। इसमें न तो ज़्यादा संवाद हैं और न ही ज़्यादा एक्शन। अगर आप इसे कुछ बार देखें, तो मुझे यकीन है कि आप इसमें पूरी तरह से फिट हो जाएँगे।"

"ठीक है," मैंने जवाब दिया, "मुझे नहीं पता कि मैं यह कर पाऊंगा या नहीं, लेकिन मैं कोशिश जरूर करूंगा।"

"मुझे यकीन है कि तुम ये कर सकते हो," उन्होंने कहा। "जब मैंने अपनी पार्टी को तुम्हारे बारे में बताया तो उन्हें बहुत राहत मिली। हमारे पास ऑडिशन देने के लिए पर्याप्त समय नहीं बचा है।"

"आपने उन्हें मेरा नाम पहले ही बता दिया है? अगर मैंने 'नहीं' कह दिया होता तो क्या होता?" मैंने पूछा।

"लेकिन तुमने तो कहा था कि तुम कोशिश करोगी!" उसने मुस्कुराते हुए जवाब दिया। और मेरा हाथ खींचते हुए उसने कहा, "चलो, अब क्लब चलते हैं।"

हालाँकि मैंने मधु को यह बात समझाने में ज़्यादा वक़्त नहीं लगाया, पर अंदर ही अंदर बहुत खुशी हुई। यह नाटक मुझे बहुत से लोगों से मिलवाएगा।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

169

वृंदावन में बहुत से लोग... और शायद मुझे नौकरी खोजने का अवसर भी दे!

उस शाम मधु मुझे क्लब ले गई। यह गोपीनाथ बाज़ार में मधु की दुकान वाली गली में स्थित एक इमारत की दूसरी मंज़िल पर था। प्रवेश द्वार के ऊपर एक पुराना, जीर्ण-शीर्ण साइनबोर्ड लटका हुआ था जिस पर लिखा था, 'श्री गौरांग ड्रामेटिक क्लब'।

इस कमरे की दीवारों पर पुरानी पोशाकें, तलवारें, हथियार और सभी प्रकार की नाटकीय सामग्रियाँ लटकी हुई थीं।

बाकी कलाकार अभी तक नहीं आए थे। बस निर्देशक ही दिखाई दे रहे थे, जो एक स्टूल पर बैठकर सिगरेट पीते हुए किताब पढ़ रहे थे। मधु ने मेरा उनसे परिचय कराया:

"ये मेरे दोस्त विजयबाबू हैं... जिनके बारे में मैंने तुमसे बात की थी।" विजयबाबू ने मुझे इशारा किया, "आइए, इधर आइए और बैठिए।" वे मेरे साथ बहुत दोस्ताना व्यवहार में थे। "क्या आपने पहले भी अभिनय किया है, या यह आपकी पहली फ़िल्म है?" उन्होंने पूछा।

मुझे डर लग रहा था कि वो मेरे बारे में क्या कहेगा। मधु समझ गई और पहले बोल पड़ी,

"पहले उसे अभिनय करते देखो और फिर निर्णय लो... वरना मैं उसे तुम्हारे पास क्यों लाता?"

निर्देशक मुस्कुराए। "ज़रूर, मैं पढ़ूँगा।" उन्होंने मुझे वह किताब दी जो वे पढ़ रहे थे और कहा, "लो, इसे ज़ोर से पढ़ो।"

फिर उन्होंने मुझे समझाया, "आपके सामने एक और अभिनेता है। आप उसी प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं जो उन्होंने आपसे पूछा है।"

मैंने पढ़ना शुरू किया। कुछ वाक्यों के बाद उन्होंने मुझे रोक दिया, "ठीक है, बस हो गया।" उन्होंने किताब ली और कुछ और पन्ने पलटे। "अब यहाँ से शुरू करो," उन्होंने कहा। "यह मंच पर हो रही गतिविधियों का विवरण है। इसे पढ़ो ताकि तुम्हें समझ आ जाए कि क्या करना है।"

और उन्होंने आगे कहा, "तुम उन तीन मोटे ब्राह्मणों में से एक हो जिन्हें खाने का बहुत शौक है। तुम तीनों मंच के उस तरफ से प्रवेश करोगे, बातें करोगे, हँसोगे और तरह-तरह की खाने की चीज़ें लेकर आओगे। तुम्हारा काम दर्शकों को हँसाना है। यह मुश्किल नहीं है, लेकिन इसके लिए ज़रूरी है कि तुम इसे लेकर संकोची न होओ।"

मुझे नहीं पता था कि मैं यह कैसे करूँगी। लेकिन पहली रिहर्सल में ही मुझे लगा कि यह सब मेरे लिए बिल्कुल स्वाभाविक हो गया है। निर्देशक बहुत खुश हुए। "किसको पता होगा कि यह तुम्हारा पहला नाटक ही है? तुम्हारा

170

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

उन्होंने कहा, "यहाँ काम हमारे समूह के कई लोगों के काम जितना ही अच्छा है।"

कुछ दिनों बाद, अश्विनी बाबू के मंदिर में भक्त हरिदास या हरिदास नामक नाटक का मंचन हुआ। मंदिर के विशाल हॉल में, अस्थायी मंच और ड्रेसिंग रूम के पास, एक तरफ़ पुरुषों, महिलाओं और बच्चों की भीड़ जमा थी। पुरुषों और महिलाओं के लिए अलग-अलग बैठने की व्यवस्था थी, और एक बड़े हरे-भरे मंच की भी विशेष व्यवस्था थी।

यह पहली बार था जब मैं किसी नाटक में शामिल हुआ था। मैं अब भी उसी गुफा में जी रहा था, कुछ 'खुदरा छत्रों' की कृपा पर, जहाँ सिर्फ़ एक रोटी और थोड़ी सी दाल मिलती थी। दोपहर के खाने के लिए मैं पाँच-छह छत्रों से पाँच-छह रोटियाँ ले आता था, और रात को मुझे बिना कुछ खाए-पिए रहना पड़ता था। लेकिन नाटक में मेरा किरदार एक मोटे और पेटू ब्राह्मण का था। मेरे खाली पेट को उस लालची आदमी के बेतुके पेट को दिखाने के लिए भारी भरकम बनाया गया था, हालाँकि अंदर से मैं भूखा था। जब मैं पेटू ब्राह्मण का किरदार निभा रहा था, अपने साथी कलाकारों के साथ कदम मिला रहा था, अपने हाथ-मुँह हिला रहा था और पेटू को नचा रहा था, तो अचानक मुझे चक्कर आने लगा... इतना कि मुझे डर लगा कि मैं दर्शकों के बीच गिर पड़ूँगा!

लेकिन ये बस कुछ ही देर चला; अचानक मुझमें एक नई ऊर्जा का संचार हुआ। मेरा चक्कर चला गया। क्योंकि मैंने खुद से कहा,

"तुम बेहोश क्यों हो जाओगी? शर्म के मारे? शर्म कहाँ है? क्योंकि हज़ारों आँखें तुम्हें देख रही हैं? लेकिन, तुम्हें पता है, उनमें से कोई भी तुम्हें पहचान नहीं पाएगा! तो फिर बेहोश क्यों हो जाओ?"

शब्द तो बिल्कुल ये नहीं थे, लेकिन मैंने उस पल अपने मन को कुछ ऐसे ही आत्म-सुझाव सुना दिए। और इसका असर हुआ: चेतना मेरे शरीर से बाहर नहीं गई और मेरा अभिनय उत्कृष्ट हो गया!

निर्देशक मेरे अभिनय से बहुत खुश हुए, और नाटक चल ही रहा था कि उन्होंने मुझे किसी दूसरे छोटे कलाकार की जगह, जो नहीं आया था, काम करने को कहा। इसके लिए कपड़े बदलने की ज़रूरत नहीं थी, न ही समय था।

श्री चैतन्य के बारे में इस गाथा में, वे और उनके वफादार साथी नित्यानंद अपने एक भक्त श्रीनिवास पंडित के घर अचानक मिलने जा रहे थे। यह खबर तेज़ी से फैल गई थी। यह सुनकर भक्त हरिदास और अद्वैत आचार्य

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

171

वहाँ गए। कीर्तन गायकों का एक समूह भी आनंदपूर्वक उनके पीछे-पीछे चला।

□□□□ □□□□□ □□□□□□□□□□ □□□□□ □□ □□□□ □□□, □□□ □□□□□, □□ □□□□□□ □□□ □□ □□□ □□□□ □□□ □□□□ □□□ □□□□ □□□ □□ □□□□□□ □□□□□□ □□ □□□ □□□ □□□ □□ □□□□ □□□□ □□□, □□ □□□□ □□□□ □□□ □□□□, □□□□□□ □□ □□□□□ □□□ □□□□□□ □□□□ □□□

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

उन पर पुष्पमाला पहनाई और उनके गले में माला पहनाई। सभा में उपस्थित अन्य भक्तों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए।

जैसे ही मैंने अपना किरदार निभाना शुरू किया, कुछ हुआ। मैं भूल गया कि मैं कहाँ हूँ... किसी पंडित के घर में, वृंदावन में, या मंच पर; मैं यह भी भूल गया कि मैं कौन हूँ... मानो मैं स्वयं रमाई पंडित बन गया हूँ, और सचमुच मेरे सामने साक्षात् चैतन्य देव और नित्यानंद ही खड़े थे। मैंने जो महसूस किया या जो देखा, उसे कैसे बयां करूँ?

दर्शक भी इस प्रस्तुति से अभिभूत थे। इतना सहज, सहज मौन अभिनय उन्हें विस्मय से भर रहा था। वे एक-दूसरे से पूछ रहे थे,

"रमई पंडित की भूमिका कौन निभा रहा है? हमने उसे पहले नहीं देखा... वह कौन है?"

नाटक के अंत में मधु मुझे एक तरफ ले गई और बोली,

"आप जानते हैं, मेरे दोस्त, यह हमारा शौकिया प्रदर्शन है - पेशेवर नहीं।"

"इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है?" मैंने जवाब दिया। "यह ख़त्म हो चुका है और बस यही मायने रखता है।"

उन्होंने कहा, "खैर, मेरा मतलब है कि इसके बाद कोई जश्न नहीं मनाया जाता... जबकि पेशेवर खिलाड़ियों को खेल के अंत में जश्न मनाना चाहिए।"

"वह क्या है?"

"अभिनेताओं के स्वागत की व्यवस्था। हमारे पास ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। हम अपना नाटक प्रस्तुत करते हैं, और हममें से प्रत्येक अपने घर में खाता है और अपनी जेब से खर्च करता है।"

"यह बहुत अच्छा है! मैं भी अपनी भूमिका देवता को अर्पित कर सकता हूँ!"

मधु बोली, "आप ऐसा कर सकते हैं, लेकिन मैं आपको इतनी रात को बिना खाए नहीं जाने दे सकती! आज रात आपको मेरे घर आना होगा। मैं इतने दिनों से इस मौके का इंतज़ार कर रही हूँ - मैं आपकी आपत्तियों पर ध्यान नहीं दूँगी!"

"अरे नहीं मधु!" मैंने तर्क दिया, "यह ठीक नहीं है। मैं तो सड़क का आदमी हूँ। क्या तुम जानती हो मैं कहाँ रहता हूँ? मैं साधुओं और भिक्षुकों के साथ एक गुफा में रहता हूँ। तुम ऐसे आदमी को अपने घर कैसे रख सकती हो?"

"आप जो भी हों, आज रात आप मेरे सम्मानित अतिथि हैं! चलिए। बहुत देर हो चुकी है। मेरी माँ ने आपके लिए जलपान की व्यवस्था की है और वह आपका इंतज़ार कर रही हैं।"

इसके बाद उस पर आपत्ति करना संभव नहीं रहा। मैं मधु के साथ उसके घर गया।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

173

और सच में, उसकी माँ हम दोनों के लिए खाना तैयार करके, बर्तनों में सजाकर इंतज़ार कर रही थी। अगर मैं वहाँ न जाता, तो मैं एक अपराध करता।

मधु से मैंने पहले ही सुना था कि वे बहुत अमीर हैं; लेकिन मैंने कभी नहीं सोचा था कि वे इतने अमीर होंगे। जब मैंने उसका घर देखा, तो मुझे एहसास हुआ कि वे वाकई बहुत पैसे वाले हैं। उसका एक मंज़िला घर कई प्लॉटों में फैला हुआ था, और वहाँ पलंगों और दूसरे फ़र्नीचर की कोई कमी नहीं थी। मुझे उम्मीद थी कि मुझे दो सूखी रोटियाँ मिलेंगी... हैरानी की बात यह रही कि मुझे ताज़ी, गरमागरम लुचियाँ (घी में तली हुई रोटी) और एक खास सब्ज़ी, साथ ही बंगाली मिठाई... रसगुल्ला परोसी गई!

मधु की माँ मेरे पास बैठीं और हम दोनों को लुची, सब्ज़ी और रसगुल्ला खिलाया। उन्होंने मुझसे कहा,

"इतने दिनों से क्यों नहीं आए बेटे? तुम मधु के दोस्त हो। आते हुए शर्म क्यों आती है? जब चाहो फिर आ जाना।"

फिर वह मेरे घर और परिवार के बारे में पूछने लगी और स्नेह भरे स्वर में बोली,

"अरे बेटा! तुम वृंदावन में ऐसी हालत में क्यों रह रहे हो? अपने घर वापस क्यों नहीं चले जाते?"

मैंने कहा, "मैं किसके पास लौट जाऊं? मेरे माता-पिता अब जीवित नहीं हैं।"

"ओह, इसीलिए तो इधर-उधर भटक रहे हो! हाय!" लेकिन उसके पास और कोई अच्छी सलाह देने का समय ही नहीं था। नाटक खत्म होते-होते बहुत देर हो चुकी थी, और अब ज़्यादा समय खाने-पीने और बातें करने में बीत चुका था; इसलिए मैं उसके स्नेह से आसानी से बच सकता था। और शायद इसलिए कि बहुत देर हो चुकी थी, मधु के इस दोस्त, जो मधु के भाई जैसा दिखता था, को देखने घर का कोई और नहीं आया! मैं हर तरफ से बच गया।

लेकिन मधु ने खाना खत्म होने के बाद भी मुझे जाने नहीं दिया। उसने कहा,

"इतने बजे कहाँ जाओगे? माँ ने तुम्हारे लिए बिस्तर लगाया है, उस पर थोड़ा आराम कर लो!"

कितना अच्छा दिन था! बहुत लंबे समय के बाद, वह रात मारिहू के घर में स्वादिष्ट व्यंजनों और असली बिस्तर पर एक सुंदर, आरामदायक मोटे गद्दे के साथ समाप्त हुई!

174

मिराक्लेस स्टीली हैपन इन बृन्दावन

खैर, नाटक ने अपना उद्देश्य पूरा कर दिया था - उस नाटक में अभिनय करने का मेरा उद्देश्य वास्तव में पूरा हो गया था: इसके माध्यम से मैं वृंदावन के कई लोगों

से परिचित हुआ। क्लब रूम में पहली बार प्रवेश करते ही मेरा कई लोगों से परिचय हुआ; फिर जब ग्रीन-रूम में मेरा मेकअप हो रहा था, तो और भी ज़्यादा उत्सुक निगाहें मुझ पर पड़ने लगीं। सबके मन में बस एक ही सवाल था: "यह अपरिचित आदमी कौन है? हम इसे क्यों नहीं जानते? यह हमारी नाटक पार्टी में कैसे आ गया?"

मुझे शरतचंद्र की पात्र कमल लता की तरह उन्हें उत्तर देने की इच्छा हुई:

"आप मुझे जानते हैं, महोदय; आप मुझे जानते हैं; आप मुझे बहुत समय से वृंदावन की गलियों और स्नान स्थलों पर देखते आ रहे हैं। लेकिन आप जानबूझकर मुझे पहचानने से इनकार कर रहे हैं, कहीं ऐसा न हो कि आपको मुझे नौकरी देनी पड़े!"

लेकिन अब हालात बदल चुके थे। अब मेरी अपनी एक पहचान थी: मधु की दोस्त!

दामोदर मंदिर के सेवायत श्री गोस्वामी, ड्रामेटिक क्लब के संरक्षकों में से एक थे। अगले दिन जब मैं उनसे गली में मिला, तो उन्होंने मुझे पहचान लिया और पूछा, "क्या कल रमई पंडित का किरदार आपने ही निभाया था?"

"जी हां, सर।" मैंने जवाब दिया।

"मुझे हैरानी है कि मैंने तुम्हें क्यों नहीं पहचाना। मुझे बताया गया था कि वह मधु का दोस्त है, लेकिन मैं समझ नहीं पा रहा था कि मधु का यह दोस्त कौन है जिसे मैं नहीं पहचान पा रहा हूँ!"

"मैं मधु का नया दोस्त हूँ।" मैंने जवाब दिया।

"ओह, मैं समझ गया। आप कहाँ रहते हैं?"

बोला, "मैं पास ही एक गुफा में कुछ साधुओं और भिखारियों के साथ रहता हूँ।"

उसने फिर पूछा: "गुफा में क्यों?"

फिर मैंने खुद को उसे पूरी कहानी बताते हुए पाया, और अंत में कहा,

"देखिए, मैं एक छत्र से दूसरे छत्र में नहीं जाना चाहता - मुझे कहीं नौकरी चाहिए। मैंने कई लोगों से पूछा, लेकिन कोई भी मुझे नौकरी नहीं दे सका। क्या आप मेरी मदद कर सकते हैं?"

श्री गोस्वामी यह सुनकर बहुत खुश हुए कि मैं काम की तलाश में हूँ। उन्होंने कहा,

"तुम काम करना चाहते हो? आह, यह बहुत अच्छा संकेत है! यहाँ कोई नहीं है

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

175

आजकल काम करना चाहता है। अगर छत्रों में खाना इतनी आसानी से मिलता हो, तो कौन काम करना चाहेगा? तो आप अलग हैं!"

"हाँ, मुझे सचमुच कुछ काम चाहिए"। मैंने जवाब दिया।

"ठीक है, मेरे साथ मेरे घर चलो"। उसने कहा।

दामोदर मंदिर के सेवक होने के बावजूद, श्री गोस्वामी ऐसे पुजारी नहीं थे जो केवल देवता की पूजा करके चावल और केले कमाते हों। उनके नाम से ही पता चलता था कि वे बंगाल के नवद्वीप के पूजनीय गोस्वामी परिवार के वंशज थे। उनकी विशाल हवेली दामोदर मंदिर के पास मुख्य सड़क के किनारे स्थित थी। एक बड़ा खुला परिसर था। उसके एक ओर बगीचा था और दूसरी ओर एक गौशाला, मुख्य द्वार तक पहुँचने से पहले। वे स्वयं हमेशा साफ-सुथरे और फैशनेबल दिखते थे, किसी शहरी सज्जन की तरह सूट-कोट पहने रहते थे, और उनके मुँह में हमेशा एक महँगा सिगरेट होल्डर रहता था। मुझे याद आया कि किसी न किसी छत्र पर जाते समय मैंने उन्हें अक्सर धनी सेठों के साथ उनके बैठकखानों में बातें करते देखा था। सेठों के साथ उनकी गहरी आत्मीयता प्रतीत होती थी।

श्री गोस्वामी ने मुझे अपने घर बुलाया और बैठने की जगह दी। वे भी एक कुर्सी खींचकर बैठ गए। फिर उन्होंने मुझसे पूछा,

"मुझे बताओ कि तुम किस तरह की नौकरी चाहते हो।"

मैंने कहा, "आप मुझे जो भी काम देंगे मैं करूंगा।"

"सचमुच? कोई काम है?" श्री गोस्वामी ने मेरी बात दोहराई।

"जी श्रीमान।"

"ठीक है!" उसने कहा। "अच्छा, तुम्हारी शिक्षा क्या है?"

जब उसने मुझसे यह सवाल पूछा, तो मुझे लगा कि शायद उसके पास खुद मेरे लिए कोई काम न हो, लेकिन हो सकता है कि वह मुझे अपने किसी अमीर दोस्त के यहाँ सोर्न सेठ के ऑफिस में काम पर रख ले - शायद कोई अकाउंटिंग का काम। यह सोचकर मैंने उससे कहा,

"जी सर - मैं कॉलेज में पढ़ रहा था..."

श्री गोस्वामी यह सुनकर चौंक गये।

"क्या? क्या कहा तुमने? तुम कॉलेज में पढ़ रहे थे?" ऐसा लगा जैसे उसके उत्साह की लौ अचानक बुझ गई हो।

"सर, क्या बात है? आप निराश क्यों हैं?" मैंने पूछा।

"तुम कम से कम कुछ तो पढ़े-लिखे हो... फिर मैं तुम्हें किस तरह का काम दे सकता हूँ?" - और वह काफी निराश लग रहा था!

फिर मैंने सोचा, "हाय! मैंने क्या किया? ऐसा क्यों किया?"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

मुझे उसे अपनी शिक्षा के बारे में बताना होगा?

मैंने ज़ोर से श्री गोस्वामी से कहा, "अगर मुझे यह पता होता, श्रीमान, तो मैं आपसे अपनी शिक्षा का ज़िक्र कभी न करता। मैं कहता, 'मैं बिल्कुल अनपढ़ हूँ!' लेकिन सच तो यह है कि मैं झूठ नहीं बोल सकता। ये शब्द मेरे मुँह से निकल ही नहीं सकते। यही मेरी समस्या है!"

"लेकिन अगर तुम झूठ बोलोगे, तो कौन यकीन करेगा? तुम्हें पहली बार देखते ही मुझे शक हुआ था। मैंने सोचा था - "यह युवक उन लोगों जैसा नहीं है जो छत्र दर छत्र भीख मांगते हैं।" इसीलिए मैंने तुम्हारी शिक्षा के बारे में पूछा था।"

मैंने फिर भी उसे समझाने की कोशिश की और कहा,

"लेकिन गोस्वामी जी, अब मैं एक सड़क के भिखारी से बेहतर नहीं हूँ। अब मुझे कुछ ही छत्र खाना देंगे; तो इन परिस्थितियों में, मेरी शिक्षा का क्या मूल्य है? मैं आपसे कहता हूँ, आप मुझे जो भी काम देंगे, मैं उसे बड़े आनंद से करूँगा।"

श्री कोस्वामी ने कहा, "क्या यह कभी संभव है? क्या एक शिक्षित व्यक्ति सभी प्रकार के काम कर सकता है?"

"ठीक है, मुझे कोई भी काम दे दो और देखो..."

"नहीं। यह संभव नहीं है। मैं किसी पढ़े-लिखे आदमी को कोई भी काम कैसे दे सकता हूँ? अगर तुम काम भी कर दोगे, तो भी मैं तुम्हें काम नहीं दे पाऊँगा।"

"यह आपकी उदारता है, गोस्वामी जी। लेकिन मेरे नज़रिए से, मैं हर तरह का काम कर सकता हूँ... मुझे आज़मा कर देखिए!"

लेकिन श्री गोस्वामी उसी धुन में आगे बढ़ते रहे:

"नहीं, यह संभव नहीं है। आपसे हर तरह के काम करवाना संभव नहीं होगा।"

बहुत विनती करने के बाद आखिरकार उन्होंने कहा,

"ठीक है, मैं तुम्हारे लिए नौकरी ढूँढ़ने की कोशिश करूँगा। किसी और दिन फिर आना और देखूँगा कि मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ।"

ये कहकर वे कमरे से बाहर चले गए, और मैं भी जाने ही वाला था कि मैंने देखा कि श्री गोस्वामी की पत्नी और उनके दोनों बेटे मेरी ओर आ रहे थे। उन्होंने दूसरे कमरे के बरामदे से हमारी बातचीत सुन ली थी। जैसे ही श्री गोस्वामी कमरे से बाहर निकले, उनके दोनों छोटे बेटों ने मुझे वापस बुलाया:

"थोड़ा इंतज़ार करें, सर।"

ऐसा लग रहा था जैसे वे टेनिस खेलने जा रहे हों। उनके हाथों में टेनिस रैकेट थे। वे मेरे पास आए और मुझे सिर से पैर तक गौर से देखते हुए बोले,

"शाबाश! शाबाश! आप बहुत चालाक होंगे जो इतनी दूर तक आ गए

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

177

आपकी पढ़ाई!"

"तुम्हें ये इतना चालाक क्यों लग रहा है? तुम दोनों भी तो कॉलेज में पढ़ रहे हो ना? तुमने भी वही किया होगा जो मैंने किया है।" मैंने जवाब दिया।

उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया, बल्कि हँसने लगे। तब दोनों में से बड़े ने कहा,

"मैं आपकी बात मानता हूँ। लेकिन वृंदावन आपको ऐसी कौन सी सेवा देगा जो एक कॉलेज छात्र के योग्य हो? क्या यहाँ कोई ऐसा कार्यालय है जहाँ आप कार्यालय का काम कर सकें?"

"क्या दफ्तरों में कोई नौकरियाँ नहीं हैं? कैसी हैं? मैंने कई व्यापारियों को देखा है जिनके पास मुनीम और क्लर्क हैं। मैंने कई दफ्तरों में टाइपराइटरों की आवाज़ सुनी है। इसके अलावा बड़े-बड़े प्रिंटिंग प्रेस, दुकानें वगैरह भी हैं... फिर भी आप कहते हैं कि दफ्तरों में कोई नौकरियाँ नहीं हैं?"

"लेकिन ये तो बस घरेलू पद हैं। कोई असली ऑफिस की नौकरी नहीं है जिस पर आपको नियुक्त किया जा सके। लेकिन हिम्मत मत हारिए... यहाँ एक नौकरी उपलब्ध है जो आपके लिए बिल्कुल उपयुक्त है..."

"यह क्या है?" मैंने उत्सुकता से पूछा।

"झांझ!"

"झांझ? क्या मतलब है तुम्हारा?" मैंने पूछा।

"हाँ, क्या आप झांझ बजा सकते हैं? कीर्तन पार्टियों को हमेशा एक आदमी की ज़रूरत होती है जो झांझ पर साथ दे - हर हाथ में झांझ और मुँह में 'हरे कृष्ण, हरे राम'!"

बोलते समय वे झांझ बजाने की नकल भी कर रहे थे।

मैं उनके पैरिटो-माइम को देखकर मुस्कुराये बिना नहीं रह सका।

"नहीं, यह मज़ाक नहीं है। यह बिल्कुल सच है!" उन्होंने कहा। "क्या तुम 'हरे कृष्ण, हरे राम' बोल पाओगे और झाँझ बजा पाओगे? वृंदावन में यही एक काम है!"

"अहा!" मैंने कहा। "कॉलेज के छात्र जैसी नौकरी कौन चाहेगा? मैं तो लगभग कुछ भी करने को तैयार हूँ - चाहे सड़क पर झाड़ू लगाना हो या खेतों में गाय चराना हो।"

"सच?" वे बोले। "क्या तुम गायें पाल सकते हो?"
"ज़रूर, क्यों नहीं? वृंदावन में गायों की देखभाल करने में क्या शर्म है? क्या आपने रवींद्रनाथ टैगोर की कविता 'जन्मांतर - पुनर्जन्म' नहीं पढ़ी?" "पुनर्जन्म? रवींद्रनाथ टैगोर की एक कविता? क्यों? यह किस बारे में है?"
178
वृंदावन में घटित होते हैं चमत्कार
"क्या आप सुनना चाहते हैं कि इसमें क्या लिखा है?"
और मैंने तुरन्त उन्हें कविता सुनाई, जो उन्होंने पढ़ी थी:
"मैं सभ्यता के ज्ञान को त्यागने के लिए तैयार हूं;
मैं नए बंगाल में नए युग का नेता नहीं बनना चाहता;
अगर मैं विदेशी डिग्री के लिए विदेश नहीं जाऊं तो क्या नुकसान है? और अगर मुझे राजा की उपाधि न मिले तो क्या नुकसान है?
काश मैं अपने वृंदावन का एक ग्वाला बन पाता
अगला जन्म
मैं सभ्यता की उन रोशनियों को बुझा दूँगा जो जल रही हैं
मेरा घ।"
उन दोनों ने मुझसे पूछा,
"इसका मतलब क्या है?"
"क्या आप समझ नहीं पाए? रवींद्रनाथ अगले जन्म में वृंदावन का ग्वाला बनने की इच्छा रखते थे। वे विश्वविख्यात कवि थे; उनके लिए इस जन्म में नाम, यश, प्रभाव और सम्मान त्यागकर ग्वाला बनना संभव नहीं था... इसलिए उन्होंने अपना दुःख और लालसा यह कहकर व्यक्त की- 'काश मैं अगले जन्म में वृंदावन का ग्वाला बन पाता!' लेकिन मुझ पर रवींद्रनाथ जैसी कोई पाबंदी नहीं है। मैं इसी जन्म में - यहीं और अभी - वृंदावन का ग्वाला बन सकता हूँ! मुझे अपने गाय-बैल और बछड़े दे दो... मैं उन्हें चरागाहों में चराने के बाद उनके साथ लौट आऊँगा!"
यह सुनकर वे हंसने लगे।
बड़े भाई ने कहा,

"हुर्रे! उसका हास्यबोध भी बहुत अच्छा है! वह कहता है कि वह वृंदावन में ग्वाला बनने का सौभाग्य चाहता है!"

"हाँ, बिल्कुल!" उसके छोटे भाई ने उसका समर्थन करते हुए कहा: "और उसने रवींद्रनाथ को भी पढ़ा है... इसलिए अब वह यहाँ गाय चराना चाहता है!"

और फिर दोनों भाई जोर से हंसने लगे।

"मुझे उन्हें क्यों नहीं पढ़ना चाहिए था? मैं रवींद्रनाथ टैगोर और विद्यासागर की मातृभूमि से हूँ। मैं बचपन से ही उनकी किताबें पढ़ता आ रहा हूँ।"

"ठीक है," वे हँसते हुए बोले। "तुमने उन्हें पढ़कर अच्छा किया। लेकिन हमारे घर में सिर्फ़ दो मवेशी हैं - एक गाय और उसका बछड़ा - हमें नहीं पता था कि तुम उन्हें चराने आओगे; इसलिए हमने पहले ही एक आदमी को उन दोनों गायों की देखभाल के लिए रख लिया है जो हमारे पास हैं।"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

179

"हाँ, है। अगर हम अब तुम्हें उस काम के लिए रख लें, तो वह बेचारा जो पहले से ही नियुक्त है, नौकरी से बाहर हो जाएगा!"

"तो क्या आप यह कह रहे हैं कि आपके पास मेरे लिए कोई नौकरी नहीं है?" मैंने आखिरी बार पूछा।

बड़े भाई ने एक क्षण सोचा और फिर कहा, "अच्छा, चलो एक बार वहाँ चलते हैं। मैं तुम्हें हमारे पुजारी के पास ले चलता हूँ। वह कुछ मदद की तलाश में हैं।"

दामोदर का विशाल मंदिर उनके घर के ठीक बगल में था। उन्होंने मुझे मंदिर के प्रांगण में ले गए। मंदिर के बगल वाले कमरे के बरामदे में हम पुजारी से मिले। मुझे देखकर पुजारी ने उनसे पूछा,

"हे बड़े भाई! यह नया चेहरा कौन है?"

फिर बड़े भाई ने मेरा उनसे परिचय कराते हुए कहा, "यह नया चेहरा किसी भी तरह की नौकरी चाहता था, और हम इसे आपके लिए लाए हैं। आप लंबे समय से किसी की तलाश में थे, तो क्यों न इसे नियुक्त कर दिया जाए?"

इस ब्राह्मण को दमा की बीमारी थी। यह संक्षिप्त बातचीत भी उसके लिए कठिन थी। वह मंदिर के बरामदे में बैठ गया।

"हाँ," उन्होंने कहा, "ज़रूर मैं एक मददगार ढूँढ रहा हूँ। मेरा काम इस शरीर के लिए बहुत ज़्यादा है। रोज़ दो-तीन बार नहाना भी बहुत मेहनत का काम है। मैंने तुम्हारे पिताजी से कई बार इस बारे में कहा है, लेकिन अगर कोई मिलता ही नहीं, तो वे क्या कर सकते हैं?"

फिर वह मेरी ओर मुड़ा और पूछा,

"क्या आप मूर्ति की सेवा का दायित्व संभाल सकते हैं, भाई?"

मैं क्या कहता? मैं अवाक रह गया। यह सेवा तो ब्राह्मणों को ही करनी चाहिए, और उन्होंने मेरी जाति भी नहीं पूछी थी। फिर भी उन्होंने कहा, "क्या तुम मूर्ति- सेवा का भार संभाल सकते हो?" फिर क्या यह सेवा कोई भी कर सकता है?

मुझे उन्हें बताना पड़ा,

"लेकिन मैं ब्राह्मण नहीं हूं - मैं मूर्ति-सेवा कैसे कर सकता हूं?"

मैंने पादरी के रवैये में तुरंत बदलाव देखा। वह थोड़ा चौंका और सतर्क हो गया; पहले तो वह सहजता से बोल रहा था, लेकिन अब उसने खुद को रोका और पूछा,

"तो फिर भाई, तुम किस जाति के हो?"

मैंने सोचा कि अगर वे बस
180

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

मेरा उपनाम सुना, तो मैंने स्पष्ट रूप से समझाया:

"मैं ब्राह्मण नहीं हूँ। लेकिन मैं बंगाल में घोष, बोस, रॉय, मंडल, चौधरी जैसी ही जाति का हूँ।"

मानो मेरा जवाब सुनकर पुजारी को बिना किनारे वाले समुद्र में सुरक्षित किनारा मिल गया हो। वह साँस रोके सुन रहा था। अब उसने गहरी साँस ली और उत्साह से बोला,

"यही चलेगा! यही चलेगा, भाई! तुमने सचमुच मुझे बचा लिया!"

लेकिन जब मुझे यह उत्तर मिला तो भी मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ; इसलिए मैंने दोहराया,

"कर लेंगे?"

"हाँ, हाँ," उसने ज़ोर देकर कहा। "चलेगा। क्या तुम्हें लगता है कि हम किसी आदमी को नहीं पहचानते? तुम्हारा चेहरा देखकर ही मैं समझ गया कि तुम नीची जाति के नहीं हो सकते - मतलब, तुम सही परिवार से हो। तुम ज़रूर यह काम कर सकते हो।"

फिर उन्होंने गहरी साँस ली और बोले, "जब तक मैं जीवित हूँ, तुम्हें किसी भी बात की चिंता करने की ज़रूरत नहीं है। मैं तुम्हें अपनी जाति में ढाल दूँगा, तुम्हें दीक्षा दूँगा और हर चीज़ में तुम्हारे साथ मिलकर तुम्हें प्रशिक्षित करूँगा। आख़िरकार, जब तक मैं तुम्हें पूर्ण नहीं बना देता, मैं यहाँ से विदा नहीं लूँगा।"

एक विधवा अपनी छोटी बेटी के साथ पुजारी के पास खड़ी हमारी बातचीत सुन रही थी। अब पुजारी ने उसकी ओर इशारा करते हुए कहा,

"और ये रही पोंची की माँ। वो हर दिन तुम्हारी हर तरह से मदद करेंगी। वो मंदिर की झाड़ू-पोछा और सफ़ाई करेंगी और तुम्हारी ज़रूरतों का ध्यान रखेंगी। तुम्हें किसी बात की चिंता करने की ज़रूरत नहीं है, भाई।"

निश्चय ही अब मेरी सारी चिंताओं और बेचैनियों का अंत हो गया था। मेरी सारी चिंताएँ अब दूर हो रही थीं... मुझ पर एक आनंद और राहत की अनुभूति छा गई। मैं कितना भाग्यशाली था कि अब मेरा सारा समय श्रीकृष्ण की सेवा में व्यतीत हो रहा था! जब से मैं अपने गाँव से निकला था, मेरे मन में हमेशा के लिए वृंदावन में निवास करने, श्रीकृष्ण की पूजा करने और प्रतिदिन यमुना में स्नान करने की तीव्र अभिलाषा थी।

"क्या ये सचमुच यमुना है? क्या यमुना का पानी इतना गहरा है?"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

181

यहाँ?" मैंने उनसे पूछा, मंदिर परिसर से बाहर फैले विशाल जल की ओर देखते हुए।

"हाँ, हाँ, यमुना ही है," उन्होंने कहा। "स्नानघर वहीं है। अगर तुम यहाँ रहते हो, तो रोज़ाना इसमें स्नान कर सकते हो। तो, क्या तुम तैयार हो?"

उन्हें लगा जैसे मैं यमुना को इतना पास देखकर बहुत खुश हूँ। अगर मैं वृंदावन में कहीं और रहता, तो यमुना मुझे इतनी पास न मिलती! वहाँ रहते ही मेरी सारी

इच्छाएँ पूरी हो जातीं। तो भला मेरे अलावा कौन तैयार नहीं होता? मैं 'हाँ' कहने ही वाला था।

लेकिन मेरे हृदय में से किसी ने कहा, 'नहीं'!

जब मैंने यह 'नहीं!' सुना तो मैं रुक गया। मैंने अपनी अंतरात्मा की आवाज़ से तर्क किया,

"यहाँ क्यों नहीं रुकते? क्या वृंदावन में इससे बेहतर जगह मिलेगी? इतनी भटकन और इतनी मुश्किलें झेली हैं... इस बार 'ना' मत कहना!"

लेकिन जितना ज़्यादा मैंने उस अंतरात्मा की आवाज़ को समझाने की कोशिश की, उतना ही मेरा दिल और दिमाग़ मुझे नाकाम कर रहा था। मुझे भारत सेवाश्रम का अनुभव याद आ गया। अगर मैं दामोदर घाटी में श्रीकृष्ण की पूजा करता,

182

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

क्या दर मंदिर में भी ऐसी ही कोई कठिनाई नहीं होगी? और इसके अलावा, मुझे एक और हालिया घटना याद आई जो कुछ दिन पहले ही श्रीकृष्ण आश्रम में घटी थी:

भागवत पाठ के दौरान श्रोताओं के बीच मेरी एक वैष्णव साधु से जान-पहचान हुई। जैसा मैंने गोस्वामी जी से पूछा था, वैसा ही मैंने उनसे भी पूछा, "क्या आप मेरे लिए कहीं कोई नौकरी का प्रबंध कर सकते हैं?"

वह मेरी नौकरी की तलाश के बारे में सुनकर बहुत परेशान हो गया। उसने मुझसे पूछा

"वृंदावन में तुम्हें क्या काम मिलेगा? अगर तुम वहाँ भगवान का नाम गाना चाहो जहाँ मैं गाता हूँ, तो तुम्हारी व्यवस्था की जाएगी। अगर तुम सहमत हो तो तुरंत आओ।"

मैंने तुरंत हामी भर दी और उनके साथ श्रीकृष्ण आश्रम के मंच पर गया जहाँ बिना रुके भगवान का नाम-जप हो रहा था। आश्रम के द्वार पर खुले आसमान के नीचे चार खंभों पर ईंटों से बना एक सीमेंट का मंच था, जो किसी ऑर्केस्ट्रा के कमरे जैसा लग रहा था। चौबीसों घंटे नाम-जप लगातार हो रहा था - यानी, एक पल के लिए भी रुके बिना।

वहाँ भक्त-संगीतकारों की एक व्यवस्था थी जो बारी-बारी से गाते थे - एक बैंड के जाते ही दूसरा आ जाता था। जब हम वहाँ पहुँचे, तो मैंने देखा कि आठ-दस वैष्णव ढोल और झाँझ के साथ नाम गा रहे थे। उदाहरण के लिए:

"हरे कृष्ण, हरे राम, निताई गो, राधे श्याम।"

नाम-गान करते समय, मेरे एक वैष्णव परिचित से, वादकों की टोली को मेरा आशय ज्ञात हुआ। मैं मंच के एक ओर बैठा और उन्हें प्रणाम करके, उन्होंने मुझे एक जोड़ी झांझ दी और कहा,

"सिखाने के लिए कुछ भी नहीं है: हमारे साथ गाओ और जब हम बजाएं तो हमारा अनुसरण करो।"

लेकिन कैसी 'विडंबना' है भाग्य की! मेरी सारी बुद्धि जवाब दे गई! लेकिन क्या यह काम, जिसे मैं बहुत आसान समझता था और जिसमें कुछ सीखने को भी नहीं था, इतना कठिन है? हमारे गाँव में बहुत से वैष्णव पुरुष और महिलाएँ झांझ बजाते हुए भिक्षा माँगने आते थे; मैं अक्सर उनके हाथों से झांझ लेकर बजाने की कोशिश करता। उन दिनों मैं सोचता था,

"अगर मुझे गाना आता तो मैं भी उनकी तरह गा और बजा सकता था।"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

183

फिर मुझे कैसे पता था कि यह इतना मुश्किल था? मेरे लिए भारी झांझ बजाना और दूसरे गायकों की ताल के साथ 'हरे कृष्ण, हरे राम' गाना नामुमकिन था! अगर मेरा मुँह गाता, तो मेरे हाथ रुक जाते; या अगर मेरे हाथ और मुँह एक-दूसरे के साथ तालमेल बिठा भी लेते, तो बाकी गायकों के साथ ताल नहीं मिला पाते!

कई दिनों की कड़ी मेहनत और अभ्यास के बाद, जब किसी तरह इसमें महारत हासिल हो गई, तो दूसरी तरफ से एक और कठिनाई सामने आई: मुझे ज़ोर से नाम बोलने की ऊर्जा नहीं मिल रही थी। मुझे अपने हाथ हिलाने में तो कोई दिक्कत नहीं हुई, लेकिन जब मैंने उसी समय अपना मुँह हिलाने की कोशिश की, तो मेरा पूरा शरीर कमज़ोर हो गया।

मैंने अपने वैष्णव परिचित को अपनी परेशानी बताई और कहा, "मेरा क्या होगा? मुझे कोई ऊर्जा नहीं मिल रही है!"

वह मुझे प्रोत्साहित करते रहे,

"करो, जारी रखो। बाद में देखो, तुम्हें इसकी आदत हो जाएगी... अभ्यास से सिद्धि मिलती है। फिर तुम्हें वो परेशानियाँ और असुविधाएँ बिल्कुल नहीं होंगी। शुरुआत में ऐसी चीज़ें सबके साथ होती हैं। क्या हम सबके साथ नहीं होतीं? बाद में, सब सामान्य हो गया।"

एक या दो दिन बाद मैंने उससे फिर कहा,

"कृपया मुझे बताएं, यदि मुझे अपने हाथ और मुंह को एक साथ हिलाने की ऊर्जा नहीं मिले तो क्या होगा?"

मुझे, ज़रा भी नाराज़ हुए बिना, वह सलाह देता रहा

"अपने मन को समझाओ कि इससे बेहतर कोई काम हो ही नहीं सकता। यह एक साधना है, योगाभ्यास है और कमाई का ज़रिया भी। अगर तुम इसे करते रहोगे तो तुम्हारे पास रुपए, चावल, सब्ज़ियाँ वगैरह होंगी और रहने के लिए एक कमरा भी! अब तुम्हें छत्र-दर-छत्र मधुकरी नहीं करनी पड़ेगी और वृंदावन में कैसे रहना है, इसकी चिंता भी नहीं करनी पड़ेगी। क्या यह सोचकर ही तुम्हें ताकत नहीं मिलती?"

लेकिन वास्तव में, वृंदावन में अपने भविष्य की संभावनाओं के बारे में बार-बार सोचने के बाद भी, मैं ज़रा भी शक्ति प्राप्त नहीं कर पाया। जितना मैंने खुद को समझाने की कोशिश की, उतना ही मेरा मन और प्राण बल कमज़ोर होता गया। मेरे गुरुदेव ने उस दिन मुझे स्पष्ट रूप से समझा दिया कि ये चीज़ें मेरा आध्यात्मिक मार्ग नहीं हैं। मेरा स्वभाव निर्विचार कर्म द्वारा ध्यान में लगा हुआ है। तो क्या मुझे ऐसा करने देना चाहिए?

184

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

मेरे गुरु आज एक नई परीक्षा में पड़ गए,

दामोदर मंदिर में कृष्ण-पूजा? क्योंकि यह स्पष्ट था कि पूजा शुरू करने से पहले मुझे वैष्णव पंथ में दीक्षित होना होगा। इसीलिए पुजारी ने मुझसे कहा था, "अगर मैं कुछ दिन और श्रीकृष्ण आश्रम जाता रहता, तो वे भी मुझे यही कहते। एक गैर-वैष्णव को किसी वैष्णव के साथ रहने का कोई अधिकार नहीं है।"

"मैं तुम्हें अपनी जाति में परिवर्तित कर दूंगा और तुम्हें दीक्षा दूंगा।"

यह सब सोचते हुए मैंने पुजारी से कहा,

"नहीं, आदरणीय महोदय, यह बहुत कठिन कार्य है। यह मेरे लिए संभव नहीं होगा।"

पुजारी आश्चर्यचकित हुए और बोले, "क्यों, इसमें क्या कठिनाई है? यह क्यों नहीं हो सकता?" "क्या यह कठिन नहीं है? क्या इस दिव्य सेवा से भी कठिन कोई और काम है? यह बारह महीने और तीस दिन का नियमित काम है, हमेशा के लिए। मैं अब एक दिन के लिए भी कहीं नहीं जा पाऊँगा!" मैंने जवाब दिया।

पुजारी ने फिर भी मुझे समझाने और समझाने की कोशिश की:

"क्यों नहीं? आप कभी-कभार कोई दूसरा व्यक्ति ढूँढ़ सकते हैं और कुछ दिनों की छुट्टी ले सकते हैं। हम सब ऐसा करते हैं। इसकी चिंता मत कीजिए!" लेकिन इस पर श्री गोस्वामी के दोनों बेटों ने उन्हें रोक दिया। उन्होंने कहा, "चुप हो जाइए, पुजारी जी! ज़िद मत कीजिए, महोदय। चिंता मत कीजिए, हम इस काम के लिए किसी और को ढूँढ़ लेंगे।"

फिर उन्होंने मेरी ओर देखा और बड़े ने कहा,

"क्या अब तुम्हें समझ में आया कि मेरे पिता तुम्हें नौकरी क्यों नहीं देना चाहते थे? क्या पढ़े-लिखे लोग सच्चे मन से एक ही जगह मूर्ति की सेवा में अपना जीवन बिता सकते हैं?"

"हाँ, यह सच है," मैंने उनसे कहा। "श्री गोस्वामी ने समझदारी से यह समझा कि यह काम मेरे लिए नहीं है। काम की तलाश में मैंने आपको जो परेशानी दी है, उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।"

और इतना कहकर, मैं श्री गोस्वामी के घर से निकल पड़ा। मैं बहुत साहस और खुशी के साथ बाहर आया। कम से कम मैं प्रलोभन से मुक्त हो पाया था और अपनी अंतरात्मा की आवाज़ पर अड़ा था। लेकिन वह साहस और खुशी ज़्यादा देर तक नहीं टिकी, मैं वहाँ से चला गया। मैं बहुत थका हुआ महसूस कर रहा था। बाधाओं से लड़ते-लड़ते मैं बहुत थक गया था और

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

185

बाधाएं।

कोई भी उपयुक्त नौकरी और अच्छा घर ढूँढ़ने की कोशिश में थका हुआ और निराश, मैं सोच रहा था कि क्या मैं कभी अपने आदर्शों को वास्तविक दुनिया के साथ जोड़ पाऊँगा। उस पल मैं बस सब कुछ छोड़कर अकेले रहना चाहता था। इसलिए मैं रिहायशी इलाके से दूर यमुना नदी की ओर चल पड़ा।

दरअसल, पूरे वृंदावन में यह बात अच्छी तरह समझी जाती थी कि जब मुसीबतें चारों ओर हों, तो उस पवित्र नदी के तट पर ही जाना चाहिए। केवल वहीं राधा और कृष्ण की लीलाओं का वातावरण - उनकी पवित्र क्रीड़ा, जिसमें उनका छिपा हुआ आध्यात्मिक महत्व भी था - फिर से जीवंत हो सकता था।

कुछ क्षण पहले मैं अपनी परेशानियों में डूबा हुआ सोच रहा था, "क्या ईश्वर को पता है कि एक बेचारे को उसे पाने के लिए कितनी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं?" मुझे याद आ रहा था कि कैसे वैष्णव धर्म के विशाल काव्य साहित्य में बार-बार राधा अपने प्रभु के लिए तड़पती हैं; और मैंने पूछा - "क्या स्वयं श्रीकृष्ण ने भी कभी राधा के लिए तड़प की थी?"

जैसे ही मैंने यह प्रश्न पूछा, राधा की आहत भावनाओं के फूटने का दृश्य मेरी आँखों के सामने आ गया, और एक प्रसिद्ध कविता मेरे मन में कौंध गई, जिसमें श्रीकृष्ण ने राधा से कहा था, जब वह उनसे क्रोधित थीं,

“हे राधा!

चेहरा उठा कर देखो, चेहरा उठा कर देखो, मेरे दिल की कठपुतली तुम्हारी आँखों के नाच के साथ नाच रही है।

मैं यह पीला वस्त्र केवल आपका प्यार पाने के लिए पहनता हूँ।

यदि आप जोर से आह भरते हैं तो मेरा दिल धड़कता है!

अरे राय! तुम कब तक मेरी परीक्षा लोगे?

पूरी दुनिया जानती है कि मैं आपसे कितना प्यार करता हूँ!

हे राधा! एक बार अपना मुख ऊपर करके मेरी ओर देखो, और देखो कि तुम्हारे नेत्रों के नृत्य के साथ मेरा हृदय कैसे नाचता है।

186

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

तुम गोरी हो, इसलिए मैं हमेशा तुम्हारी याद दिलाने के लिए पीले वस्त्र पहनती हूँ। जब मैं तुम्हें गहरी आहें भरते हुए सुनती हूँ, तो तुम्हारे दुख से मैं डर जाती हूँ। हे राधा! तुम कब तक मेरी परीक्षा लोगी? सारा संसार जानता है कि मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। अपनी आहत भावनाओं को भूल जाओ। हे प्रेम! मेरे पास आओ - मैं श्रृंगार और ताजे फूलों के साथ तुम्हारा इंतज़ार कर रही हूँ!

अध्याय ग्यारह

मुझे याद आया कि जिस दिन मैंने भारत सेवाश्रम छोड़ा था, मैंने मन ही मन कसम खाई थी कि मैं अब किसी और आश्रम या मठ में नहीं जाऊँगा। और अब, श्री गोस्वामी के घर के अनुभव के बाद, मैंने मन बना लिया था कि मैं यहाँ किसी भी तरह की नौकरी की तलाश नहीं करूँगा: मैं वृंदावन छोड़कर सीधे पांडिचेरी जाऊँगा।

आखिरकार मेरी चेतना में यह बात घर कर गई थी कि अगर मैं खुद साधु या वैष्णव नहीं बन पाया, तो मुझे उस माहौल में कभी संतुष्टि नहीं मिलेगी। जब मुझे पता चला कि यह वो नहीं है जो मैं चाहता था, तो मुझे वृंदावन में नहीं रहना चाहिए,

इसलिए अब मेरे अंदर पांडिचेरी स्थित श्री अरविंद आश्रम जाने की इच्छा और भी प्रबल होती जा रही थी, भले ही मुझे यह चेतावनी मिल चुकी थी कि मुझे वहाँ रहने की अनुमति नहीं दी जाएगी, क्योंकि मेरे गाँव के एक पड़ोसी ने मुझे बताया था कि मदर फिलहाल आश्रम के नए सदस्यों को स्वीकार नहीं करेंगी। अगर मुझे पांडिचेरी छोड़ना ही पड़ा, तो कम से कम मैं अपने कानों से यह सुनने के बाद ही जाऊँगा कि मदर ने मुझे आश्रम में रहने की अनुमति दी है या नहीं।

लेकिन ठीक उसी समय, मुझे एक ऐसी नौकरी का प्रस्ताव मिला जिससे मुझे बहुत कम आमदनी होती - दस पैसे प्रतिदिन। यह नौकरी किसी आश्रम या मठ से स्वतंत्र थी, और मुझे ऐसी किसी जगह पर रहने या खाने-पीने की कोई बाध्यता नहीं थी। इससे मैं लंबी यात्रा के लिए रेल का किराया बचा पाता। इससे मुझे थोड़ी देर हो जाती, लेकिन इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता था। उस समय मेरे पास यात्रा के लिए पैसे नहीं थे। मैंने हिसाब लगाया कि छह महीने में मैं रेल का किराया कमा लूँगा,

और मैंने सोचा, "आखिरकार, यहां हालात इतने बुरे नहीं हैं... इतनी जल्दी क्या है?"

तो, उस नौकरी को पाकर मुझे उतना ही ख़ुशी महसूस हुआ जितना एक ऐसे आदमी को जो सोचता है

188

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

अपनी छोटी-सी पूँजी को बीस-पच्चीस साल के लिए बैंक में फिक्स डिपॉज़िट के तौर पर जमा करके, वह भविष्य में कितनी रकम हासिल करेगा, इस बारे में सोचे बिना, इस अवधि की लंबाई पर कभी विचार किए बिना! मैं भी कल्पना करने लगा कि मैं एक दिन निकल पड़ूँगा, रोज़ दस पैसे जमा करके और वृंदावन से पांडिचेरी तक का रेल किराया बचाकर।

मैंने सोचा,

"इससे क्या फर्क पड़ता है कि मुझे छह महीने लगेंगे या एक साल? क्या वृंदावन में मेरे दिन आनंद से नहीं बीत रहे हैं? कुछ और दिन ऐसे ही बीतने दो।"

लेकिन यह निश्चित है कि मैंने यह काम अपनी इच्छा से नहीं किया; जिस तरह से नौकरी का प्रस्ताव आया, ठीक उसी समय जब मैंने वृंदावन छोड़ने का फैसला किया था... मुझे लगा कि यह एक संकेत था।

ऐसा हुआ:

एक गेरुआ वस्त्रधारी, जटाधारी साधु ने मुझे इस तरह जकड़ लिया कि मैं उससे बच नहीं सका। मैं बांकेबिहारीजी के मंदिर की ओर जाते हुए, साधुओं और वैष्णवों की भीड़ के बीच से एक छत्र से दूसरे छत्र की ओर जा रहा था, तभी उसने अचानक मेरा हाथ पकड़ लिया और बोला:

"लो, मैं तुम्हें पा गया! मैंने सही चुनाव किया है! तुम वही आदमी हो जिसकी मुझे इतने समय से तलाश थी।"

मैं उस तपस्वी के प्रति श्रद्धा प्रकट करना भूल गया। मैं इतना आश्चर्यचकित था कि बस उसे घूरता रहा और फिर बोला,

"क्यों, हे पूज्य साधु?"

"बेटा, तुम्हें मेरे लिए एक काम करना होगा। मैं 'ना' नहीं मानूँगा!"

मैं अब भी कुछ जवाब नहीं दे पाया; बस उसे देखता रहा, सोचता रहा कि उसके मन में क्या चल रहा है। फिर उसने कहा,

"डरो मत। मैं तुम्हें बिना वेतन के काम पर नहीं रखूँगा। मैं तुम्हें नकद पैसे दूँगा। तुम्हें रोज़ाना दस पैसे मिलेंगे। यह बहुत छोटा सा काम है। मुझे पता है कि तुम इसे कर सकते हो और इसमें रोज़ाना तुम्हारा सिर्फ़ दस मिनट का समय लगेगा, लेकिन यह आदमी इस छोटी सी मदद के लिए तड़प रहा है।"

"कौन मर रहा है? वह क्यों मर रहा है? वह मेरे कारण कैसे जीवित रह सकता है? - मैंने तपस्वी से सौ प्रश्न पूछे।

"नहीं। मैं तुम्हें पहले से कुछ नहीं बताऊँगा। मेरे साथ चलो और पहले खुद काम देखो। लेकिन इतना ज़रूर कह सकता हूँ - यह एक ऐसा काम है जो तुम आसानी से कर सकते हो।" यह उसका जवाब था।

जिज्ञासा और आशंका दोनों के कारण मैंने पूछा:

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

189

"तुम्हारा आश्रय कहाँ है?"

"अरे, मैं तुम्हें अपने घर नहीं, किसी और के घर ले जा रहा हूँ। ख़तरा तो उसी को है। वो तो बांके बिहारी जी के मंदिर के ठीक पीछे है।"

मुझे उसके साथ जाना ही था। वह मुझे मंदिर के पीछे वाली गली से होते हुए ले गया; कुछ दरवाज़े आगे बढ़ने पर हम एक दो मंज़िला इमारत में पहुँचे। अंदर पहुँचकर हम

सीढ़ियाँ चढ़े और एक कमरे में दाखिल हुए जहाँ एक गोरा, लम्बा-चौड़ा, बहुत ही अलंकृत चारपाई पर सफ़ेद पलंग पर लेटा हुआ था।

जैसे ही साधु मुझे अंदर ले गया, उस आदमी ने बैठने की कोशिश की, लेकिन वह सफल नहीं हो पाया; वह पीछे हट गया, और लेटे हुए ही बोला,

"अंदर आइए, सर, अंदर आइए!"

जब वह बोल रहा था, एक अच्छी, गंभीर दिखने वाली महिला, जो शायद घर की मालकिन थी, कमरे के पीछे के दूसरे दरवाजे से उसका स्वागत करने के लिए तेजी से अंदर आई और बोली,

"कृपया आइए, महोदय, आइए - कृपया बैठिए।"

उसने साधु के लिए एक कुर्सी आगे बढ़ा दी जिस पर एक टेपेस्ट्री लगी थी। जब वह बैठ गया, तो वह फिर बाहर चली गई, शायद उसके लिए कुछ सेवा और जलपान का इंतज़ाम करने।

साधु बिस्तर पर लेटे हुए आदमी से बात करते रहे। बातचीत हिंदी में थी... उन्होंने मुझसे भी हिंदी में बात की थी। पहले तो साधु ने घर के सभी लोगों का हालचाल पूछा; फिर उन्होंने बिस्तर पर लेटे हुए आदमी को बताया कि कैसे उन्होंने मुझे उनके काम के लिए ढूँढ़ा। फिर, मेरी ओर मुड़कर, वे व्यावहारिक हो गए: "ज़रा इन सज्जन की हालत तो देखो! इतना बड़ा आदमी गठिया से लगभग लकवाग्रस्त है। तुम्हें इनका इलाज करना होगा।"

यह मुझ पर आकाश से बिजली की तरह टूट पड़ा।

"मैं उसका इलाज कैसे कर सकता हूँ? क्या मैं कोई चिकित्सक हूँ?"

"मुझे पता है कि आप कोई डॉक्टर नहीं हैं। लेकिन आप जो कर सकते हैं, वो ज़रूर करेंगे। बस आपको इस सज्जन की रोज़ाना तेल से मालिश करनी है। क्या आप इतना भी नहीं कर पाएँगे?"

मैंने राहत की साँस ली। अब मुझे समझ आ गया था। उस साधु को बस एक स्वस्थ युवक की ज़रूरत थी जो उसके मरीज़ की अच्छी तरह मालिश कर सके, और वह इस बात से खुश था कि इस मामले में मैं दूसरों से बेहतर था। हालाँकि अब मुझे समझ आ गया था कि उन्हें बस इतना ही चाहिए था, फिर भी मुझे ठीक से समझ नहीं आ रहा था कि

190

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

कहने के लिए।

साधु आगे बोला:

"देखते हो, मैंने तुम्हें इस काम के बारे में पहले क्यों नहीं बताया? ज़्यादातर लोग इस तरह का काम पैसे के लिए भी नहीं करना चाहेंगे; अगर कोई करने को तैयार भी

है, तो उसमें ताकत की कमी है। लेकिन तुम्हारे पास दोनों ही योग्यताएँ हैं: तुम्हें पैसे की ज़रूरत है और तुम ताकतवर भी हो।"

"अब मैं समझ गया कि आपने मुझे कैसे चुना; लेकिन आपको ऐसा क्यों लगता है कि मैं इसके लिए तैयार हूँ?" मैंने तपस्वी से पूछा।

नहीं?" "तुम्हें देखते ही मुझे ऐसा महसूस हुआ। बताओ, तुम्हें पैसों की ज़रूरत है या

मैंने सोचा, "क्या यह साधु हृदय का ज्ञाता है? उसे कैसे पता चला कि मुझे पांडिचेरी की यात्रा के लिए धन की आवश्यकता है?"

लेकिन मैंने कुछ नहीं कहा.

बेशक, मुझे कुछ कहने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी। तपस्वी उठे, अलमारी के पास गए, तेल की एक शीशी निकाली और मेरे लिए मरीज़ के पूरे शरीर की मालिश करने का तरीका दिखाने लगे।

फिर मैंने पूछा, "मुझे मालिश के लिए किस समय आना होगा?"

"जब भी तुम्हें ठीक लगे, जब तक सूरज निकला रहे - बस यही एक शर्त है। बस तुम्हें काम पूरी तरह से करना होगा ताकि वह सज्जन ठीक हो जाएँ," उन्होंने जवाब दिया। "तुम जानते हो कि तुम्हारे अपने बंगाली संत विवेकानंद ने क्या कहा था: 'वह ईश्वर की सेवा करता है जो मानवजाति की सेवा करता है।' और अगर तुम वृंदावन में किसी व्यक्ति की सेवा करोगे, तो तुम देखोगे कि राधारानी तुम्हें ज़रूर आशीर्वाद देंगी!"

जब उन्होंने मुझे कार्य की पूरी प्रक्रिया बता दी, तो वह तपस्वी अपने स्थान पर चले गये।

उस दिन से, मैं रोज़ दोपहर को वह काम करने लगा। काम करते हुए मुझे उस साधु से पता चला कि हालाँकि वह बीमार सज्जन वृंदावन में रहते थे, लेकिन वे ब्रजवासी नहीं थे, यानी वृंदावन के मूल निवासी नहीं। वे आगरा के एक बड़े ज़मींदार थे। मथुरा में उनके नाम पर एक बैंक और एक स्कूल था। उनके बेटे-बेटियाँ और दूसरे रिश्तेदार आगरा और मथुरा में रहते थे, और सिर्फ़ वे और उनकी पत्नी ही आगरा और मथुरा में रहते थे, और वृंदावन में सिर्फ़ वे और उनकी पत्नी ही किराए के मकान में रहते थे... और ऐसा इसलिए था क्योंकि उनके गुरु कोई और नहीं, बल्कि वही साधु थे जो मुझे वहाँ लाए थे।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

191

खैर, मेरा मरीज़ एक दिलचस्प आदमी था। हालाँकि वह धनी परिवार में पैदा हुआ था, लेकिन उसके व्यवहार से यह कभी पता नहीं चलता। मैंने उसके रहन-सहन में ज़रा भी विलासिता या अनावश्यक खर्च की फिजूलखर्ची नहीं देखी। वह पहनावे और बातचीत, दोनों में बहुत सादा था, और बच्चों की तरह बिल्कुल स्पष्टवादी। उसे मुझसे

बंगाली और हिंदी की मिश्रित भाषा में बात करते हुए सुनकर, कौन उसकी असली पृष्ठभूमि का अंदाज़ा लगा सकता था?

पहले ही दिन उसने मुझसे कहा,

"क्या तुम जानते हो, बंगाली, कि मैं थोड़ी-बहुत बंगाली भी बोल सकता हूँ?" "सच में?" मैंने उसके बंगाली शब्दों पर थोड़ा हँसते हुए जवाब दिया। "मैं थोड़ी- बहुत हिंदी भी बोल सकता हूँ - इसलिए हमें बातचीत में कोई दिक्कत नहीं होगी।"

वह भी मेरे उत्तर से प्रसन्न हुए और बोले,

"ज़रूर, बहुत सुविधा होगी! लेकिन पहले यह बताओ कि तुम वृंदावन में कब तक रहोगे? तुम यहाँ क्यों आए हो?"

यह एक उचित प्रश्न था! जैसा कि मैंने पहले कहा, मेरे रूप-रंग से यह कहना असंभव होता कि मैं तपस्वी हूँ, वैष्णव हूँ या भिखारी। मुझे तीर्थयात्री समझना भी मुश्किल होता। इसीलिए वह जानना चाहते थे कि मैं वृंदावन क्यों आया हूँ और कितने समय तक रहूँगा। तपस्वी ने मुझे नियुक्त करते समय मुझसे इस बारे में कुछ नहीं पूछा था - इसलिए उनके मरीज़ को मुझसे पूछना पड़ा कि मैं कितने समय तक काम करूँगा।

मुझे उन्हें खुलकर जवाब देना पड़ा। मैंने कहा, "देखिए, सर, मैं गलती से यहाँ आ गया। जैसे ही मौका मिलेगा, मैं पांडिचेरी स्थित श्री अरविंद आश्रम जाऊँगा।"

मुझे यह नहीं पता था कि ऐसा कहने से मेरी नौकरी पर असर पड़ेगा। मैंने पांडिचेरी जाने की संभावना से खुश होकर मकान मालिक के सामने अपनी बात खुलकर रखी।

जब उन्होंने मेरी योजना के बारे में सुना तो वे सचमुच आश्चर्यचकित हो गये और पूछा,

क्या? तुम चले जाओगे?

"जी, सर," मैंने कहा और उन्हें अपने जाने का कारण संक्षेप में बताया।

"तो फिर, साधु तुम्हें यहाँ क्यों लाए हैं? तुम कब जाओगे?" उसने पूछा।

"जैसे ही मेरे पास ट्रेन का टिकट खरीदने लायक पैसे हो जाएँगे," मैंने जवाब दिया। "शायद मुझे किराया इकट्ठा करने में पाँच या छह महीने लग जाएँगे।"

192

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

"तो फिर तुम पाँच-छह महीने यहाँ रहोगे?" मकान मालिक को राहत महसूस हुई। "बस इतना ही चलेगा। तब तक हम तुम्हारे लिए कोई दूसरा आदमी ढूँढ़ लेंगे।"

मैंने उनकी बात की पुष्टि करते हुए कहा, "जी हाँ, सर - अगर आप पैसे देने को तैयार हैं, तो आपको ज़रूर कई उम्मीदवार मिल जाएँगे। जिनके पास पैसा है, उनके लिए काम करने वालों की क्या कमी है?"

फिर मैंने विषय बदला और उससे पूछा,

"सर, क्या आपने कभी श्री अरविंदो के बारे में सुना है?"

"आपका मतलब अरबिंदो घोष है?"

"जी हाँ, श्रीमान, पांडिचेरी के श्री अरविंदो।"

"ओह, हाँ। मैंने उनके बारे में बहुत पहले सुना था, और मुझे याद है कि मैंने उनकी पुस्तक 'द लाइफ डिवाइन' पढ़ी थी।"

"सचमुच?" आपने "दि लाइफ डिवाइन" पढ़ी है!

"हाँ, बिल्कुल। क्या आप जानते हैं कि अरबिंदो घोष कितने प्रसिद्ध व्यक्ति हैं?" उनकी ज़्यादातर रचनाएँ मेरी अलमारी में रखी हैं।"

"मैं समझ गया। मैंने भी उनकी कई रचनाएँ पढ़ी हैं; लेकिन हालाँकि वे मेरे गुरु हैं, और मेरे अपने राज्य बंगाल से भी हैं, फिर भी मैंने अभी तक 'द लाइफ डिवाइन' नहीं पढ़ी है। क्या यह अजीब नहीं है?" मैंने उनसे पूछा।

लेकिन ज़मींदार ने मेरे आश्चर्य को ज़्यादा महत्व नहीं दिया। वह आगे बोला:

"आप जानते हैं, ल'इंगली, उन दिनों मैं अरबिंदो घोष और तिलक के आदर्शों का कट्टर अनुयायी था, और जिस तरह वे राजनीति में अविभाज्य रूप से शामिल थे, मैं भी था। मैं लाठी और भाले से बहुत अभ्यास करता था: मैं उन दिनों काफी मजबूत था... मैं बहुत सारे शारीरिक व्यायाम और कुश्ती भी करता था..."

"ओह, आपने कुश्ती भी की?"

बोलते समय मैंने उसके शरीर पर नज़र डाली और मन ही मन सोचा:

"हाँ, उसकी शक्ल तो बिलकुल किसी अव्वल दर्जे के पहलवान जैसी है!" लेकिन उसके शरीर की मांसपेशियाँ अब ढीली और मोटी हो गई थीं।

उसने उत्तर दिया,

"क्या मैं ऐसा नहीं सोचता? क्या तुम्हें लगता है कि मैं हमेशा से ही ऐसा ही अशक्त था?"

"नहीं, महोदय," मैंने सहानुभूतिपूर्वक उत्तर दिया, "यह कैसे हुआ?"

"यह उम्र का चलन है, बंगाली, उम्र का चलन! यह अचानक हुआ!" और उसने एक लंबी साँस ली।

मुझे तुरंत एहसास हुआ कि वे राजनीतिक रूप से कितने सक्रिय और स्वस्थ रहे होंगे। थोड़ी देर पहले मैं उनके रूप-रंग से सोच रहा था-

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

193

यह जानते हुए कि वह कुछ नहीं जानता था, कुछ नहीं करता था, कुछ नहीं पढ़ता था - कि वह हमेशा से गठिया से बीमार होकर बिस्तर पर ऐसे ही पड़ा रहा था! अगर कोई भी जो उसे उन दिनों से जानता था, अब उसे देखे, तो क्या उसे यकीन होगा कि वह वही व्यक्ति है जो उस समय श्री अरविंद और तिलक के साथ राजनीति में था, जो लाठी और भाला चलाता था और पहलवान था?

मेरे लिए उनसे ये शब्द सुनना बहुत महत्वपूर्ण था।

उनके क्रांतिकारी दिनों और श्री अरबिंदो के बारे में उनके ज्ञान के बारे में जानना और भी ज़रूरी था, क्योंकि इससे मुझे अंदर से एक सुखद एहसास हुआ और मैं उनके और भी करीब महसूस करने लगी। हम दोनों में कुछ समानता थी, जिसका अंदाज़ा मुझे उनके रूप-रंग और व्यवहार से कभी नहीं था। मैं सोचने लगी:

"आह! तब तो वह भी मेरे गुरु के समान है, मेरे अत्यंत निकट और प्रिय! मैं भी उसके दर्शन और स्पर्श से पवित्र हो जाऊँगा, और मुझे अपने गुरु की कृपा प्राप्त होगी!"

यह अच्छा ही था कि मुझे ऐसा लगा; क्योंकि जब किसी को उस काम के लिए शारीरिक रूप से उतना ही करीब आना पड़ता है, तो ऊर्जा का आदान-प्रदान अपने आप हो जाता है। उस समय तक, मैं खुद को लेकर असहज महसूस कर रहा था, इस तरह के काम के लिए एक अमीर आदमी जितना पैसा कमाने को लेकर। यह कोई बहुत सुखद काम नहीं था: इसमें मेरी ओर से बहुत अधिक शारीरिक मेहनत लगती थी, और जिस तेल से मैं उसकी मालिश करता था, उसकी दुर्गंध पूरे दिन मेरे साथ रहती थी - मैं कितनी भी कोशिश करूँ, उसे अपने हाथों से नहीं हटा पाता था। दरअसल, शुरुआती कुछ दिनों में मैं नौकरी छोड़ने के करीब पहुँच गया था।

लेकिन जब मुझे उनकी शुरुआती क्रांतिकारी गतिविधियों और श्री अरविंद में उनकी रुचि के बारे में पता चला, तो मेरा नज़रिया पूरी तरह बदल गया। मेरी शारीरिक थकान और नौकरी छोड़ने की इच्छा मानो गायब हो गई।

सच कहूँ तो, उन दिनों जब भी मैं किसी ऐसे व्यक्ति से मिलता जो श्री अरबिंदो का नाम लेता, मेरा नज़रिया बदल जाता। अपने गुरु के बारे में बात करने या उन्हें याद करने का मौका पाकर मैं तुरंत खुश हो जाता। उनसे ज़्यादा मेरे लिए कोई और नहीं था।

मुझे वृंदावन में हुई एक और ऐसी ही घटना याद है। मैं 'प्रभुपाद कुटीर' नाम की एक जगह में गया था - नाम के प्रति मेरे आकर्षण के कारण यह कोई वैष्णव मठ था। यह बस एक छोटा सा मठ था।

194

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

निवास। वहाँ बरामदे में एक बहुत ही प्रतिष्ठित वैष्णव साधु लेटे हुए थे; वे भी मकान मालिक की तरह लकवाग्रस्त थे। मैंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और फिर उनके पास बैठ गया। उन्होंने पूछा,

"आप कौन हैं, पापा?"

मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मैं अपना परिचय कैसे दूँ - मैं क्या कह सकता था?

इधर-उधर की बातें करने के बाद, जैसे ही मैंने उनसे कहा कि श्री अरविंद मेरे गुरु हैं, उन्होंने तुरंत श्री अरविंद के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए अपने हाथ जोड़ लिए, उन्हें अपने माथे से लगाया और कहा:

"श्री अरविंद! वे केवल आपके ही गुरु नहीं हैं - वे सम्पूर्ण आधुनिक युग के गुरु हैं!"

उन शब्दों का मुझ पर क्या असर हुआ: वे पूरे दिन मेरे कानों में गूंजते रहे और मुझे ऐसा लगा जैसे मैं बादल पर चल रहा हूँ। दरअसल, जब भी मैं वृंदावन में श्री अरविंद का नाम सुनता, तो मुझ पर ऐसा ही असर होता!

लेकिन आइये हम उस बात पर वापस जाएं जो मैं पहले कह रहा था:

हां, मुझे अच्छी तरह याद है कि उस पहले दिन जब मैं मकान मालिक को मालिश देकर वापस आई थी, तो मुझे कैसा महसूस हुआ था:

रास्ते में मुझे गंभीर बाधा आई।

जैसा कि मैंने पहले कहा, मकान मालिक एक ब्रजवासी के घर में किराए के फ्लैट में रह रहा था। उसके फ्लैट तक पहुँचने के लिए पहले ब्रजवासी के फ्लैट से होकर गुजरना पड़ता था। उस पहले दिन, मैं उस साधु के साथ अंदर गया था। तब रास्ता खुला था... हमें ज़रा भी रुकावट नहीं आई; लेकिन जब मैं वापस आया, तो रास्ता पूरी तरह से बंद था।

बेशक, मेरा मतलब यह नहीं है कि दरवाज़ा ताले और चाबी से बंद था। नहीं! दरवाज़े के दोनों हिस्से खुले हुए थे। फिर भी मैं अंदर नहीं जा सका। रास्ता रोकने और दरवाज़े के आस-पास की पूरी जगह घेरने के लिए, सात-आठ सुंदर युवतियों ने एक सौंदर्य-मेला बना रखा था। वे विवाहित थीं, अविवाहित थीं, एक बच्चे की माँ थीं... हर तरह की; लेकिन सभी को यौवन और सौंदर्य का वरदान मिला था - दरअसल, सभी बेहद खूबसूरत थीं; उनकी वेशभूषा भी उनके रूप के अनुरूप थी। कोई नीले रंग की थी, कोई लाल रंग की, कोई बैंगनी रंग की, कोई पीले रंग की, किसी ने वृंदावन के विशिष्ट मुद्रित कपड़े पहने थे। लेकिन उनमें से कोई भी बेकार नहीं बैठा - सभी व्यस्त थीं। कुछ के हाथों में फूल थे, कोई ताज़ी सुगंधित चमेली की माला बनाने में व्यस्त थी। एक जो सभा के बीच में बैठी थी

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

वह केंद्रीय रत्न लग रही थी... और बाकी सभी से कम उम्र की। दो-तीन युवतियाँ उसका श्रृंगार कर रही थीं: एक ने उसके गोरे गालों पर चंदन के लेप से पत्तों जैसी आकृतियाँ बनाईं; दूसरी

पूर्वाह्न

आँखों के कोनों में काजल की लकीर खींच रही थी; कोई उसकी घुमावदार भौंहों के संगम पर सिंदूर की बूँद बना रही थी; कोई उसके बालों में फूलों की मालाएँ गूँथ रही थी। और जो तैयार हो रही थी, वह बस हाथ में लिए आईने में अपने चेहरे का अक्स देख रही थी, या फिर इधर-उधर देख रही थी; बीच-बीच में वह खिलखिलाकर हँस पड़ती, या कभी-कभार आईने में जो देखती, उसे देखकर दबी हुई हँसी निकालती... और तभी कोई दूसरी लड़की उसके गाल थपथपा देती या हल्के से चुटकी काट लेती।

मैंने जो देखा वह वही था जिसका वर्णन रवींद्रनाथ टैगोर ने अपनी कविता कोनाय सजानो में किया है, जिसका अर्थ है 'दुल्हन को सजाना':

"दुल्हन को लाल रंग के वस्त्र पहनाने के लिए, आगे के दरवाजे पर शनाइ बजाने के लिए...

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

यहाँ का पूरा मामला मुझे बिल्कुल शादी से ठीक पहले वाले दृश्य की याद दिला रहा था। और मैं भी यही अनुमान लगा सकता था कि यह कोई शादी की पार्टी होगी, बस एक चीज़ गायब थी: कोई शनाइ नहीं थी - जो उस बारात के लिए ज़रूरी होती है जो नई दुल्हन अपने माता-पिता का घर छोड़कर अपने नए पति के घर जाती है; और न ही कोई आँसू थे, न ही उस उदासी का एहसास जो आमतौर पर इस मौके पर होती है।

तो यह किसी विवाह समारोह के लिए नहीं था - वे किसी दुल्हन का श्रृंगार नहीं कर रही थीं। मानो वे किसी उत्सव या समारोह में भाग लेने के लिए तैयार हो रही हों, या किसी पार्टी में जा रही हों; इसलिए वे जल्दी-जल्दी एक-दूसरे को सजा रही थीं। जो बीच वाले रत्न को सजा रही थीं, उन्हें बारी-बारी से दूसरे लोग सजा रहे थे; और कुछ तो शीशे के सामने खड़े होकर खुद को सजा रही थीं।

उन्हें कपड़े पहनने दो! मेरा कोई काम नहीं था। मैं तो बस उस दरवाज़े से होकर जाना चाहता था। पर मैं कैसे निकल सकता था? वे सब गलियारे की सीढ़ियों के इतने पास बैठे थे कि उन्हें धक्का दिए बिना निकल पाना नामुमकिन था। और मैं ऐसा कर भी नहीं सकता था।

ये युवतियां अपने कपड़े खुद पहन रही हैं और मैं, एक पुरुष और एक अजनबी, धक्का देकर आगे बढ़ रहा हूं?

नहीं! असंभव: ... यह उचित नहीं होगा।

तो मैं झिझकते हुए वहीं खड़ा रहा। क्या करूँ? एक, दो, तीन, चार मिनट बीत गए, और मैं वहीं खड़ा रहा - उनमें से किसी ने भी मुझे बाहर जाने की इजाज़त देने के लिए ज़रा भी कदम नहीं उठाया। ऐसा लग रहा था जैसे उनमें से किसी ने भी मेरी मौजूदगी पर ध्यान ही नहीं दिया हो।

इसलिए मुझे उनका ध्यान आकर्षित करने का प्रयास करना पड़ा, और उनसे अनुरोध करना पड़ा:

"सज्जन देवियों! कृपया मेरे जाने के लिए थोड़ी जगह बना दीजिए!"

लेकिन उन्होंने मेरी बात अनसुनी कर दी; वे पहले जैसे ही कपड़े पहनते रहे। मुझे लगा कि मेरी आवाज़ में दम और आवाज़ की कमी है। इसलिए मैंने थोड़ा ज़ोर से बोलने की कोशिश की।

"कृपया, सज्जन महिलाओं, मुझे जाने दीजिए।"

मेरी आवाज तेज़ हो गई और उनके कानों तक पहुँच गई, यह मैं इस बात से समझ सकता था कि कैसे उन्होंने एक-दूसरे को देखा और हल्के से मुस्कुराए, और फिर अपने-अपने काम में लग गए।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

197

परिश्रमपूर्वक - बिना एक इंच भी हिले।

फिर मुझे संदेह होने लगा कि वे जानबूझकर मेरी उपेक्षा कर रहे हैं।

मुझे उनके व्यवहार और तौर-तरीकों पर शर्मिंदगी महसूस होने लगी। मुझे एहसास हुआ कि सब कुछ सोच-समझकर किया गया था: उन्होंने वहाँ बैठकर रास्ता बंद कर दिया था ताकि मैं बाहर न जा सकूँ!

मैं उलझन में पड़ गया। सोच रहा था कि क्या करूँ! क्या मकान मालिक के फ्लैट पर वापस जाकर मालकिन से शिकायत करूँ, "आकर देख लो कि कौन मेरा रास्ता रोक रहा है!"

लेकिन मेरे दिल ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। मैं तब जवान था। उस उम्र में जवानी का घमंड ज़्यादा होता है। मैंने सोचा कि अगर मैं किसी युवती से हार गया और किसी औरत की मदद ली, तो वे ज़रूर मुझ पर हँसेंगी।

लेकिन फिर भी, जब मैंने मकान मालिक की पत्नी के बारे में सोचा, तो अचानक मेरे मन में आया, "क्या होगा अगर वह मुझे अपने कमरे से इस स्थिति में देख ले?"

यह सोचते हुए मैंने पीछे मुड़कर देखा - और पाया कि उसने भी यह दृश्य देखा था और दूर से देख रही थी और इसका भरपूर आनंद ले रही थी!

मैंने पीछे मुड़कर देखा, तो युवतियों की नज़रें भी उसी ओर घूम गईं। पल भर में स्थिति बदल गई: मालाएँ तैयार कर रही एक युवती ने अपनी पड़ोसन को धक्का देकर कहा,

"अरे लड़कियों! इस बेचारे को थोड़ा आगे जाने दो!" बस थोड़ा सा आगे बढ़ो

यह कहकर वह स्वयं थोड़ा हिल गई।

जैसे ही उनके बीच थोड़ी सी जगह खुली, मैं जल्दी से वहाँ से निकल गया। मुझे अपनी कैद से आज़ादी मिल गई थी!

लेकिन जैसा कि मुझे आगे के दिनों में पता चला, इन महिलाओं के साथ मेरी परेशानियां खत्म नहीं हुई थीं।

लेकिन इससे पहले कि मैं उन घटनाओं का वर्णन करना जारी रखूं, पुरुष और महिला ब्रजवासियों और उनके द्वारा राधा और कृष्ण की पूजा का संक्षिप्त परिचय पाठक के लिए सहायक होगा।

ये ब्रजवासी कोई साधारण लोग नहीं थे। वे वृंदावन के सबसे जीवंत देवता - बांके बिहारीजी के सेवक थे। वृंदावन में पूजी जाने वाली लगभग सभी मूर्तियाँ राधा और कृष्ण की ही हैं।

198

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

एक रूप या दूसरा; बस नाम अलग हैं: मदन मोहन, गोपी-बल्लव, गोपी-कृष्ण, राधा-रमण, दामोदर, गोविंदजी, बिहारीजी, इत्यादि... इन्हें अनगिनत नामों से जाना जाता है। लेकिन जहाँ तक मुझे पता है, राधा-कृष्ण की किसी और छवि को वर्तमान में बांके बिहारीजी जितनी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं है। और वृंदावन में बहुत कम देवता बांके बिहारीजी जैसे नवाब हैं।

जैसे उनकी आमदनी भरपूर है, वैसे ही उनका खर्च भी एक नवाब के अनुरूप है। उनके भोग के लिए प्रसाद के लिए एक अलग बाज़ार बना हुआ है। गाय के घी से बनी मिठाइयों के बिना बांके बिहारी जी का पेट नहीं भरता; उस बाज़ार से फूल, तुलसी और मालाएँ लाए बिना उनका मन प्रसन्न नहीं होता।

वृंदावन के किसी भी अन्य मंदिर में भगवान की छवि देखने के लिए इतनी भारी भीड़ नहीं होती जितनी बांके बिहारीजी के मंदिर में होती है। और इस फलते-फूलते बाजार और मंदिर के आसपास पूजा-सामग्री खरीदने वाले भक्तों की भारी भीड़ के कारण, दिन या रात के किसी भी समय उस क्षेत्र से गुजरना बहुत मुश्किल होता है। अगर आप किसी तरह प्रबंधन भी कर लेते हैं, तो भी छवि को देखना असंभव हो सकता है। मंदिर के पुजारी भक्तों को केवल कुछ सेकंड के लिए अपने देवता के दर्शन करने की अनुमति देने के बारे में बहुत सख्त हैं। आंतरिक कक्ष के पास खड़ा एक पुजारी छवि को ढकने के लिए हर मिनट एक पर्दा खींचता है। भक्त अपने भगवान की एक झलक पाने के लिए पर्दे के चारों ओर जमा होते हैं, लेकिन वे उस छोटी सी झलक से किसी भी तरह संतुष्ट नहीं होते हैं!

खैर, ये ब्रजवासी वृंदावन के इस प्रसिद्ध बांके-बिहारीजी के सेवक थे। और बांके- बिहारीजी की ही तरह, उनके सेवक ब्रजवासी भी अब समृद्ध अवस्था में थे।

वे एक बड़ा संयुक्त परिवार थे, जिसमें पाँच-छह भाई और उनकी सभी संतानें शामिल थीं। सभी भाई देवता की पूजा से जुड़े विभिन्न कार्य करते थे। कुछ लोग पूजा करते और शास्त्र पढ़ते, कुछ मूर्ति को स्नान कराते, कुछ उसे वस्त्र पहनाते और सजाते; कुछ प्रसाद तैयार करते, कुछ प्रतीक्षारत भक्तों को भगवान के दर्शन कराने के लिए परदा खींचते।

और उन सबकी खूबसूरती कितनी दिव्य थी? इस परिवार के सभी सदस्य इतने सुंदर थे कि ऐसा लगता था मानो वे किसी स्वर्ग से उतर आए हों। वास्तव में, वे उन कश्मीरी ब्राह्मणों से भी ज़्यादा गोरे और सुंदर थे, जो अपनी अद्भुत सुंदरता के लिए प्रसिद्ध हैं।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

199

जब वे पूजा-अर्चना समाप्त करके माथे पर लाल चंदन लगाए, शरीर के ऊपरी हिस्से पर नीले आवरण वाली अपनी विशेष चटक लाल रेशमी पोशाक पहने और सिर पर आकर्षक लाल पगड़ी पहने घर लौटते, तो उनका नजारा अद्भुत होता था, और मेरी आँखें उन्हें देखकर तृप्त हो जाती थीं। तब मुझे ऐसा लगता था कि ईश्वर द्वारा मुझे दी गई आँखें उनकी सुंदरता देखकर फलित हो गई हैं!

और सिर्फ़ पुजारी ही नहीं... घर पर उनकी पत्नियाँ, बेटे-बेटियाँ, सभी बेहद खूबसूरत और जवान थे। मुझे उनके परिवार में एक भी बूढ़ा या बूढ़ी औरत नहीं मिली। उनके घर में काम करने वाली नौकरानियाँ और रसोइया, सभी लगभग एक ही उम्र की और खूबसूरत गृहिणियाँ थीं। जब मैंने उन सबको घर में एक साथ देखा तो मुझे ऐसा लगा जैसे मैं किसी सौंदर्य प्रदर्शनी में हूँ। वे सभी इतनी खूबसूरत थीं कि मेरी आँखें कहाँ देखूँ, यह समझ ही नहीं आ रहा था!

एक प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक ने अपना विचार व्यक्त किया है कि सौन्दर्य का विशिष्ट चिह्न यह है कि, 'यह सबसे अधिक विचलित करने वाला तत्व है।' इसका अर्थ है कि सौन्दर्य वह चीज है जो व्यक्ति के मन और प्राण को शान्त और स्थिर नहीं रहने देती, बल्कि सदैव उन्हें आकर्षित और विचलित करती रहती है।

लेकिन इन ब्रजवासियों और उनकी पत्नियों का जो सौंदर्य मैं वर्णन कर रहा हूँ, वह ऐसा नहीं था। उनका सौंदर्य ऐसा था कि उसने मेरे मन और प्राण को ज़रा भी विचलित नहीं किया।

या, जैसा कि हमारे प्रसिद्ध भारतीय कवि कालिदास ने टिप्पणी की है: "रामायणि बिक्ष्य मधुरांश्च निश्म्य शब्दं पोर्युत्सुकी बहावति यद सुखितोपि जंतुः।"

"जो कोई भी सुन्दर वस्तुओं को देखता है और मधुर ध्वनियाँ सुनता है, चाहे वह कितना भी प्रसन्न और संतुष्ट क्यों न हो, उसे स्वयं उस सुन्दरी के समान बनने की लालसा अवश्य होती है।" दोनों ही स्थितियों में असंतोष की भावना होती है... मानो किसी प्रकार की कमी या अभाव की भावना उस सुखी व्यक्ति के मन में भी उत्पन्न होती है जिसे वास्तव में किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं होती; सुखी व्यक्ति जो सौन्दर्य से व्याकुल होता है, उसे ऐसा लगता है मानो उसे कुछ नहीं मिला, कहीं कोई महान असंतोष छिपा है, जिसे वह खोज नहीं पा रहा है।

लेकिन मैं दोहराता हूँ, इन स्त्रियों की सुंदरता का मुझ पर प्रभाव बिल्कुल अलग था। उनकी सुंदरता ने मेरे अंदर किसी प्रकार की कमी या असंतोष की भावना नहीं जगाई। इसके विपरीत, मेरे भीतर एक अपार खुशी का संचार होता था। उनकी सुंदरता एक महान

200

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

मेरे लिए वे आनन्द का उत्सव थे और वे मेरी आँखों के लिए एक दावत थे।

और यही वजह थी कि मैं उनकी सारी खूबसूरती... पति की, पत्नी की, बेटे की, बेटी की, नौकरानी की, रसोइए की... सब को एक ही सौंदर्य-वस्तु में समेट पाती थी, और उसे बड़े आनंद से निहार पाती थी। उनकी खूबसूरती को निहारते हुए मुझे सचमुच ऐसा लगता था: "कुछ मुझे मिल गया है: कुछ मैं बन गई हूँ!" यानी मेरे अंदर यह एहसास होता था कि मैं भी सुंदर हो गई हूँ, कि मैं उन सबके साथ एक हो गई हूँ।

लेकिन बाद में जो कुछ हुआ, उसकी तुलना में ये भावनाएँ भी सतही थीं। तो चलिए, आगे बढ़ते हैं।

अगले दिन, मुझे फिर वही समस्या का सामना करना पड़ा: उस सुंदर परिवार की औरतें फिर से मेरा रास्ता रोक रही थीं। वे फिर से वही सामान्य गतिविधियाँ कर रही थीं जो पिछले दिन कर रही थीं।

"अच्छा," मैंने सोचा, "क्या इन महिलाओं के पास सचमुच कोई और घरेलू काम नहीं है? क्या यही उनकी रोज़मर्रा की दिनचर्या है?"

हालाँकि इस बार दुल्हन को पिछले दिन की तरह चंदन और सिंदूर से सजाया नहीं गया था, बाकी सब काम वही थे: कोई फूलों की माला बना रहा था, कोई डंठल तोड़कर उसे फूल दे रहा था, कोई किसी को फूलों की माला पहना रहा था, कोई आईने के सामने श्रृंगार कर रहा था, लेकिन सबका पूरा ध्यान अपने काम पर था। उन्हें ज़रा भी फुर्सत नहीं थी कि देखें या सोचें कि किसका रास्ता रोका जा रहा है, कौन उनके बगल में खड़ा है। मेरी मौजूदगी से वे बिल्कुल बेखबर थे!

या ये सिर्फ़ दिखावा था? अगर उन्होंने मुझे देखा भी था, तो उन्हें ज़रा भी शर्म नहीं आई कि मैं वहीं खड़ा रहूँ और उनके हिलने का इंतज़ार करूँ। या फिर, क्या उनका इरादा सचमुच मुझे उनकी खूबसूरती का लुत्फ़ उठाने का मौका देना था? फिर मुझे कौन बताएगा?

ऐसा लग रहा था मानो वे मेरी आंतरिक भावना को समझ रहे हैं: कि उनका सौंदर्य मेरी आँखों के लिए आनंद का एक महान उत्सव था... मानो वे कहना चाहते हों:

"क्या हमारा सौन्दर्य देखना तुम्हारी आँखों के लिए आनंद का महान उत्सव है? यह ठीक है। फिर तुम भागने के लिए क्यों छटपटा रहे हो? यहाँ खड़े रहो और

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

201

थोड़ी देर देखो!"

लेकिन अफ़सोस! मैं उस अवसर का लाभ नहीं उठा सका। जिस आनंदोत्सव की मैंने बात की थी, वह मुझे उनके सौंदर्य की एक क्षणिक झलक, निराकार रूप से और दूर से पाकर महसूस हुआ। अब यह संभव नहीं था क्योंकि मैं उनके बहुत करीब खड़ा था। अब, रास्ता ढूँढ़ना मेरी आँखों का मुख्य काम था, और वहाँ से गुजरते हुए अपने आस-पास के सौंदर्य का आनंद लेना गौण।

लेकिन अब ऐसा लग रहा था कि वे गौण चीज़ को बलपूर्वक मुख्य चीज़ बनाना चाहते थे!

ऐसा कैसे हो सकता है?

इसके अलावा, इस दृश्य में कोई रोक-टोक नहीं थी, कोई परदा नहीं था। दिन के उजाले में, खुले मैदान में, वे सबके सामने मुझे अपनी खूबसूरती दिखाना चाहती थीं। और ऐसी स्थिति में, उनकी खूबसूरती कहीं फीकी पड़ गई। शायद इसी वजह से, उनकी खूबसूरती देखना मेरे लिए और भी मुश्किल हो गया।

मैंने केवल अपनी कठिनाई देखी, और सोचा:

"मुझे अपनी आँखों के लिए इस आनंद के उत्सव की आवश्यकता नहीं है। जितनी जल्दी मुझे रिहा कर दिया जाए, मेरी सुरक्षा के लिए उतना ही बेहतर होगा!"

एक और वजह भी थी: जब युवतियों को ज़रा भी शर्म न आती, तो मुझे उनके सौंदर्य का आनंद लेने की इजाज़त थी, बेशर्मी से खड़े होकर उन्हें निहारना; लेकिन अगर किसी ब्रजवासी ने पीछे से देख लिया, जैसा कि कल ज़मींदार की पत्नी ने देखा था, तो क्या होगा? मुझे यह सोचकर भी शर्म आ रही थी!

और सचमुच कुछ ऐसा ही हुआ। सौभाग्य से किसी ब्रजवासी ने न तो देखा, न ही आने का मौका मिला; लेकिन दो बाहरी लोग अचानक दरवाजे पर आए और मुझे वहीं अचंभित खड़ा पाया!

दो कुली, अपने सिर पर कोयले की बोरियाँ लिए, दरवाजे पर आये और पुकारने लगे, "बड़ी माँ।"

उन्होंने मेरे बारे में चाहे जो भी सोचा हो, उन्होंने असल में मेरी मदद की। उनकी वजह से मेरा रास्ता साफ़ हो गया। ब्रजंग-नाएँ ऐसे चौंक गईं जैसे कोई बाघ गायों के झुंड में कूद पड़े। वे अंदर भाग गईं और कोयला ढोने वालों के लिए रास्ता साफ़ कर दिया।

एक क्षण में मैं दूर चला गया...बच गया!

लेकिन क्या कोई रोज़-ब-रोज़ एक ही बाधा और असुविधा से जूझना पसंद करता है? क्या कोई इसे सहन कर सकता है? मेरा मन।

202

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

मैं सचमुच बहुत परेशान हो गया जब तीसरे दिन मैंने फिर से उन सबको वहाँ बैठे और रास्ता रोकते देखा। मैंने मन ही मन सोचा:

"अगर यही चलता रहा, तो मैं यहाँ काम नहीं कर पाऊँगा। क्या मेरे लिए हर रोज़ कोई चमत्कार होगा? क्योंकि चमत्कार के बिना मैं यहाँ से नहीं निकल पाऊँगा। पहले दिन ज़मींदार की पत्नी के अचानक प्रकट होने से मेरी रिहाई हो गई थी। दूसरे दिन कोयला ढोने वालों की वजह से मैं यहाँ से निकल पाया। लेकिन आज मैं कैसे निकल पाऊँगा?"

मैं बेसब्री से इंतज़ार कर रहा था कि कब किस्मत मेरे लिए दिन-ब-दिन रास्ते खोलेगी। बस इतना ही था। मेरे पास अब और धैर्य नहीं बचा था।

कुछ क्षण वहीं खड़े रहने के बाद मैंने उनसे तीखी आवाज में कहा:

"देवियों, यह लगातार तीसरा दिन है! मुझे आपके रास्ता साफ करने का इंतजार क्यों करना पड़ रहा है?"

मेरे शब्दों का असर हुआ। जैसे ही ये शब्द बोले, सभी महिलाएँ खड़ी हो गईं।

मुझे लगा कि उन्हें मेरे साथ किए गए अपने व्यवहार पर शर्म आ रही है। इसीलिए जैसे ही मैंने बात की, वे मुझे रास्ता देने के लिए खड़े हो गए।

लेकिन ये क्या हो रहा था? जैसे ही मैं वहाँ से गुज़रने लगा, उन्होंने मुझे घेरना शुरू कर दिया, मानो कोई घेरा बना लिया हो!

फिर खूब हंसी-मजाक हुआ और एक-दूसरे को धक्का-मुक्की हुई, और फिर, हंसी का कैसा विस्फोट हुआ, हर तरह की हंसी एक साथ शुरू हो गई: यदि एक रुकती, तो दूसरी शुरू हो जाती; जो रुक जाती, वह दूसरे की हंसी से भड़ककर, दोगुने मनोरंजन के साथ फिर से शुरू हो जाती।

यह सारा शोरगुल सुनकर परिवार का एक आदमी यह देखने के लिए अपने कमरे से बाहर आया कि क्या हो रहा है।

मैंने राहत की साँस ली। हे भगवान! अब आखिरकार मैं इस बारे में कुछ समझ पाऊँगी - कम से कम उस आदमी से तो मैं समझदारी से बात कर पाऊँगी!

लेकिन, हे भगवान! उसने एक मुस्कुराहट भरी नज़र डाली और फिर से अंदर चला गया। ज़ाहिर है उसे वहाँ चिंता करने लायक कुछ भी नहीं दिखा।

अगर वह हमारे देश का आदमी होता, तो क्या वह औरतों को किसी अजनबी के साथ ऐसा व्यवहार करने देता? ज़रूर कुछ नाराज़गी ज़ाहिर करता और कहता,

"अरे? ये सब क्या है? क्या तुम्हें एक अजनबी के सामने हंसने और उछलने-कूदने में शर्म नहीं आती, जबकि तुम सब बड़ी औरतें हो?"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

203

लेकिन यहाँ तो घर के मर्दों की तारीफ़ करनी ही थी: ऐसा लग रहा था कि वे इस तरह के व्यवहार के आदी हो चुके हैं। फिर मुझे और भी बेचैनी और घबराहट महसूस हुई।

ब्रजवासियों के आने और चले जाने के बाद ब्रजंगनाओं की हँसी और भी तीव्र हो गई थी; जिस प्रकार वे चल रही थीं, हँस रही थीं और हाव-भाव कर रही थीं, उससे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उन्होंने अपने जीवन में मुझ जैसा मूर्ख कभी नहीं देखा!

बेशक, एक दृष्टिकोण से, मैं उन्हें दोष नहीं दे सकता।

शायद मैं उनके बच्चों जैसे व्यवहार को देखकर मूर्ख बन गया।

अब मैं उनकी सुंदरता को निहारते हुए उस समय की अपनी भावनाओं को व्यक्त करना चाहता हूँ। लेकिन क्या कोई हमेशा हर चीज़ को अपनी इच्छानुसार व्यक्त कर सकता है? पलामू के लेखक संजीव चंद्रा ने एक बार सुंदरता का वर्णन करते हुए कहा था: "मैंने सुंदरता को कभी किसी कवि की नज़र से नहीं देखा, बल्कि मैं हमेशा सुंदरता

को एक नन्हे बच्चे की ताज़गी से देखता हूँ; और इसीलिए मैं अपनी भावनाओं को बेशर्मी से - खुलकर व्यक्त कर पाता हूँ...।"

दूसरी ओर, मुझे संजीव चंद्र जैसी आज़ादी नहीं मिली थी। मैं न तो किसी कवि की नज़र से सुंदरता देख सकता था, न ही किसी छोटे बच्चे की तरह, बेशर्मी से। क्योंकि जब से मेरे पास सुंदरता देखने की आँखें थीं, मैं अपने प्राचीन शास्त्रों की कठोर चेतावनियाँ सुनता आ रहा था, जो ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों को सख्त चेतावनी देती हैं कि वे सभी स्त्रियों से सावधान रहें, उनके चेहरे की ओर कभी न देखें, हर स्त्री को अपनी माँ समझें, और उनसे अपनी नज़रें पूरी तरह हटा लें... अगर संयोग से या भूल से किसी स्त्री पर नज़र पड़ जाए, तो उसे तुरंत उसके पैरों की ओर मोड़ देना चाहिए; इससे सुंदरता के प्रति सभी प्रकार की लालसा और लालसाएँ शांत हो जाएँगी।

उस आदेश के अनुसार, मैंने अपनी दृष्टि उन ब्रजांगनाओं के चरणों की ओर मोड़ी। लेकिन अफ़सोस! मैं अपनी आँखों पर नियंत्रण नहीं रख सका! कितना ख़तरा! मेरी वे आँखें मेरी बात मानने को तैयार ही नहीं थीं! बल्कि, अवसर पाकर, और यह सोचकर कि कोई उन्हें देख नहीं रहा है, मेरी नज़र उनके चरणों पर ही रही, मेरे विचार उन सुंदर शरीरों की ओर मुड़ गए जो अब उन्हें दिखाई नहीं दे रहे थे। उन्होंने उन चरणों के लिए उपयुक्त शब्द खोजने हेतु वैष्णव शास्त्रों में गहन खोजबीन की और कहा:

"शरीर के एक हिस्से में इतनी सुंदरता है कि आँखें उसे समाहित नहीं कर सकतीं!"

204

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

फिर उन्होंने एक प्राचीन कवि से एक उपमा उधार ली और कहा:

"कौन कहता है, शरद ऋतु का चाँद तुलनीय है

इन चेहरों की सुंदरता के लिए?

ऐसे सौ चन्द्रमा भी उसके पैर के नाखूनों की नोक से मुश्किल से तुलना कर पाएंगे।"

फिर वे एक आधुनिक कवि की कल्पना में बदल गए और बोले:

"ओह, मेरी सुंदरता!

एक आधा हिस्सा आप महिला हैं, और दूसरा आधा हिस्सा आप आकर्षक हैं!

अब मैं इतना तो बता ही सकता हूँ और पाठक शायद मेरी बात पर यकीन भी कर लें। लेकिन आगे क्या हुआ, यह मैं उन्हें कैसे समझाऊँ? लेकिन इतनी दूर आ गया हूँ, इसलिए अपनी कलम को रोक पाना मुश्किल है! तो चलिए बताता हूँ कि आगे क्या हुआ:

जब उन्होंने मेरा निराश चेहरा और उदास नज़रें देखीं, तो ब्रजंग-नास की हँसी फिर फूट पड़ी - ओह! कैसी हँसी थी! और उन्होंने अपने समूह में से एक को मेरी ओर तब तक

धकेला जब तक वह आख़िरकार मेरे ऊपर गिर नहीं पड़ी: हँसते-हँसते और लड़खड़ाते हुए, उसने अपनी कोहनी से मुझे धक्का देकर मेरी उदास नज़र को ऊपर की ओर करने की कोशिश की।

लेकिन मैंने अपना चेहरा दूसरी ओर मोड़ रखा, और सीधे उनकी ओर देखने के बारे में नहीं सोचा।

जब अंततः उन्हें एहसास हुआ कि वे मेरी आँखें उठाने में इस तरह सफल नहीं हो सकेंगे, तो उनमें से एक ने पहल की; उसने अपने हाथ से मेरे ठुड्डी को अपने चेहरे की ओर उठाया और चिढ़ाते हुए स्वर में कहा:

"आओ, आओ, जवान दोस्त - बस एक बार मेरी तरफ देखो! तुम इतने शर्मीले क्यों हो?"

और फिर वे सब खिलखिलाकर हंसने लगे।

उनके शरीर के स्पर्श से मैं अचानक होश में आई, पर ये कैसे? इस स्पर्श में कोई बिजली नहीं है? क्या सचमुच उन्हें मेरी तरह कोई शर्म नहीं आती? या फिर वो मुझे नज़रअंदाज़ करके अपनी इस बेरुखी को बरकरार रख पाए हैं?

यह जानने के लिए ही मुझे शास्त्र-आज्ञा की अवहेलना करनी पड़ी। मैंने अपनी आँखों का दीपक ब्रजगणों के चन्द्रमा-सदृश मुखों की ओर लगाया।

लेकिन अफ़सोस! मैं उनकी खूबसूरती के मर्म को समझ नहीं पाया। इतने करीब से देखने और इतनी बारीकी से देखने के बावजूद, मैं

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

205

मैं उनकी सुंदरता को निहार नहीं सका। मैं कवि की तरह नहीं कह सका:

"मैंने उसे बारीकी से देखा है

परन्तु मैं कोई उपमा नहीं जानता;

निद्रा के देश में, वह एक पवित्र स्वप्न है!

मैं खो गया था। उनकी सुंदरता को निहारते हुए मैं खो गया था। मैं स्वयं ब्रजांगना के शरीर में रूपांतरित हो गया था।

उस समय मेरी चेतना में आत्मा के योगमय मिलन की अनुभूति प्रबल रूप से सक्रिय हो रही थी। कई दिनों तक आकाश, वायु, वृक्ष, उपवन, पशु-पक्षी, पुरुष, स्त्रियाँ, बालक... प्रत्येक वस्तु मेरी दृष्टि में दिव्य सौंदर्य का रूप धारण करती रही; और जो भी सौंदर्य-वस्तु मुझे दिखाई देती, मैं तुरन्त उसमें परिवर्तित हो जाता, अपने लिए कुछ भी न रखता!

उसी प्रकार उस दिन मैं भी ब्रजांगना बन गयी... मेरे मुखमंडल का तेज जलता हुआ स्वर्ण के समान हो गया, नेत्र, नाक और कान ब्रजांगनाओं के समान सुन्दर हो गये; मेरे स्तन यौवन से फूले हुए थे; भौंहों की सुन्दर वक्रता में भी कोई कमी नहीं थी; मेरा वेश भी ब्रजांगनाओं के समान हो गया - और मैंने मन ही मन कहा:
"ओह, मैं कितनी सुन्दर हूँ!"
लेकिन मैं आत्म-चेतना में एकता के उस संसार में ज़्यादा देर तक नहीं रुक सकी। क्यों? क्योंकि उन्होंने मुझे आगे नहीं रहने दिया। एक ब्रजांगना ने मेरा हाथ पकड़ा, उसे हिलाया और हिंदी में कहा,
"अच्छा, नौजवान, तुम बोलते क्यों नहीं? क्या तुम मूर्ख हो या गूंगे?"
मैं सामान्य वास्तविकता में वापस आया और उत्तर दिया,
"नहीं में नहीं हूँ।"
"तो फिर तुम बोलते क्यों नहीं?"
"अभी-अभी मैंने कहा था, 'मैं इंतज़ार कर रहा हूँ कि आप मुझे जाने दें!"
"बस इतना ही! क्या यह आप बोल रहे हैं?"
"और क्या कहना है?" मैंने पूछा।
"ओह, क्या आप बस इतना ही कह सकते हैं? आप हमसे बहुत कुछ कह सकते हैं। जैसे, आप कहाँ से हैं, कहाँ रहते हैं, यहाँ क्यों हैं, किसके साथ हैं, आपके परिवार के बारे में कुछ बातें।"

206
वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार
बात करने के लिए बहुत सारी चीजें हैं! ..."
"लेकिन मैं इन विषयों पर अकेले ही क्यों काम शुरू करूँ? अगर आप मुझसे पूछें, तो बात अलग होगी। और बताइए, कैसा इंसान किसी अजनबी के सामने यूँ ही अपना प्रचार शुरू कर देता है?" मैंने मुस्कुराते हुए जवाब दिया।
जैसे ही मैंने यह कहा, एक दूसरी एराजंगना मेरे पास आई और मुझसे ऐसे ही प्रश्न पूछने लगी।
"हे युवक, क्या तुम बंगाली हो?" उसने पूछा।
"जी हाँ, मैडम," मैंने जवाब दिया।
"आप कहां से आये हैं?" उसने फिर पूछा।

"चूँकि मैं बंगाली हूँ, मैं बंगाल से आया हूँ। क्या आपने कलकत्ता के बारे में सुना है?"
"हाँ, बिल्कुल, हमने बंगालियों की कलकत्ता के बारे में ज़रूर सुना है।"
"आप सही कह रहे हैं - यही वह जगह है... मैं उसी कलकत्ता से हूँ।" मैंने जवाब दिया। "कलकत्ता कैसा है?" उसने पूछा?
"मैं कैसे कह सकता हूँ कि कलकत्ता कैसा है? कलकत्ता बिल्कुल कलकत्ता जैसा है।" उन्हें मेरा जवाब पसंद नहीं आया। उनमें से एक ने पूछा,
"क्या यह वृंदावन जैसा दिखता है? क्या वृंदावन जैसे मंदिर और राधा-कृष्ण हैं?" दूसरे ने कहा,
"तुम खड़े क्यों हो? जब तुम यहीं खड़े हो तो हम बातें कैसे कर सकते हैं? कृपया यहीं बैठ जाओ।"
"लेकिन आधा दिन बीत चुका है, और मैंने अभी तक न तो स्नान किया है और न ही खाना खाया है, तो आप मुझसे यह कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि मैं अभी बैठ कर बातें करूँ?" इयान ने उत्तर दिया।
"हाँ, बिल्कुल," सबने एक स्वर में कहा। "अभी हमें तुम्हें नहीं रोकना चाहिए। जाओ, कल बात करेंगे।"
मैंने अपना मौका नहीं गंवाया - मैं तुरंत वहां से चला गया।
अंततः उन्होंने मुझे उन सीढ़ियों से गुज़रने दिया!
शायद ब्रजांगनाओं को यह पसंद नहीं था कि मैं रोज़ उनके सामने से अजनबी की तरह झुकी हुई नज़रों से गुज़रूँ; इसलिए उन्होंने मुझे अपना परिचय दिया। परिचय पाने के लिए, इस तरह मेरा रास्ता रोककर बैठना उनकी चाल थी। क्योंकि, बाद में

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार
207
उस आखिरी घटना के बाद, मैंने पाया कि इस व्यवहार ने मेरी ज़िंदगी पूरी तरह बदल दी। अब मुझे उस दरवाज़े से गुज़रने में कोई परेशानी नहीं होती थी।
बेशक, मुझे अपनी देरी के लिए किसी को कोई सफाई नहीं देनी पड़ी। मुझे दिन में बस एक बार ही मकान मालिक के पास जाना होता था। लेकिन उस देरी की वजह से मेरा पूरा

कार्यक्रम प्रभावित हो गया। मैं यमुना स्नान के लिए देर से पहुँचा। मैं नहाने के बाद खाना खाता था - इसलिए मेरा खाना भी देर से बना।

तो अगले दिन, जब मुझे रास्ता खाली मिला, तो मैं जल्दी से भागने ही वाला था। लेकिन मकान मालिक की औरत इंतज़ार कर रही थी - वो मुझसे एक और काम करवाना चाहती थी। वो जल्दी से आई और मुझे पकड़ते हुए बोली,

"बंगाली, क्या तुम आज कुछ अतिरिक्त करोगे?"

"कृपया मुझे बताइये कि यह क्या है," मैंने उत्सुकता से उत्तर दिया।

"आज मेरी नौकरानी नहीं आई," उसने कहा। "क्या तुम नीचे कुएँ से मेरे लिए पीने का पानी का एक घड़ा ला सकते हो?" "क्यों नहीं? इतना छोटा-सा काम बताने में क्यों हिचकिचा रहे हो? अपना घड़ा दे दो।"

मैं घड़ा लेकर ब्रजवासियों के कमरों से होते हुए नीचे कुएँ से पानी भर लाया। ब्रजंगनाओं ने दूर से ही मुझे देख लिया और जब मैं उनके घर से लौट रहा था, तो उन्होंने मेरा सामना किया। एक ब्रजंगना ने मेरा रास्ता रोककर कहा,

"बंगाली, क्या तुम अपनी मकान मालकिन के लिए पीने का पानी लाए हो?"

"हाँ," मैंने कहा, "मैंने किया।"

"तो क्या आप हमारे लिए भी एक बर्तन पानी लाएंगे?"

और जब वह बोल रही थी, तो उसने अपनी अति सुन्दर कोमल बांह मेरे कंधे पर रख दी।

मैं समझ गया कि वे मकान मालिक के लिए पानी लाने पर मेरा मज़ाक उड़ा रहे हैं। इसलिए मैंने भी उनका साथ दिया:

"क्यों? क्या आपकी नौकरानी भी गायब है?" मैंने पूछा।

उसने उत्तर दिया,

"अरे नहीं साहब - नौकरानी आई है। ऐसी बात नहीं है। आपको पता है असल में क्या है? आज हम नौकरानी के हाथ का पानी नहीं पीना चाहते। हमें नौकरानी का लाया पानी पीने से घिन आ गई है। आपके हाथ का पानी कितना मीठा होगा! यही तो हम अनुभव करना चाहते हैं!"

एक और शामिल हुआ:

208

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

"हाँ भाई, हमारे लिए पानी ले आओ।" उसकी आवाज़ वीणा से भी ज़्यादा संगीतमय थी।

मैंने अपनी टूटी-फूटी हिंदी में विनोदपूर्ण लहजे में जवाब दिया:

"क्या यह संभव है? अगर मैं ले भी आऊँ, तो भी पानी वैसा ही रहेगा। लेकिन हाँ, अगर आप मुझे दो-तीन गाड़ी भरकर मिठाई दे दें, तो मैं पहले उसे कुएँ में डाल दूँगा, और देखूँगा कि पानी मीठा होता है या नहीं!"

इन शब्दों पर वे सब इतनी जोर से हंसे कि मुझे लगा कि वे जमीन पर लोटपोट हो जाएंगे।

जब हँसी बंद हुई तो उसने कहा,

"ठीक है, हम तुम्हें मिठाई देंगे, लेकिन कुएँ के लिए नहीं। हमारे लिए थोड़ा पानी लाओ।"

यह बातचीत चल ही रही थी कि उनमें से एक ने जल्दी से अपना पानी का घड़ा खाली करके मुझे दे दिया। मैं उनके लिए पानी लाने से खुद को नहीं रोक सका। बिना देर किए, मैं कुएँ से उनके लिए पानी ले आया। लेकिन मैंने सोचा भी नहीं था कि वे मुझसे यह मामूली काम करवाकर इतने प्रसन्न होंगे। जब मैं लौटा, तो एक ब्रजांगना ने ढेर सारे संदेशों का एक बड़ा गोला बनाकर मेरे हाथ में देते हुए कहा,

"टेक दिस प्रसाद ऑफ़ बनके बेहरीजी."

"वाह, क्या ही सौभाग्य है!" मैंने मन ही मन सोचा। "मुझे ब्रजगणेशी के हाथों से भगवान कृष्ण का प्रसाद मिला है।" मैंने उसे माथे से लगाया और ग्रहण कर लिया। मन ही मन, वृंदावन में ब्रजवासियों की सेवा करने की तीव्र अभिलाषा मेरे मन में थी - वह अभिलाषा उस दिन पूरी हुई, जब मैं जमींदार के यहाँ काम करने गया!

उस दिन के बाद से, ब्रजंगनाओं ने मुझे उनकी सेवा करने के और भी अवसर दिए। अगली सुबह उन्होंने मुझे एक अलग काम दिया। मीठी हँसी के साथ, बड़बड़ाते हुए, एक ब्रजंगना, जो अपने हाथ में एक बच्चे को लिए हुए थी, मुझसे स्नेह भरे स्वर में, जैसे हमारे घर में कोई बहन या कोई बहुत प्रिय व्यक्ति बात करता है, बात कर रही थी, बहुत पास खड़ी होकर मुझे धीरे से धकेल रही थी, उसने अपना हाथ मेरे कंधे पर रखा और कहा,

"बंगाली, मेरा बच्चा बहुत बीमार है। क्या तुम जाकर दवा ले आओ?"

"दवा?" मैंने पूछा। "दवा कहाँ से लाऊँ? क्यों?"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

209

क्या आप किसी ब्रजवासी से इसे लाने के लिए नहीं कहते?

ऐसा मत कहो। क्या उसके पास समय है?

"यह क्या है? बच्चा बीमार है और वह नहीं ला सकता..."

ब्रजांगना ने मुझे रोका और कहा,

"अगर यह असली दवा होती तो वह इसे ला सकता था; लेकिन यह वास्तव में दवा नहीं है... मुझे कुछ गन्ने की जड़ें चाहिए।"

"गन्ने की जड़ें?" मैंने पूछा। "लेकिन मुझे नहीं पता कि वृंदावन में गन्ने की जड़ें कहाँ मिलती हैं।"

"मैं तुम्हें बता रही हूँ कि कहाँ जाना है," उसने कहा... "क्या तुम रोज़ यमुना में नहाने नहीं जाते?"

"हाँ, मैं करता हूँ।"

"ठीक है - क्या आप उस खेत के विस्तार को जानते हैं जो यमुना नदी के किनारे है और जहाँ आप नहाते हैं?"

"हाँ।"

"खैर, उन खेतों में कई जगहों पर गन्ने की कटाई हो रही है; और कुछ जगहों पर गन्ने काट दिए गए हैं और ज़मीन साफ़ की जा रही है। अगर आपको अपने सामान्य रास्ते से थोड़ा हटकर जाने में कोई आपत्ति नहीं है, तो आप आसानी से खेत में पड़ी कुछ जड़ें उठा सकते हैं..."

"ठीक है!" मैंने कहा। "आज नहाने से पहले मैं तुम्हारे लिए कुछ ला सकती हूँ।" तभी एक और ब्रजांगना, यह सुनकर कि मैं रोज़ यमुना में नहाने जाती हूँ, मेरे पास आई और पूछा,

"बंगाली, क्या तुमने कहा था कि तुम रोज़ यमुना जाते हो?"

"जी मैडम, क्यों?" मैंने पूछा

"क्या आप कभी-कभी मेरे लिए कुछ कर सकते हैं?"

"अभी-अभी क्यों? ज़रूरत पड़ने पर मैं इसे रोज़ कर सकता हूँ। बताओ क्या है?"

"अच्छा," उसने कहा, "जब तुम यहाँ से जाओ, तो क्या तुम कल इस्तेमाल किए गए कुछ मुरझाए हुए फूल मेरे लिए यमुना के पानी में डाल देना चाहोगे? अगर हम रोज़ के फूल एक जगह रखेंगे, तो वे सड़ जाएँगे। मैं अपने छोटे बच्चे की वजह से उन्हें खुद यमुना में नहीं डाल सकती..."

जब वह बोल रही थी, तो उसके दोस्तों का एक समूह हमारे आस-पास इकट्ठा हो गया। जब उन्होंने उसकी बातें सुनीं, तो वे सब एक-एक करके अपनी बात कहने लगे,

"हाँ, हाँ, क्या आप हमारे मुरझाये हुए फूल भी ले जा सकते हैं?"

और कहीं ऐसा न हो कि मैं उनके लिए यह सेवा करने के लिए सहमत हो जाऊं, कहीं ऐसा न हो कि मुझे बोझ महसूस हो, इसलिए उन्होंने मुझे आश्वस्त किया:

210

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

"आपको इन्हें हर दिन लेने की ज़रूरत नहीं है... अगर आप इन्हें एक या दो सप्ताह में एक बार लेते हैं, तो भी काम चल जाएगा..."

वे समझ ही नहीं पाते कि मुझे कितनी खुशी हो रही है। दरअसल, अगर कोई मुझे एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ दे देता, तो मैं इतना प्रसन्न नहीं होता जितना उस समय हुआ, उनकी माँग सुनकर। मैं तो मानो खुशी से झूम उठा, मानो आसमान मेरी मुट्ठी में हो! ये ब्रजांगनाएँ, भगवान कृष्ण की पूजा में अर्पित अपने पुष्प, अपने अपार प्रेम और अभीप्सा से ओतप्रोत, मेरे हाथों से भेजना चाहती थीं? भला मैं ऐसा सौभाग्य कैसे पा सकता था!

तो मैंने प्रसन्नतापूर्वक कहा:

"सप्ताह में एक बार क्यों? मुझे इसे हर दिन क्यों नहीं करने दिया जाता?"

कहा, मैंने अपना शॉल महिलाओं के सामने ज़मीन पर रख दिया और

"आओ, मेरे कपड़े अपने फूलों से भर दो, मैं उन्हें अपने सिर पर ले जाऊँगा!"

"अरे नहीं! बंगाली, ये क्या कर रहे हो? शॉल में क्यों? सड़े हुए फूल इस पर दाग लगा देंगे।" वे एक साथ बोले।

"इस पर थोड़ा दाग लगने दो। मेरे लिए यह एक संकेत होगा - एक संकेत कि मैंने तुम्हारी कृष्ण पूजा में भाग लिया है!" मैंने उत्तर दिया।

वे बड़बड़ाने लगे: "देखो तो, कितना बचकाना है यह: शॉल में क्यों? - इन्हें पुराने अखबार में लपेटकर क्यों नहीं रखते?"

उनमें से एक ने तुरंत एक पुराना अखबार उठाया और मेरे सामने रख दिया।

मैंने कहा, "क्या इस कागज़ पर इतने सारे फूल आ सकते हैं? यह फट जाएगा और फूल सड़क पर गिर जाएँगे।"

"इसे क्यों फाड़ा जाए? दो-तीन पन्ने एक के ऊपर एक रख दो और उन्हें लपेटते जाओ।"

"नहीं, नहीं! मेरा रैपर उससे बेहतर है।"

मैंने फूलों को अपने आवरण में बांधना शुरू किया और वे फिर से हंसने लगे, कहने लगे:

"यह अच्छी बात है! शॉल पर एक चिन्ह होगा..."

अगले दिन मैंने स्वयं ही उनसे उनके मुरझाये हुए फूल मांग लिये और यमुना में डाल दिये; और वे तुरन्त मान गये।

पिछले दिन तो मैंने ध्यान नहीं दिया था, लेकिन इस बार मैंने देखा कि वे एक-एक करके मेरे पास आ रही थीं, और हर एक के पास खराब फूलों का एक अलग पैकेट था। तो मैंने पूछा,

"क्या आप हमेशा अपने-अपने घरों में अलग-अलग पूजा करते हैं?

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

211

कमरे? क्या तुम कभी साथ मिलकर पूजा नहीं करते?"

"हाँ, हम भी ऐसा ही करते हैं। खास त्योहारों पर हम सब इकट्ठा होते हैं। जैसे, रास, डोल, झूला और जन्माष्टमी के त्योहारों पर। ब्रजवासी अपनी पूजा मंदिर में करते हैं और हम अपनी पूजा अपने कमरे में साथ मिलकर करते हैं।" उन्होंने कहा।

"क्या यह सच है?"

"क्या आपको लगता है कि हम झूठ बोल रहे हैं?"

"अरे नहीं, मेरा मतलब यह नहीं था," मैंने जवाब दिया। "तुम झूठ क्यों बोल रहे हो? पर मेरे लिए तो यह चीज़ इतनी अद्भुत है कि मेरी कल्पना से भी परे है। जानते हो, मुझे कई दिनों से तुम्हारी कृष्ण-भक्ति अपनी आँखों से देखने की बड़ी लालसा थी।"

"लेकिन तुम्हें इसके लिए इतनी तरस क्यों खानी पड़ रही है और इतनी भीख क्यों मांगनी पड़ रही है?" वे सब एक साथ चिल्लाए।

"आप क्या कहते हैं? यह पूछने की कोई बात नहीं है?"

"इसमें पूछने की क्या बात है? आप देख सकते हैं।"

"क्या आप मुझे अपनी कृष्ण पूजा दिखाएंगे?"

"क्यों न हम तुम्हें दिखाएँ? जब कोई त्यौहार हो, तो तुम आ सकते हो।"

"तो फिर मेरी
एक ही विनती
है: मुझे आपके
पवित्र अवसर
के लिए सारे
फूल लाने
दीजिए।"

212

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

ब्रजांगनाएँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। वे मेरे अनुरोध से प्रसन्न थीं, और मैं जानता था कि उनकी प्रसन्नता भरी हँसी मेरे प्रस्ताव पर सहमति का संकेत थी।

नोट्स और संदर्भ

1. उत्सवों में बजाया जाने वाला शहनाई जैसा वाद्य यंत्र। यह संगीत की एक विधा है जो आमतौर पर सुबह के समय बजाई जाती है और विरह की भावना को दर्शाती है।

2 'भाई' का मतलब असल में भाई होता है। लेकिन किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि ब्रंजंगणाओं ने मेरे साथ भाई का रिश्ता जोड़ने की कोशिश की। वे इस शब्द का इस्तेमाल पति से लेकर दोस्त तक, सभी को संबोधित करने में करते हैं, जैसे रसोइया हर व्यंजन में नमक डालता है।

3 दूध से बनी एक प्रकार की मिठाई।

अध्याय बारह

मैं भविष्य के बारे में दिवास्वप्न देखने लगा: वर्तमान में मैं मकान मालिक और उसकी पत्नी की सेवा के लिए प्रतिदिन दस पैसे बचा रहा था।

जब मेरे पास पचास-साठ रुपये जमा हो जाते, तो मैं पांडिचेरी जाने के लिए ट्रेन का टिकट खरीद लेता। मैं एक नई कमीज़ और धोती भी खरीद लेता। आश्रम में माताजी से मिलने के लिए सज्जनों की तरह तैयार होना अच्छा लगता। मैं जो कपड़े रोज़ पहनता था, वे उस मौके के लिए बिलकुल उपयुक्त नहीं होते - और हो सकता है कि वे इस बीच फट भी जाएँ। और अगर मैं पांडिचेरी में माताजी के पास पहुँच भी जाऊँ, तो ओह - मेरी सारी चिंताएँ खत्म हो जाएँगी: उसी पल से वह मेरे पूरे जीवन की बागडोर अपने हाथ में ले लेंगी!

पचास-साठ रुपये इकट्ठा करना, ज़ाहिर है, रातोंरात नहीं हो सकता था; दरअसल, जब मैंने हिसाब लगाना शुरू किया कि इसमें कितना समय लगेगा, तो मुझे एहसास हुआ कि इसमें दो से तीन साल लगेंगे। खैर, जो भी हो, समय का कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा... आख़िरकार, वृंदावन में ये दिन बड़े आनंद से बीत रहे थे - और भी ज़्यादा, क्योंकि मैं इन ब्रजवासियों और ब्रजांगनाओं के संपर्क में आ चुका था और उनकी सेवा करने का अवसर पा चुका था।

लेकिन एक दिन, मेरा ये दिवास्वप्न चकनाचूर हो गया। कैसे? खैर, यही कहानी मैं बताने जा रहा हूँ:

मैं रोज़ दोपहर को यमुना में स्नान करता; फिर अपनी गीली धोती नदी के घास वाले किनारे धूप में सुखाने के लिए फैलाकर वहीं बैठा रहता। सच है कि मैं आँखें खोले बिना वहीं बैठा रहता... क्योंकि दिन के बीच में मेरी आँखों के पास करने को कुछ नहीं होता; इसलिए मैं आँखें खोले वहीं बैठा रहता।
214

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

बंद किया हुआ।

एक दिन जब मैंने आँखें खोलीं, तो देखा कि मेरी धोती मेरी नाक के नीचे से अचानक गायब हो गई थी। मैं वहाँ शायद आधा घंटा रहा था, या ज़्यादा से ज़्यादा एक घंटा... फिर भी इतनी देर में कपड़ा गायब हो गया, मानो किसी जादू से! बाहर खुले में तेज़ हवा चल रही थी; लेकिन कहीं हवा उसे उड़ा न ले जाए, इसलिए मैंने कपड़े के दोनों सिरे घास और लताओं से मज़बूती से बाँध दिए थे। और तो और, मैं किनारे पर बैठा था; चारों तरफ पके गेहूँ के खेत थे, उनकी नुकीली बालियाँ ऊपर उठी हुई थीं, इसलिए कपड़ा ज़्यादा दूर नहीं उड़ सकता था। हो सकता है वह गेहूँ में फँस गया हो... मैंने ऊपर-नीचे, ऊपर-नीचे, काफ़ी दूर तक, कई बार ढूँढा। लेकिन उसका कोई निशान नहीं मिला।

यमुना किनारे यह जगह बिलकुल सुनसान थी; यहाँ से कोई राहगीर कम ही गुज़रता था। और मैं सोच रही थी कि कोई मेरा कपड़ा क्यों लेना चाहेगा? वह इतना पुराना और घिसा हुआ था कि मैं सोच भी नहीं सकती थी कि कोई और उसे लेगा। तो दो सवाल थे: ऐसा क्यों हुआ, और कैसे?

और फिर अचानक मुझे यह बात समझ में आई कि वृंदावन में कपड़ों की चोरी कोई नई बात नहीं है, बल्कि यह तो वहां प्राचीन काल से ही होती आ रही है।

मैंने सोचा, "क्या वृंदावन में अब भी कपड़े चोरी हो रहे हैं? लेकिन क्या उस प्रथा के कारण मेरी धोती भी चोरी हो जाएगी? इसमें क्या रोमांस है?"

और मैंने मन ही मन उत्तर दिया: "शायद कुछ तो है। शायद वह चोर आज भी अपनी यह पुरानी आदत नहीं भूल पाया होगा। या शायद उस चोर का मेरी धोती चुराने का कोई इरादा हो - शायद वह मुझे वृंदावन से दूर ले जाना चाहता हो।"

लेकिन यह जानकर मुझे थोड़ी राहत मिली कि मेरा कपड़ा उस दैवी चोर के कब्जे में था!¹

खैर, बहुत देर तक ढूँढ़ने के बाद भी जब मुझे अपनी धोती कहीं नहीं मिली, तो मैंने अपनी शॉल कमर पर लपेट ली और गुफा में अपने आश्रय में लौट आया। उस दिन मैं भागवत पाठ और गोपी-गीत में शामिल नहीं हो सका।

तो अगले दिन मुझे तुरंत एक धोती खरीदने की ज़रूरत पड़ी... अगर दस हाथ लंबा 'सेनगुप्ता' कपड़ा न भी हो, तो कम से कम छह हाथ मोटा कपड़ा। और मुझे उसे उसी सुबह खरीदना था - वरना मैं न तो छत्रों पर खाना खाने जा पाता, न ही कहीं और।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

215

अन्यथा।

जहाँ आमदनी है, वहाँ खर्च भी है। जब तक मेरे पास आमदनी का कोई ज़रिया नहीं था, तब तक मेरा एक पैसा भी खर्च नहीं हुआ। लेकिन अब जब मैंने कमाना शुरू किया है, तो

मुझे अपनी कमाई खर्च करनी पड़ रही है। और सिर्फ़ धोती ही नहीं... मेरे रुमाल ने भी उसी समय यह संकेत दे दिया था कि कुछ दिनों बाद मेरे ख़िलाफ़ असहयोग आंदोलन शुरू हो जाएगा।

मैंने मन ही मन सोचा, "नहीं! इस तरह प्रतिदिन दस पैसे जमा करके, पांडिचेरी तक का रेल किराया कभी भी इकट्ठा करना संभव नहीं होगा; दो या तीन साल की तो बात ही छोड़िए... दस साल में भी यह काम नहीं हो पाएगा।"

मुझे लगा कि यह कोशिश बेतुकी थी - कहानी में उस माँ-पक्षी की कोशिश की तरह, जो अपनी चोंच से समुद्र का सारा पानी खाली करके, अपने डूबते बच्चे को बचाने की कोशिश कर रही थी। शायद पहले मैंने इस बात का गलत अनुमान लगाया था, या शायद यह जानते हुए भी कि यह बेतुकी बात है, मैंने फिर भी कोशिश की, जैसे डूबता हुआ आदमी तिनके का सहारा लेता है। लेकिन अब और नहीं। अब मुझे लगा कि किसी भी तरह पांडिचेरी पहुँचना ज़रूरी है!

निराशा के इसी क्षण में, संयोग से मेरी मुलाक़ात एक ऐसे साधु से हुई जिन्होंने मौन व्रत धारण कर लिया था। वे पुराने गोविंदजी मंदिर में रहते थे। समुदाय में सभी उनका सम्मान करते थे। उनकी ज़रूरतें बहुत कम थीं: सबसे ठंडे महीनों में भी वे सिर्फ़ एक लंगोटी पहनते थे, और मंदिर परिसर में एक गुफा में रहते थे। उनके पास न तो कोई नौकर था और न ही कोई शिष्य, और उन्हें जो भी उपहार दिए जाते थे, वे उसे अस्वीकार कर देते थे। हर दिन वे एक ही छत्त पर जाते थे और सिर्फ़ दाल और रोटी खाते थे।

कहा जाता था कि वह बंगाली थे और कभी जज भी रहे थे। उनकी उम्र का किसी को अंदाज़ा नहीं था, लेकिन उनका रूप युवा था और उनके चेहरे पर बच्चों जैसी सादगी थी। उनके सिर पर एक भी सफ़ेद बाल नहीं था और उनके सारे दाँत थे। उन्हें एक आत्मसाक्षात्कारी माना जाता था और बहुत से लोग उनसे आशीर्वाद लेने आते थे। तीर्थयात्री उनसे वैसे ही मिलने आते थे जैसे गोविंदजी के दर्शन करने जाते थे। धनी व्यापारी उन्हें कुछ दान दे पाते तो खुद को धन्य समझते - लेकिन वह किसी को ऐसा मौका नहीं देते थे।

वह अपना पूरा दिन वृंदावन के मंदिरों में जाकर और लेटकर अपने पूरे शरीर पर पवित्र रोजा का लेप लगाकर बिताते थे।

216

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

और जमीन पर लोटते रहते थे; बाकी समय वह गोविंदजी मंदिर के बरामदे की ऊंची खिड़की में अकेले बैठे रहते थे।

जिन दिनों भागवत पाठ नहीं होता था, शाम को मैं उनके पास जाकर बैठ जाता था। वे न तो किसी को बुलाते थे, न मना करते थे, और चाहे कोई उनके पास बैठकर बातें भी करे, किसी से कुछ नहीं बोलते थे... वे हमेशा चुप रहते थे। फिर भी, उनके पास रहकर मुझे बहुत अच्छा लगता था।

उस दिन भी मैं मंदिर में उनके पास जाकर बैठ गया। पर पता नहीं उस दिन क्या हुआ... संत ने मेरी तरफ देखा और हल्के से मुस्कुराए। उनकी वह बेवजह मुस्कान देखकर

मुझे लगा कि वे मुझ पर अपनी कृपा बरसा रहे हैं। मैंने उन्हें प्रणाम किया और फिर भावुक होकर कहा,

"हे महाराजजी, यदि आप मुझे एक विषय पर मार्गदर्शन देने की कृपा करें तो मुझे बहुत लाभ होगा। मैं बहुत दिनों से आपसे यह बात कहने की इच्छा कर रहा था, परन्तु हिम्मत नहीं हुई।"

संत ने तुरंत मुझे अपने पास बैठने का इशारा किया और पूरी कहानी बताई। मैंने उनसे अपनी समस्या बताई:

"मैं वृंदावन में नहीं रह सकता; दूसरी ओर मुझे पांडिचेरी जाने का कोई रास्ता नहीं मिल रहा। कृपया मुझे बताइए कि मैं यह कैसे करूँ।"

वह सब कुछ ध्यानपूर्वक सुनता था, कभी अपना हाथ ऊपर उठाता, कभी नीचे कर लेता; कभी पत्थर के फर्श पर कुछ बनाता... उसने अपना संदेश मुझे स्पष्ट रूप से बताया:

"किसी भी रास्ते से पांडिचेरी जाओ। मैं कहता हूँ कि यह तुम्हारे लिए बहुत अच्छा होगा।"

"मैं तो बिना टिकट के ही जा सकता हूँ," मैंने जवाब दिया। "क्या आप यह सुझाव दे रहे हैं कि मुझे बिना टिकट के ही यात्रा करनी चाहिए?"

संत ने मुझे बताया,

"जब तुम्हारे पास कोई और रास्ता न हो, तो उस रास्ते पर चलो। तुम देखोगे कि ईश्वर तुम्हारी मदद करेगा।" और उनके दृढ़ भाव ने उनके संदेश को मुझ पर अंकित कर दिया।

खैर, मुझे बस इतना ही सुनना था। पांडिचेरी जाने से मुझे रोकने के लिए अब कोई और बाधा नहीं थी। किसी विशेष तैयारी की ज़रूरत नहीं थी: किसी भी दिन, शायद कल या उसके अगले दिन, मैं निकल सकता था। बस जाने से पहले, मेरे जाने की खबर ज़मींदार को देनी होगी ताकि वह किसी और आदमी को नियुक्त कर सके।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

217

उसके काम के लिए.

अगली सुबह मैंने छत्रों में अपनी मधुकरी पूरी की और फिर अपने मकान मालिक के घर की ओर चल पड़ा। चलते-चलते मेरी मुलाक़ात उस वैष्णव महिला से हुई जो मकान मालिक की नौकरानी थी। उसे टेबल फ़ैन उठाने में दिक्कत हो रही थी; उसे बार-बार हाथ बदलने पड़ रहे थे। उसकी परेशानी देखकर, मैं जल्दी से उसके पास पहुँचा और बोला,

"चूंकि हम एक ही स्थान पर जा रहे हैं, इसलिए मैं आपकी मदद कर सकता हूं।"

उसने बिना किसी हिचकिचाहट के मुझे पंखा थमा दिया और मेरे साथ चलने लगी।

यह वैष्णव महिला काफी युवा थी, फिर भी वह एक वृद्ध महिला की तरह संयमित थी। उसने कोई आभूषण नहीं पहने थे, और एक विधवा की तरह सादे सफेद कपड़े पहने हुए थी। हालाँकि मैंने कई बार उसका पानी ढोने का काम किया था, उसने मुझसे कभी बात नहीं की थी। लेकिन जब मैंने उसके हाथ से भारी पंखा लिया, तो वह बहुत खुश हुई, और उसके मुँह से शब्द निकलने लगे। उसने कहा,

"बंगाली, काश तुम मेरा सारा काम कर पाते। असल में, तुम अक्सर मेरा सारा काम करते हो... कई बार मैंने छुट्टी ली ताकि तुम्हें काम मिल सके।"

"लेकिन तुमने तो मुझे एक बार भी ऐसा नहीं बताया!"

"मैं तुम्हें कैसे बताऊँ? जब मुझे छुट्टी मिले, तब तुम आना। वैसे भी मकान मालिक की बीवी कितनी सख्त औरत है। पर मैं अभी कह रहा हूँ - मेरा सारा काम तुम ही क्यों न कर दो?"

मैंने कहा, "यदि आप यह काम मुझे सौंप दें, तो मुझे इसका लाभ मिलेगा... लेकिन आप इसे कैसे संभालेंगे?"

"मैं काम चला लूँगी," उसने गर्व से कहा। "वृंदावन में मेरे लिए काम की कोई कमी नहीं है। मैं पाँच और घरों में भी काम करती हूँ। फिर हर महीने 'हरे-राम' सभा में गाने-बजाने का एक और स्थायी काम है; और फिर घर पर मेरी माँ भी हैं - तो मुझे किस बात की चिंता?"

मैंने पूछा, "तुम्हें कैसे पता चला कि मुझे कोई समस्या है और मैं ठीक नहीं हूँ?"

"समझना मुश्किल नहीं है। मैं साफ़ देख सकता हूँ। वरना क्या कोई दस पैसे में ये मालिश करेगा?"

जवाब मेरे लिए बेशक अपमानजनक था; लेकिन तब मुझे न तो सम्मान का, न अपमान का अहसास हुआ; और तो और, उसी दिन मैं उस नौकरी से इस्तीफ़ा देने वाला था - इसलिए उसका वार मुझे ज़रा भी नहीं छू पाया। मैंने उससे कहा,

218

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

"क्या तुम्हें पता है, मैं उस काम से इस्तीफ़ा देने जा रहा हूँ? मैं मकान मालिक को यह सूचना देने आया हूँ कि मैं जा रहा हूँ।"

"आप इस्तीफ़ा क्यों दे रहे हैं? क्या यह आपको शोभा नहीं देता?" वैष्णव महिला ने मुझसे पूछा।

"नहीं।"

"लेकिन अगर मैं आपके लिए कोई नौकरी ढूंढ दूं तो क्या आप अच्छा काम करेंगे? मेरे पास एक अच्छा काम है।"

"मुझे नहीं मालूम आपका काम क्या है। अगर आपने मुझे पहले बताया होता, तो मैं कोशिश करता। लेकिन अब मुझे किसी काम की ज़रूरत नहीं है - मैं वृंदावन जा रहा हूँ।"

उसने पूछा, "तुम कहाँ जा रहे हो? अपने गाँव?"

"अपने गाँव नहीं। मैं पांडिचेरी जा रहा हूँ।"

"आप कब लौटेंगे?"

"मैं वापस नहीं आऊंगा। मैं वहीं बस जाऊंगा।"

शायद उसे यकीन ही नहीं हुआ। वो मेरे चेहरे को घूरती रही। लेकिन मेरे पास उसे समझाने का समय नहीं था, क्योंकि बात करते-करते हम मकान मालिक के घर के ग्राउंड फ्लोर पर पहुँच चुके थे। इसलिए मैंने उसे टेबल-फैन वापस दे दिया और उसके कमरे में चला गया।

मुझे डर था कि कहीं वो मुझसे नाराज़ न हो जाएँ। मैं अपनी बात कैसे कहूँ? शायद वो मुझे जाने ही न दें। लेकिन जब मैंने उन्हें बताया कि मैं पांडिचेरी जाना चाहता हूँ, तो उन्होंने ज़रा भी आपत्ति नहीं जताई। बल्कि उन्होंने बहुत उत्साहवर्धन करते हुए कहा,

"आप पांडिचेरी जाना चाहते हैं। यह बहुत अच्छी बात है। आप अपने आध्यात्मिक गुरु के स्थान पर रहेंगे। क्या मैं आपको रोक सकता हूँ? मेरे काम की चिंता मत कीजिए। आप जिस दिन चाहें जा सकते हैं। संन्यासी किसी और को ले आएगा। मेरी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं!"

तो मैंने उसे अलविदा कहा। यह एक गर्मजोशी भरा, सौहार्दपूर्ण विदा था।

उस दिन जब मैं आखिरी बार उस मोहल्ले की गलियों से गुज़र रहा था, तो मेरी मुलाक़ात एक ब्रजंगना से हुई। यह बिलकुल असामान्य था। हर दूसरे दिन मैं इस रास्ते पर उनके समूहों से मिलता था, लेकिन मैंने कभी किसी को अपने समूह से अलग होते नहीं देखा - वे हमेशा एक समूह में ही चलते थे।

तो मैंने उस महिला से पूछा जिससे मैं मिली थी,

"लगता है तुम्हारा घर खाली है... तुम्हारे बाकी दोस्त कहाँ हैं?"

"ओह, हमारे अन्य मित्र?" उसने उत्तर दिया, "वे कल मथुरा नगरी में पवित्र उत्सव देखने गए थे।"

"सचमुच? क्या अवसर है?"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

219

"परसों पूर्णिमा होगी। वे लोग डोल का पवित्र त्यौहार मनाने अपने पैतृक घर गए हैं।"
"और उनके सभी पैतृक घर मथुरा में हैं?"
"सभी नहीं... वे सभी उनमें से किसी एक के घर चले गए हैं।"
"ओह, मैं समझ गया! बिल्कुल हमारे यहाँ की तरह। हमारे यहाँ भी सभी गृहणियाँ किसी न किसी के मायके में जमा हो जाती हैं। लेकिन वे कब लौटेंगी?"
"तीन या चार दिन बाद।"
"तो फिर मैं उनसे नहीं मिलूँगा। मैं कल जा रहा हूँ!" मैंने कहा।
"क्यों? क्यों? तुम कहाँ जा रहे हो?" वह काफ़ी चिंतित लग रही थी।
"बहुत दूर... पांडिचेरी तक।"
"आप कब लौटेंगे?"
"कभी नहीं," मैंने कहा। "मैं वहीं बस जाऊँगा।"
"अरे, ऐसा मत कहो कि तुम कभी वापस नहीं आओगे! वृंदावन में ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए!"
"ऐसा नहीं करना चाहिए?" मैं आश्चर्यचकित था।
"नहीं। चाहे तुम वापस आओ या नहीं, फिर भी कहो कि तुम फिर आओगे। जब तुम फिर आओ, तो हमसे मिलना ज़रूर याद रखना!" उसने कहा।
उसकी आवाज़ में सहानुभूति थी.
"हाँ," मैंने कहा। "मैं फिर आऊँगा और किसी दिन आप सब से मिलूँगा।"
तो यह भी एक बहुत ही सौहार्दपूर्ण विदाई थी।
मैंने सब तरफ से विदा ले ली थी। फिर भी मुझे संतुष्टि नहीं हुई। मेरा पूरा अस्तित्व अपनी सहमति देकर यह नहीं कह रहा था -
"ठीक है - सब ठीक है: मैं वृंदावन से बचकर निकल आया हूँ!"
हालाँकि मैंने अगले दिन ही निकलने का मन बना लिया था, फिर भी कहीं न कहीं एक हल्की-सी उम्मीद बंधी थी कि शायद जाने का दिन थोड़ा टल जाए। शायद मकान मालिक मुझे कुछ दिन इंतज़ार करने को कहे ताकि वह अपने काम के लिए कोई नया आदमी ढूँढ़ सके। फिर अपनी अनिश्चित यात्रा पर निकलने से पहले, कुछ और दिन आनंद में बिताऊँगा।

लेकिन नहीं! वृंदावन में मेरा प्रवास अगले ही दिन समाप्त होने वाला था। हर दिन मेरे साथ कितनी ही खास घटनाएँ घटीं, और कल ये सब अतीत बन गया; अब मैं यमुना नदी नहीं देख पाऊँगा, न ही गोवर्धन पर्वत पर होने वाली संध्या आरती।

220

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

न तो इंद्रजी के मंदिर में जा सकते हैं, न ही गोपीनाथ के मंदिर में भागवत पाठ के लिए मण्डली में शामिल हो सकते हैं, न ही ब्रजवासियों और ब्रजंगनाओं की पवित्र संगति का आनंद ले सकते हैं।

जैसा कि श्री राधा ने कहा:

"मैं नहीं जानता कि श्यामा के नाम में कितना मधु है! उस नाम को गाए बिना मेरा मुँह चैन नहीं पाता!"

यही मधुरता का भाव अब मुझे सम्पूर्ण वृन्दावन में महसूस होने लगा, तथा सब कुछ छोड़ देने के विचार से मेरे हृदय में दुःख की एक भयंकर चीख उठी।

लेकिन फिर भी, मुझे वृंदावन छोड़ना ही था, और अगले ही दिन! बस इतना ही था - अब पीछे मुड़कर देखने का कोई सवाल ही नहीं था!

और जाने से पहले केवल एक ही काम बाकी था: मकान मालिक से मिले शेष धन का सर्वोत्तम उपयोग करना।

कपड़ा खरीदने के बाद मेरे पास दो-तीन रुपये बचे थे। रास्ते में ये पैसे मेरे किसी काम नहीं आते... और अगर मैं बिना टिकट के सफ़र करने वाला था, तो क्या रास्ते में नाश्ता ख़रीदना बिलकुल अनुचित नहीं होता? अगर मैं ये रुपये अपने पास रखता, तो मुझे लगता कि मैं उस पर पूरा भरोसा न रखने का पाप करूँगा जिसके पास मैं जा रहा हूँ। रास्ते में अपनी जीविका के लिए मैंने सिर्फ़ ईश्वर पर ही निर्भर रहने का फ़ैसला किया... मैं अपने स्वामी के साथ चलूँगा।

तो मैं ज़मींदार के घर से सीधा बांके बिहारी जी के मंदिर गया; उनके बाज़ार से अपने बचे हुए सिक्कों से कुछ दूध की मिठाइयाँ खरीदीं और बांके बिहारी जी की पूजा में अर्पित कीं। लेकिन पता नहीं क्यों, पूजा पूरी होने के बाद पुजारी जी ने बहुत कम प्रसाद रखा और ज़्यादातर मिठाइयाँ मुझे वापस कर दीं। ऐसा बहुत कम ही होता है।

मैं इस सारे प्रसाद का क्या करता? अकेले भगवान का प्रसाद नहीं खाना चाहिए। मुझे अंदाज़ा था कि ऐसी नौबत आएगी, तो मैं अपने सिक्के भगवान को चढ़ा देता... फिर उनकी सेवा में लग जाते।

मैं मंदिर के प्रांगण में खड़ा होकर इधर-उधर देखने लगा कि कोई प्रसाद लेने आया है या नहीं। लेकिन कोई नहीं था। दोपहर का समय था।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

221

मुझे कोई नहीं मिला जिसे मैं इसे बाँट सकूँ। मैं उलझन में पड़ गया। मंदिर के अंदर सिर्फ़ दो पुजारी थे, और आँगन में एक वृद्ध वैष्णव महिला, जो डफली बजाते हुए बार-बार भगवान कृष्ण की स्तुति गा रही थी।

मैं उसके पास जाकर खड़ा हो गया, इस इरादे से कि जब वह अपना गाना समाप्त करेगी तो उसे प्रसाद दे दूँ... लेकिन ऐसा लग रहा था कि वह कभी गाना बंद ही नहीं करेगी; वह अपनी डफली की धुन पर कुछ शब्द बार-बार दोहरा रही थी:

"जय हो, गोपाल की जय हो, गोविंद की जय हो - राधा के प्रेमी हरि की जय हो।"

वह गहरे ध्यान में लीन थी, अपनी बाहरी चेतना से बिल्कुल बेखबर। उसे पता ही नहीं चला कि मैं इतनी देर से उसके सामने प्रसाद लेकर खड़ा हूँ। मुझे लगा कि मुझे उसे यह भौतिक प्रसाद देने के लिए उसके ध्यान में बाधा नहीं डालनी चाहिए; उसे उस आंतरिक आध्यात्मिक प्रसाद के आनंद से वंचित करना गलत होगा जिसका वह आनंद ले रही थी।

मैं उसके सामने खड़ा होकर सोच रहा था कि आज कैसा अजीब दिन है! मंदिर प्रांगण में इस बुढ़िया के अलावा कोई नहीं था। किसी भी और दिन उसी समय, या शायद उससे थोड़ा पहले, मैंने हमेशा दर्शकों, तीर्थयात्रियों और साधु-संतों और भिखारियों की भारी भीड़ देखी थी। बेशक, उस दिन मैं थोड़ा देर से पहुँचा था। मैंने इस जगह को इतना खाली पहले कभी नहीं देखा था। मैं ज़मींदार के घर जाते हुए दिन में दो-तीन बार इस इलाके से गुज़रता था... लेकिन मैंने इसे पहले कभी इस तरह नहीं देखा था।

मैं सोचने लगा कि कहीं प्रसाद वितरित न कर पाना राधारानी की मुझसे नाराजगी का संकेत तो नहीं है!

लेकिन तभी मेरे सामने एक अद्भुत दृश्य आया: एक सुंदर युवा वैष्णव महिला मंदिर के द्वार से बाहर आई।

वृंदावन में बिताए इतने महीनों में, मैंने इतनी सुंदर वैष्णव स्त्री कभी नहीं देखी थी। मैंने जितनी भी देखीं, उनमें से ज़्यादातर विधवाएँ थीं... लगभग सभी वृद्ध थीं और उनके सिर मुंडे हुए थे। लेकिन यह स्त्री जवान और बेहद खूबसूरत थी। उसके बालों में एक विवाहित स्त्री का सिंदूर लगा था, और उसकी नाक और माथे पर कलात्मक ढंग से चंदन लगा हुआ था मानो उसने नए कपड़े पहने हों; उसने एक सुंदर सा मुकुट पहना हुआ था।

222

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

नीले किनारे वाला पीला कपड़ा; कुछ नाजुक कंगन उसकी कलाइयों की शोभा बढ़ा रहे थे, और उसके हाव-भाव में कुछ उत्तम अभिजात्य भाव था।

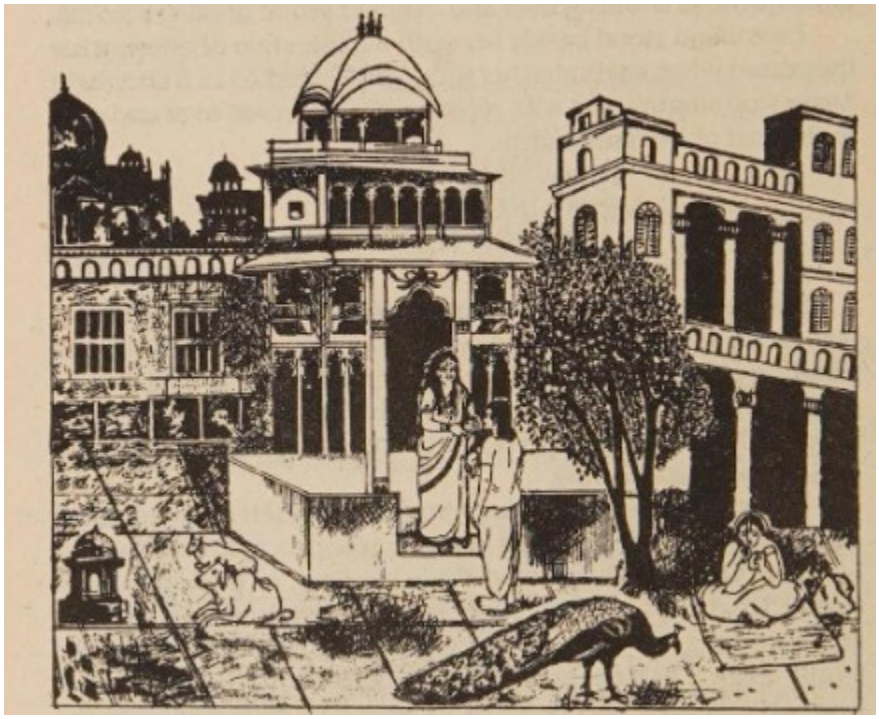

उसने मेरा पूरा ध्यान अपनी ओर खींच लिया। मैं अभी भी अपनी समस्या के बारे में सोच रहा था... "हे भगवान! इतने लंबे इंतज़ार के बाद आखिरकार कोई तो आया... लेकिन क्या उसे प्रसाद देना संभव होगा? क्या वो मुझसे प्रसाद लेगी? मैं इतने अमीर आदमी की पत्नी को प्रसाद लेने के लिए कैसे कह सकता हूँ?"

लेकिन कितना अद्भुत! वह वैष्णव महिला सीधे उस आँगन में आई जहाँ मैं खड़ा था और मेरे सामने खड़ी हो गई, मुस्कुरा रही थी, दोनों हाथ फैलाए हुए...

सचमुच एक चमत्कार! मैं पूरी तरह से धन्य और संतुष्ट महसूस कर रहा था।

लेकिन फिर मेरे विचार दूसरी दिशा में बहने लगे:

"उसे कैसे पता चला कि मैं प्रसाद बाँटना चाहता हूँ? मैं तो बस हाथ में पत्तों का पैकेट लिए खड़ा था - मैंने उसे किसी भी तरह से नहीं बुलाया। फिर उसने कैसे हाथ आगे बढ़ाए?"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

223

मुझे?"

लेकिन ये ख्याल मेरे ज़हन में बस एक पल के लिए ही आया। फिर वो मुझे देखकर मुस्कुराई और मेरे सारे सवाल कहीं खो गए... अगले ही पल मैं सब कुछ भूल गया; बस मन

ही मन बहुत शुक्रगुज़ार हुआ क्योंकि आख़िरकार मुझे कोई तो मिल गया था जिसे मैं प्रसाद दे सकता था।

मैंने उसके दोनों हाथ मिठाइयों से भर दिए। वह बहुत खुश होकर ऐसे चली गई मानो मंदिर छोड़कर जा रही हो।

जैसे ही वह चली गई, मैंने अपने प्रसाद के पैकेट की ओर देखा। उसके हाथ भरने के बाद भी, पैकेट में अभी भी काफी मात्रा में बचा हुआ था। मेरे चंद सिक्कों से काफी मिठाइयाँ खरीदी जा सकती थीं: उस समय वृंदावन में दूध तीस या चालीस पैसे किलो मिलता था, और गाढ़ा दूध या रबड़ी सिर्फ़ सत्तर या अस्सी पैसे किलो। मुझे बस किसी और के आने का इंतज़ार करना था जिसे मैं बाकी प्रसाद बाँट सकूँ!

मैंने खुद को दोषी ठहराया: "हे भगवान! अगर मैं ज़रा भी समझदार होती, तो उसे पूरा पैकेट दे देती! फिर मुझे यहाँ खड़ा नहीं रहना पड़ता। इतने इंतज़ार के बाद, राधारानी ने मुझे कोई भेजा, और मैं इस मौके का फ़ायदा नहीं उठा सकी! मुझे फिर से बेसब्री से इंतज़ार करना पड़ेगा, पता नहीं कब कोई आ जाए!"

इसलिए मैंने राधारानी से प्रार्थना की कि वे मुझे कोई और भेज दें, और अपनी प्रतीक्षा की तपस्या फिर से शुरू कर दी। मैंने फिर से अपने चारों ओर देखा कि कहीं कोई पीछे से तो नहीं आ रहा। मैं उस बुढ़िया के पास गया जो अभी भी जप कर रही थी, यह देखने के लिए कि क्या उसकी चेतना सामान्य हो गई है... लेकिन वह अभी भी पहले की तरह आँखें बंद करके गा रही थी। कोई और दिखाई नहीं दिया।

कुछ देर वहाँ खड़े रहने के बाद, अचानक मुझे वही युवती वैष्णव महिला फिर दिखाई दी। वह फिर से उसी मंदिर के द्वार से बाहर आ रही थी जहाँ से वह पहले आई थी।

"कितना अजीब है! मैंने उसे उस तरफ़ वापस जाते नहीं देखा। वो फिर से उसी दरवाज़े से कैसे बाहर आ गई? मुझे यकीन है कि मंदिर में जाने का कोई और रास्ता नहीं है।" मैंने सोचा।

पर सोचने का समय ही नहीं था... मन प्रसन्नता और कृतज्ञता से भर गया कि आखिरकार मैं प्रसाद बाँटने का काम पूरा कर पाऊँगा - कि राधारानी ने मेरी मनोकामना अधूरी नहीं रहने दी, किसी को मेरे पास भेज दिया। "धन्यवाद,

224

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

राधारानी, थैंक यू!"

वह महिला पहले की तरह मुस्कुराती हुई मेरी ओर आई और फिर से मेरे सामने हथेलियाँ फैलाकर खड़ी हो गई। लेकिन इस बार उसकी मुस्कान में कुछ हास्य झलक रहा था।

मैंने सोचा, "मैंने उसे पहचान लिया है... शायद इसीलिए वह ऐसे मुस्कुरा रही है; या हो सकता है कि वह शर्म से मुस्कुरा रही हो क्योंकि वह दूसरी बार हाथ फैलाकर मेरे पास आई है।"

लेकिन उसके दो बार आने के बारे में मेरे मन में कोई और विचार नहीं था... क्योंकि पता नहीं किसी और के लिए मुझे कितनी देर इंतज़ार करना पड़ता। मेरा इरादा था कि मैं सारा प्रसाद बाँट दूँ और खुद बस एक छोटा सा टुकड़ा लूँ... चाहे मुझे शाम तक इंतज़ार ही क्यों न करना पड़े, मैं वही करूँगा। इसलिए मुझे खुशी हुई कि मुझे एक उम्मीदवार मिल गया।

कृतज्ञता और प्रसन्नता से भरकर मैंने फिर से उसके दोनों हाथ मिठाइयों से भर दिए। बहुत प्रसन्न और प्रसन्न भाव से उसने एक बार मेरे चेहरे की ओर देखा, एक अजीब सी हँसी हँसी, और उसी मंदिर के द्वार से वापस चली गई।

उस क्षण तक तो यह पूरी घटना मेरी चेतना में बिल्कुल सामान्य लग रही थी, लेकिन मेरे मन में इसकी वास्तविकता या असत्यता को लेकर कोई प्रश्न नहीं उठा। पैकेट में अभी भी कुछ टुकड़े बचे थे। मैंने कुछ अपने मुँह में डाले और बाकी अपने शरीर पर मल लिए। फिर मैंने प्रार्थना के साथ प्रणाम किया:

"हे भगवान! मैं शब्दों में बयां नहीं कर सकता कि मैं आपका कितना आभारी हूँ! मेरी बड़ी लालसा थी कि मैं हमेशा के लिए वृंदावन में रहूँ। आपने वह इच्छा पूरी नहीं की। यदि उसके बाद भी आप मेरी यह छोटी सी इच्छा पूरी करने से इनकार कर देते, यदि मुझे प्रसाद ग्रहण करने वाला कोई न मिलता, तो मुझे आपसे हमेशा के लिए शिकायत रहती! इसलिए योग्य पात्र ढूँढने के लिए धन्यवाद।"

जैसे ही मैंने प्रणाम किया और धन्यवाद दिया, वैष्णव महिला का हँसता हुआ चेहरा मेरी आँखों के सामने घूम गया। अचानक मेरे मन में एक असंभव विचार आया:

"क्या वह स्वयं राधारानी ही नहीं थीं जो उस वैष्णव स्त्री के वेश में मेरे सामने प्रकट हुई थीं? एक बार नहीं, बल्कि दो बार आईं। क्या कोई सज्जन स्त्री ऐसा करेगी? क्या उसे शर्म नहीं आएगी?

नहीं! ज़रूर यह कुछ असाधारण था!" मैंने खुद से कहा। लेकिन मैं बस यहीं तक गया था। मैंने मुश्किल से दो कदम ही चला था।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

225

बांके बिहारीजी मंदिर के बाहर जब मैं बैठा तो पूरा अनुभव मेरे दिमाग से गायब हो गया।

उस रात, जब मैं उस गुफा में प्रवेश करने ही वाला था जहाँ मैं हमेशा सोता था, मेरा परिचय एक बंगाली सज्जन से हुआ, जो अपनी पत्नी और बच्चों के साथ भ्रमण पर आए थे और मिर्ज़ापुर धर्मशाला में ठहरे हुए थे। उन्होंने सुना था कि मैं बंगाली हूँ, और शायद उत्सुकतावश मुझसे मिलने आए थे।

उसने अपना परिचय मुझे दिया और पूछा,

"आप घर से कब से दूर हैं? लगता है आप काफी समय से घूम रहे हैं!"

"आपने सही अनुमान लगाया है... मैं काफी समय से इधर-उधर घूम रहा हूँ।" मैंने जवाब दिया।

"आप और कहाँ गये थे?" सज्जन ने जानना चाहा।

"मैं कहीं और नहीं गया। मैं सीधे वृंदावन आया और तब से वहां से नहीं गया।"

उसे यह पसंद आया; उसने कहा,

"अच्छा! एक ही जगह रहना बहुत अच्छी बात है। दस जगह भागने से क्या फ़ायदा? एक ही जगह बस जाना अच्छा है। मुझे यह विचार बहुत पसंद है। लेकिन मैं यह कैसे करूँ? मैं अपनी पत्नी और बच्चों के साथ आया हूँ... उन्हें संतुष्ट करने के लिए मुझे कई जगहों पर जाना पड़ा है, और आगे भी जाना पड़ेगा। अगर मेरा परिवार न होता, तो मुझे भी आपकी तरह यही करना पड़ता... मैं जब तक चाहूँ, यहीं वृंदावन में कहीं चुपचाप बैठा रहता! जानते हो, कहते हैं कि बहुत से पुण्य कर्म करने के बाद ही कोई व्यक्ति वृंदावन आ सकता है। लेकिन यहाँ सिर्फ़ एक बार आना ही काफ़ी नहीं है। हर किसी को वृंदावन में रहने का सौभाग्य नहीं मिलता... केवल वही व्यक्ति वृंदावन में रह सकता है जिसने कई जन्मों में अच्छे कर्म किए हों और जिस पर राधारानी की कृपा हो!....

"आप यहां कब से हैं, सर?"

"लगभग आठ महीने", मैंने उत्तर दिया।

यह सुनकर वह सज्जन प्रसन्नता से मदमस्त हो गया:

"क्या? आप आठ महीने से वृंदावन में रह रहे हैं! तब तो आप सचमुच भाग्यशाली हैं!"

मैंने मुस्कुरा कर कहा,

"तुम मुझे इतना भाग्यशाली क्यों समझते हो? जबकि मेरे पास

226

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

आठ महीने यहाँ रहने के बाद भी मेरा न तो कोई सिर बढ़ा है, न ही चार हाथ! यहाँ कितना समय बिताया जाए, इसमें इतनी अहमियत क्या है?"

... "आप कुछ भी कहें, महाराज, आप मुझे धोखा नहीं दे सकते। क्या आप यह कहना चाहते हैं कि इतने समय यहाँ रहने के बाद भी आपको अभी तक राधा-कृष्ण के दर्शन नहीं हुए? सच-सच बताइए!"

और उन्होंने मेरे चेहरे पर ऐसे विश्वास और आश्वासन के भाव से देखा कि मैं उन्हें निराश करने से हिचकिचाने लगा। मैं समझ गया कि वे भाग्यशाली थे - वृंदावन आते ही उन्हें राधा और कृष्ण के दर्शन हो गए थे; लेकिन मुझे नहीं मिले थे, राधा और कृष्ण ने मुझ पर एक बार भी दया नहीं की थी!

इसलिए मैं बहुत दुःख से चिल्लाया:

"हाय! मुझे एक बार भी उनके दर्शन नहीं हुए! इतना समय तो मैंने यहीं बिताया है, पर उनके प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हुए!"

"वह क्या है? यद्यपि आप इतने समय से वृंदावन में रह रहे हैं, फिर भी आपको राधा- कृष्ण के दर्शन नहीं हुए? मैंने सुना है कि अनेक ब्रजवासियों ने स्वप्न में और जाग्रत अवस्था में उनसे बातें की हैं। बहुत से भक्तगण अभी भी अपनी भौतिक आँखों से उनकी दिव्य लीला का दर्शन करते हैं। और कुछ ही दिनों में - हमारे अन्नदा ठाकुर, जिन्होंने बंगाल में परम माँ की छवि देखी थी, वृंदावन में प्रवेश करते ही राधा और कृष्ण के साक्षात दर्शन प्राप्त कर लिए। फिर भी आप जो इतने दिन यहाँ रहे, कुछ भी नहीं देख सके? यह आश्चर्यजनक है!"

मैं उसकी बात से सहमत हुए बिना नहीं रह सका और उससे कहा:

"हाँ, यह सचमुच आश्चर्यजनक है! आप देखिए कि राधा और कृष्ण ने मुझे कैसे धोखा दिया है। मैं वृंदावन में हमेशा के लिए रहने की उम्मीद से आई थी और उन्होंने मुझे ऐसा करने की अनुमति नहीं दी - और उन्होंने मुझे एक बार भी अपने भौतिक दर्शन नहीं दिए। मैं बहुत ही अभागा व्यक्ति हूँ... इसीलिए मुझे वह नहीं मिला जो यहाँ बाकी सभी को मिलता है!"

अपने दुःख में, मुझे खुद से गहरी घृणा हो रही थी। उस रात गुफा में अपने बिस्तर पर लेटे हुए मैंने खुद से कहा:

"मैं राधा-कृष्ण को कैसे दोष दूँ? इसमें उनका तनिक भी दोष नहीं है! मुझे उनके दर्शन क्यों प्राप्त हों? क्या किसी को उसकी इच्छा के बिना कुछ दिया जा सकता है? मैंने एक बार भी राधा-कृष्ण के दर्शन की अभिलाषा नहीं की; उनके अभाव से मुझे किंचितमात्र भी दुःख नहीं हुआ। यद्यपि मैं वृन्दावन में रहता था, परन्तु दिन-रात श्रीअरविन्द का ही नाम लेता रहा हूँ। राधा और कृष्ण के समक्ष भी मैंने प्रार्थना की थी - "हे प्रभु, आप दोनों मेरे समक्ष प्रकट हों।"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

227

श्री अरविंद के रूप में!" यद्यपि मुझे दामोदर मंदिर में राधा और कृष्ण की पूजा करने का एक अनूठा अवसर मिला था, फिर भी मैंने इसे अस्वीकार कर दिया, कहीं ऐसा न हो कि मैं श्री अरविंद को भूल जाऊँ। श्री अरविंद और माता के प्रति अपनी भक्ति के कारण मैं राधा-कृष्ण के निकट नहीं आ पाया हूँ। तो फिर वे मुझे अपने कृपालु दर्शन क्यों प्रदान करें? मैं राधा और कृष्ण को उनके दर्शन न देने के लिए कैसे दोषी ठहरा सकता हूँ, जबकि मैंने उन्हें कभी ऐसा करने का अवसर ही नहीं दिया?"

इन बातों को मन में घुमाते हुए मैं किसी तरह सो गया।

लेकिन अचानक राधारानी की आवाज़ सुनकर मैं चौंक गया। वो मुझसे कह रही थीं,

"मैं दो बार आपके पास आया और आपके हाथ से प्रसाद लिया, और फिर भी आप मुझे नहीं पहचानते!"

मैं बिस्तर पर सीधा बैठ गया। मेरे हृदय में खुशी की एक गहरी लहर दौड़ गई: "आह! यह सच है... मुझे भी राधारानी के साक्षात दर्शन और स्पर्श प्राप्त हुए हैं!"

और बांके बिहारीजी के मंदिर में वैष्णव महिला का रूप मेरी आंखों के सामने स्पष्ट रूप से प्रकट हो गया: दोपहर के एकांत में वह नाटकीय स्थिति, मेरी लंबी प्रतीक्षा, उसकी चकाचौंध और असाधारण सुंदरता, जिस तरह से वह दो बार मंदिर से बाहर आई - एक मंदिर जिसका केवल एक ही प्रवेश द्वार था - उसका प्रसाद को केवल एक बार नहीं बल्कि दो बार स्वीकार करना, और मंदिर में उसका अंतिम रूप से अंतर्ध्यान हो जाना - ये सभी विवरण अत्यंत अर्थपूर्ण हो गए; वे सभी छोटी-छोटी बातें जो मैंने उस समय शायद ही ध्यान दी थीं, अब मेरे सामने आ गईं!

मैं इतना कृतज्ञ और प्रसन्न था कि मुझे नींद ही नहीं आ रही थी। रात भर, बार-बार मैं उन्हीं शब्दों को दोहराता रहा, और राधारानी का वैष्णव वेश में रूप मेरी आँखों के सामने बार-बार आता रहा। मैंने बाकी रात उस दिन की हर छोटी-बड़ी घटना को संजोकर रखी जो अभी-अभी बीती थी।

लेकिन वृंदावन में बिताए मेरे समय की कहानी अभी खत्म नहीं हुई है। मुझे एक और घटना की ओर लौटना होगा जो घटी थी। क्योंकि उसी दिन एक और अद्भुत घटना घटी थी... और वह भी ऐसी कि आज भी उसे समझाना मेरे लिए मुश्किल है।

राधारानी ने दो बार मेरा प्रसाद ग्रहण किया था। मंदिर से निकलने के बाद, मैं रोज़ की तरह यमुना स्नान के लिए निकल पड़ा। मैंने अपनी मधुकरी पहले ही पूरी कर ली थी। मैं अपने साथ कुछ ले गया था।

228

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

एल्युमीनियम के बर्तन में रोटी और दाल पकाई जाती थी। यमुना में स्नान करने के बाद, मैं वहीं खाना खाता था।

डांगोली और मंगोली दोनों गलियों को पार करते हुए, मैं थोड़ा आगे बढ़ा और गेहूँ के खेतों में पहुँच गया जो यमुना किनारे तक फैले हुए थे। रास्ते में मेरी मुलाक़ात एक ऐसे व्यक्ति से हुई जिसे मैंने पहले कभी नहीं देखा था।

वे कंधे पर एक विशिष्ट वैष्णव झोला या मधुकरी बटुआ लटकाए हुए थे। उनकी त्वचा का रंग गहरे तूफ़ानी बादल जैसा था; उनकी आँखें बड़ी-बड़ी और सुंदर थीं, और उनके भाव सामान्य नहीं, बल्कि प्रेम और भक्ति से दमक रहे थे। उनके माथे के ऊपर बालों का एक मनमोहक गुच्छा था। उनकी नाक की लंबाई तक चंदन से बना एक लंबा वैष्णव चिन्ह था। उन्होंने बंगालियों की तरह एक चुस्त धोती पहनी हुई थी, और उसके ऊपर एक वास्कट या जैकेट। उनके हाथ में एक सुंदर बाँस की बांसुरी थी।

वास्तव में, उनके सभी हाव-भाव और चाल-ढाल, उनकी शारीरिक बनावट और यहां तक कि उनका रंग-रूप भी श्री कृष्ण जैसा ही था, जैसा कि हम उन्हें अपने धर्मग्रंथों और कहानियों में देखते हैं।

लेकिन जानते हो, श्रीकृष्ण जैसे सुंदर व्यक्ति को देखकर मैंने क्या सोचा था? जब मैंने उन्हें पहली बार दूर से देखा, तो मैं सोच में पड़ गई कि क्या मैंने उन्हें कुछ दिन पहले किसी छत्र में देखा था... या शायद इसलिए नहीं देखा क्योंकि वे वृंदावन में नहीं रहते थे।

लेकिन इसके साथ ही, उस अजनबी के बारे में सारी जिज्ञासा मेरे मन से गायब हो गई... सब कुछ बिल्कुल स्वाभाविक लगने लगा।

हम दोनों अलग-अलग मेड़ों पर गेहूँ के खेतों से गुज़र रहे थे: मैं एक बड़े से खेत की मेड़ पर चल रहा था, और वह दूसरे पर। थोड़ी देर बाद हमारे रास्ते मिले, और हम आमने-सामने आ गए।

फिर अजनबी ने मुझसे पूछा,

"दोपहर की धूप में तुम कहाँ जा रहे हो?"

वह पूर्वी बंगाल की बोली बोलते थे और उनकी आवाज अद्भुत रूप से मधुर थी।

"मैं यमुना में नहाने जा रहा हूँ," मैंने जवाब दिया। "आप क्या करेंगे?"

"मैं भी वहाँ जाऊँगा," उसने जवाब दिया। "मैं यमुना के इस हिस्से में कभी नहीं गया। चलो, मैं तुम्हारे साथ नहाने चलता हूँ।"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

229

"क्या आप वृंदावन में नहीं रहते?" मैंने पूछा। "आप ऐसा क्यों कहते हैं कि आप इस इलाके में कभी नहीं आए?"

"हाँ, मैं वृंदावन में रहता हूँ," उन्होंने कहा, "लेकिन मैं कभी इस तरफ नहीं गया।"

"ओह, मैं समझ गया," मैंने जवाब दिया। "आप कहाँ रहते हैं?"

"केशी के घाट पर", उसने उत्तर दिया।

मुझे नहीं पता था कि वह कहाँ है, इसलिए मैंने उससे पूछा,

"वह कहां है?"

उन्होंने यमुना के उत्तरी किनारे की ओर इशारा करते हुए कहा, "यहाँ से ऊपर

वहां, जहां आप एक जीर्ण-शीर्ण इमारत देख सकते हैं, जो नदी में आधी डूबी हुई है... वह केशी का घाट है।"
"ओह, क्या यही नाम है इसका? मैं अक्सर वहाँ गया हूँ। आप वहाँ गोपीनाथ बाज़ार से होकर जाने वाली सड़क से पहुँचते हैं, है ना?"
"हाँ।"
"क्या यह वही स्थान नहीं है जहाँ श्रीकृष्ण ने ज्ञानी केशी का वध किया था? और इसीलिए इसे केशी का घाट कहा जाता है?"
उन्होंने संक्षेप में उत्तर दिया, "मैं जैसे-तैसे जीवन जीता हूं... मैं इतनी खबरें नहीं सुनता।"
मैंने कहा, "हाँ, मैंने किताबों में पढ़ा है... श्री कृष्ण ने केशी, पूतना और अन्य दैत्यों का वध किया था।"
"शायद," उसने जवाब दिया.
230
वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार
मैंने पूछा, "केशी घाट के किस हिस्से में आप रहते हैं?"
"वहाँ, उस इमारत में जिसे आप पानी में देख सकते हैं... मैं उसी में रहता हूँ।"

"आप इसमें कैसे रह सकते हैं?" मैंने निराशा और आश्चर्य से कहा।
लेकिन उन्होंने बड़ी सहजता से जवाब दिया, "हां, मैं वहीं रहता हूं।"
"लेकिन मैं देख रहा हूं कि इमारत पानी में गिर गई है।
आप उन परिस्थितियों में कैसे रह सकते हैं?

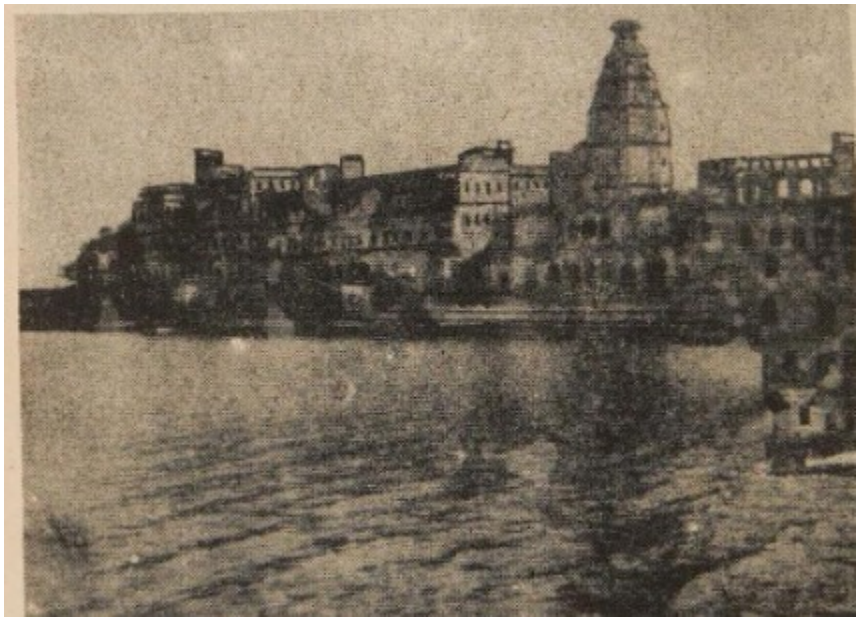

"भले ही यह पानी में गिर गया हो, लेकिन इसका ऊपरी हिस्सा अभी भी रहने योग्य है। मैं उसी इलाके में रहता हूँ। मैं वहाँ काफी समय से रह रहा हूँ, इसलिए मैं सभी असुविधाओं का आदी हो गया हूँ।"
मैंने कहा, "अच्छा, नदी के उस हिस्से में इतना तेज़ बहाव कैसे है? मुझे अभी भी वह स्नान स्थल याद है जहाँ मैंने पहली बार वृंदावन आने पर स्नान किया था...पानी मेरे घुटनों तक भी नहीं पहुँचता था!"
"ओह, आपने नदी के उथले किनारे पर स्नान किया होगा। यह किनारा अभी भी गहरा और तेज़ बह रहा है। यह गहरा किनारा हर साल मानसून की बाढ़ के दौरान भर जाता है, और वह पानी साल के बाकी दिनों में भी वहाँ बना रहता है," उसने उत्तर दिया। वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार
231

इस तरह बातें करते हुए हम यमुना नदी पर पहुँच गए। हमने अपना सामान और कपड़े किनारे पर रख दिए और दोनों नदी में उतरकर पूरी तरह डूब गए। फिर वापस किनारे पर चढ़कर हमने अपने कपड़े सुखाने के लिए बिछा दिए और किनारे पर सूखी रेत पर अगल-बगल बैठ गए।

मैं उसे से कहा,

"हमने अभी यमुना में स्नान किया है... अब थोड़ी देर मौन बैठें - आप क्या सोचते हैं?"

उसने कहा,

"यह एक बहुत अच्छा प्रस्ताव है, और इसका उद्देश्य भी अच्छा है।"

मैंने जोड़ा,

"बस थोड़ी देर के लिए... फिर हम मेरे बर्तन में खाना बाँट लेंगे।"

वह अपनी आंखें बंद करके ध्यान में बैठ गए; उनके पास मैं भी अपनी आंखें बंद कर ली।

हम कब तक ऐसे ही रहे, मुझे कुछ पता नहीं। मैंने अचानक उसे कहते सुना,

"सुन रहे हो? आज बहुत शुभ दिन है!"

उस समय मैं इतनी गहरी ध्यानस्थ थी कि मैं तुरंत उसका जवाब नहीं दे सकी। उसने एक क्षण रुककर फिर दोहराया,

"सुना मैंने क्या कहा? यह बहुत ही शुभ दिन है। ऐसा शुभ संयोग बहुत समय से नहीं बना है!"

इस बार मैंने अपने ध्यान में थोड़ी हलचल की और उसे यह संकेत देने की कोशिश की कि मैं उसके शब्दों पर ध्यान दे रहा हूँ।

उसने पहना,

"और देखो, हम इस परिवेश में हैं... हम यमुना के पवित्र तट पर हैं, हमने इसमें स्नान किया है और शुद्ध और निष्कलंक हो गए हैं। मैं आज तुम्हें दीक्षा दूँगा..."

इस बार जैसे ही उसके शब्द मेरे कानों में पड़े, मेरा ध्यान अचानक टूट गया। चौंककर मैंने कहा,

"क्या? आपने क्या कहा? आप मुझे दीक्षा देना चाहते हैं?"

"हाँ, मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा।"

"[illegible] [illegible] [illegible] [

मुझे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करूँ। मैंने सोचा, "क्या नाव डूब जाएगी, किनारे के इतने पास? मैं इतने लंबे समय से, इतनी जगहों पर दीक्षा लेने से बचता आया हूँ - अब मैं वृंदावन छोड़ने ही वाला हूँ। अब मैं जाने ही वाला हूँ, क्या कुछ अनहोनी होने वाली है?"

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

233

मैं अपने भीतर अपने स्वामी को पुकारने लगा,

"हे स्वामी, इन सबका क्या अर्थ है? मैं दुर्बल हूँ, मैं असहाय हूँ, कृपया मेरी रक्षा करें!"

इस बीच, वह कृष्ण मुझे दीक्षा देने के लिए पूरी तरह तैयार थे... वे केवल इसलिए देरी कर रहे थे क्योंकि मैं सहमत नहीं था।

एक बार फिर उन्होंने कहा,

"मुझसे दीक्षा लो। यह तुम्हारे लिए अच्छा होगा!"

ये शब्द सुनते ही मेरे मन में अचानक विचार आया: "क्या होगा यदि वे स्वयं श्री कृष्ण हों? बाह्य रूप से वे श्री कृष्ण जैसे ही दिखते हैं, जैसा कि हम उन्हें चित्रों में देखते हैं। क्या होगा यदि वे, जो अनेक तपस्याओं के बाद भी दिखाई नहीं देते, स्वयं मुझे दीक्षा देने आए हों?"

मेरा मन दो विपरीत धाराओं में बह गया, और एक पल में मुझे लगा कि मैं अपनी गहराई से बाहर निकल गया हूँ। मेरे मन में चिंताजनक विचार दौड़ रहे थे:

"मुझे क्या करना चाहिए? मुझे किसका पक्ष लेना चाहिए? एक ओर श्री अरविंद का संदेश है: किसी के पास मत जाओ - मैंने तुम्हें स्वीकार कर लिया है'; और दूसरी ओर यह श्री कृष्ण के वेश में कह रहा है: 'शिष्य एक है, लेकिन गुरु अनेक हैं; मुझसे दीक्षा ले लो, यह तुम्हारे लिए अच्छा होगा।'"

श्री राधा को भी एक दिन वृंदावन में ऐसी ही समस्या का सामना करना पड़ा।

उसने वंश, मान, सतीत्व सब कुछ त्यागकर केवल श्रीकृष्ण को ही चुना। उसने अपनी सखियों से कहा:

"जाओ और बताओ, हे मित्र! शहर में हर किसी को...

राजकुमारी राधा बदनामी के सागर में डूब गई है,

कृष्ण के लिए, यह निंदा का सागर है!

मैंने वही चुनाव किया.

मेरे लिए, श्री अरविंद ही कृष्ण हैं। मैंने अपने जीवन की शुरुआत में ही श्री अरविंद के प्रति समर्पण कर दिया था, और उन्होंने मुझसे सबसे पहले, श्री कृष्ण से पहले, वादा किया था, 'तुम मेरे हो!' इसलिए मैंने केवल श्री अरविंद को ही चुना। मैं उनसे बार-बार विनती करने लगा,

"हे गुरुदेव, मेरी रक्षा करो! मुझे आपके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए। यदि वे सचमुच श्रीकृष्ण भी हों, तो भी मैं उनसे दीक्षा नहीं लेना चाहती। मेरा सारा सौभाग्य और भविष्य नष्ट हो जाए, केवल आप ही मेरे लिए शेष रहें..."

सचमुच, इतने कम समय में ही इतने सारे विचार और

234

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

मेरे मन में चिंताएं और विकल्प उत्पन्न हो रहे थे।

दूसरी ओर, श्रीकृष्ण के वेश में वह व्यक्ति मुझे दीक्षा देने पर अड़ा रहा। उसने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिए और मेरी ओर झुक गया। चूँकि मैं कुछ देर से ध्यान में बैठा था, इसलिए मेरे शरीर का निचला भाग भारी और अकड़ गया था, जैसा कि वृंदावन में होने पर होता था - इसलिए मैं उससे बचने के लिए तेज़ी से हिल नहीं पा रहा था। बैठी हुई मुद्रा में ही मैंने अपने गुरु को पुकारा।

लेकिन मैं उसे रोक नहीं सकी: अभी भी मेरे दोनों हाथों को पकड़े हुए, वह झुकी और मेरे कान में एक मंत्र फुसफुसाया।

लेकिन दीक्षा मिलने के बाद, मेरे मन की सारी बेचैनी और अशांति दूर हो गई; मुझे उस कृष्ण के प्रति कोई प्रतिरोध महसूस नहीं हुआ, हालाँकि उन्होंने मेरी अनिच्छा के बावजूद मुझे ज़बरदस्ती दीक्षा दी थी। बल्कि मेरा पूरा अस्तित्व पूरी तरह से शांत और पवित्र महसूस कर रहा था। मेरे मन में यह विचार आया कि जो होना था और जो मेरे लिए शुभ था, वह मेरी आत्मा में घटित हो गया है। और केवल इसी कारण से, मैं बहुत सरल और स्वाभाविक रूप से व्यवहार कर पा रहा था। मैंने उनसे कहा,

"चलो अब खाना खाते हैं।" - और मैंने बर्तन का ढक्कन खोलना शुरू कर दिया।

उसने भी अपने बटुए में हाथ डालते हुए कहा,

"इतने छोटे बर्तन में से तुम मेरे साथ कैसे बाँट सकते हो? रुको, देखता हूँ क्या ढूँढ़ पाता हूँ..."

मुझे लगा कि शायद उसके पास भी मधुकरी द्वारा मेरे जैसे छत्रों से प्राप्त की गई रोटी और दाल होगी। लेकिन उसने अपने बटुए से पत्तों में लिपटा एक छोटा सा पैकेट निकाला; उसमें कुछ पूड़ी, सब्ज़ी, मिठाई वगैरह थी। आखिरकार हम सबने मिलकर इतना खाना खा लिया कि काफी कुछ बच गया। हमने अपनी पिकनिक की दावत नदी में आस-पास के कछुओं और यमुना में तैर रहे जंगली बत्तखों के झुंड के साथ बाँटी।

हम यमुना के तट से सामान्य समय से थोड़ा पहले निकल पड़े, वह केशी घाट की ओर चला गया और मैं पुराने गोविंद मंदिर की ओर।

अगले ही दिन मुझे वृंदावन छोड़ना था।

मैंने तय किया था कि सुबह छत्र पर जाऊँगा और राधारानी का प्रसाद ग्रहण करके अपनी यात्रा शुरू करूँगा। दिल्ली का छत्र खुदरा छत्र था - यानी वहाँ पूरा खाना नहीं मिलता था, बस एक रोटी और थोड़ी दाल मिलती थी; लेकिन यह बाकी सब से पहले खुल जाता था।

वृंदावन में आज भी होते हैं चमत्कार

235

छत्र। हमारी मधुकरी अक्सर वहीं से शुरू होती थी। इसलिए मैं सुबह आठ या नौ बजे दिल्ली छत्र में प्रसाद ग्रहण करता था। वहाँ से मैं अपने नए कपड़े बदलने के लिए पास की एक खंडहर इमारत में चला जाता था।

रास्ते में मैंने पूरी तरह ईश्वर के प्रति समर्पण का निश्चय कर लिया था, और बिना माँगे जो भी जीविका मिल जाए, उसे ही ले लूँगा... इसलिए मैं अपने साथ कोई पानी का घड़ा, कंबल, तौलिया या बनियान नहीं ले जाऊँगा। मैं कुछ भी नहीं ले जाऊँगा। कुछ दिन पहले ही मुझे वह कंबल दिया गया था। वह भी बिलकुल नया था। मैं अपना घड़ा और कंबल किसी भिखारी को देना चाहता था... लेकिन मुझे मौका नहीं मिला। इसलिए मैंने अपनी सारी सांसारिक संपत्ति उस कमरे में ही छोड़ दी।

इसलिए मैं पांडिचेरी के लिए रवाना हो गया।

अंतिम बार वृंदावन की धरती को छूने और एक बार फिर राधा और कृष्ण को अलविदा कहने तथा उसकी कुछ पवित्र धूल को अपने माथे पर लगाने के बाद, मैं उस लंबे रास्ते पर चल पड़ा, मेरा हृदय सच्ची कृतज्ञता से गा रहा था:

"प्यारी, ओह तुम कितनी प्यारी हो!

हे मधुर भावनाओं के स्वामी!

□□ □□□□ □□□□□□□□ □□□□□□□ □□□□ □□□□□□ □□□, □□□□ □□□ □□□□□ □□□□□!

236

□□□□□□□ □□□ □□ □□ □□□□ □□□ □□□□□□□

□□□□□ □□ □□□□□□

1. □□□□ □□ □□ □□□□ □□□ □□□□ □□□□□□ □□□□□□□□□ □□ □□□□□□□ □□ □□□□□□ □□□□□ □□ - □□ □□□□□□□ □□□, □□□□□ □□ □□□ □□ □□ □□□□ □□□ □□□

2.

□□□□□: □□□□□□□ □□ □□□□□ □□□□ □□□ □□□□□, □□□□ □□ □□□□ □□□□□ □□ □□□□□ □□□□

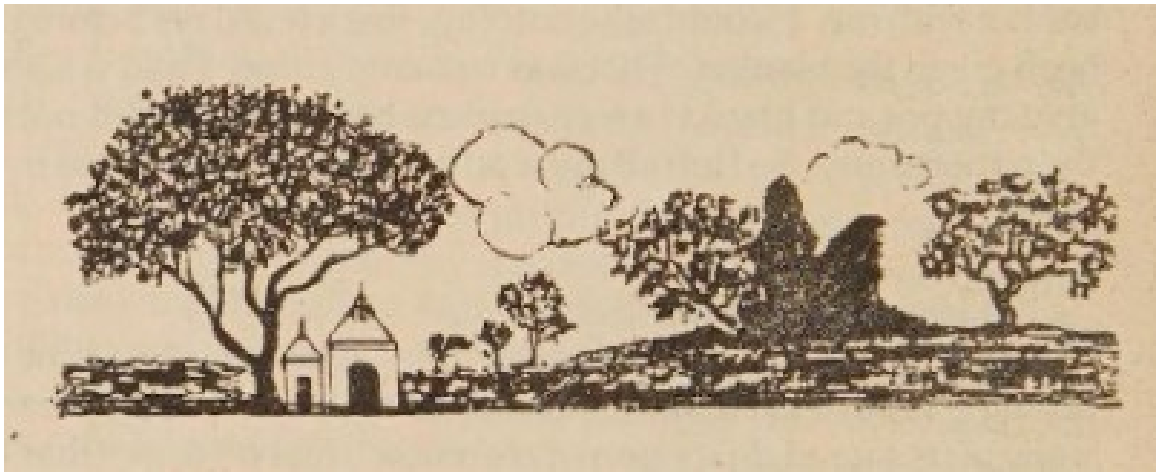

किताब के बारे में

'रूपनवे' के संपादक ने लिखा - "वह घर से एक लंबी यात्रा पर निकल पड़ा। युवा और अनुभवहीन होने के बावजूद, इस पथिक ने शीघ्र ही अपने को एक ऐसी स्थिति में फँसा पाया, जिसे केवल एक साहसिक कार्य ही कहा जा सकता है। जो लोग और घटनाएँ उसके मार्ग में आईं, वे असाधारण से कम नहीं थीं। अद्भुत पात्रों की कैसी विचित्र भूमिका थी: मिर्जापुर धर्मशाला की सुमिताजी, पूर्व-बंगाल के शरणार्थी नेताई

बाउरी, बिपिन ब्रजवासी और शर्माजी। इससे भी अधिक अद्भुत थे पुरुष और महिला वैष्णव, संत और संन्यासी, छत्रों और मधुकरी समारोहों का आतिथ्य, मंदिर और तीर्थ, आश्रम और मठ, उद्यान पथ और प्रेम की भूमि के स्नान-स्थान! लेकिन सबसे अद्भुत थीं बांकेबिहारजी के मंदिर की ब्रजांगनाएँ। ये सभी पाठक को मानो किसी रहस्यलोक से बुलाती हुई प्रतीत होंगी!

"लेकिन पाठक यह जानकर आश्चर्यचकित होंगे कि वह व्यक्ति जो श्री अरविंद के प्रति इतना अधिक आकर्षित था, उसने वृंदावन में अमृत की प्यास में अपने दिन बिताए, और बहुत कठिनाई और पीड़ा के बाद अंततः उसे राधारानी का कंगन प्राप्त हुआ! सचमुच, वृंदावन में अभी भी चमत्कार होते हैं!"

और जैसी घटना है, वैसा ही लेखक का जीवन भी है। लेखक अनिल मोहन ने अपनी उपाधि त्याग दी है और 'कृपाविक-शु', यानी कृपालु बन गए हैं।

इस लेखक का करियर एक अजीबोगरीब तरीके से शुरू हुआ। एक दिन कलकत्ता में, सरस्वती प्रतिमा के विसर्जन के दौरान, अचानक उनका मन शून्य हो गया। यह स्थिति तीन दिनों तक बनी रही। फिर धीरे-धीरे ऊपर से आध्यात्मिक बोध और दिव्यदृष्टि का अवतरण हुआ, जिसके बाद रचनात्मक शक्ति का एक प्रचंड प्रवाह आया जिसने उन्हें एक महान साहित्यकार और लेखक बनने के लिए प्रेरित किया। लेकिन लेखक ने बस इतना ही कहा: "नहीं, नहीं, मैं महान लेखक नहीं बनना चाहता; मैं तो बस सत्य का सेवक बनना चाहता हूँ!"

लेखक की एक अन्य अद्भुत पुस्तक, मिरेकुलस ग्रेस, ने पाठकों के साथ-साथ पत्रिकाओं में भी काफी हलचल मचाई, तथा इस पुस्तक की तरह कई भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हुई।

आईएसबीएन-81-85318-55-7

230

एच.के. प्रकाशक और वितरक

ए 1/11 शक्ति नगर एक्स्त्न दिल्ली-110052